श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत

कवितावली

(सटीक)

चम्पाराम मिश्र बी० ए०, एम० ए० एल० बी०
(दीवान, छत्रपुर स्टेट)

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

थमावृत्ति] सं० १९९० वि० [मूल्य

पं० चम्पाराम मिश्र, बी० ए०

निवेदन

कवितावली की अनेक टीकाए छप चुकी हैं; परन्तु वे विशेषतः ऐसी भाषा में हैं जिनका समझना कठिन हो जाता है। यह देखकर हमारा विचार हुआ कि प्रचलित बोल-चाल की भाषा में एक टीका लिखी जाय जो जनता और विद्यार्थी दोनों के काम की हो। इस विचार से हमने सन् १६१५-१६ में एक टीका लिखी जो सन् १६१७ में समाप्त हुई। सन् १६१८ में उसी के आधार पर हमने तुलसीदास के जीवनचरित्र से सम्बन्ध रखनेवाला एक लेख 'सरस्वती' में निकाला और सन् १६२५ में एक विस्तृत समालोचना लिखकर उसे भी 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया। यही प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका का आधार है। अनेक कारणों से, जिनका यहाँ पर उल्लेख करना व्यर्थ है, टीका के छपने में विलम्ब हुआ। इसी बीच कुछ और टीकाएँ प्रकाशित हो गईं परन्तु वे विद्यार्थियों के ही काम की हैं। हम ऐसा संस्करण निकालना चाहते थे जो जनता और विद्यार्थी दोनों के काम का हो। इसलिए उसी की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इस टीका में कथाएँ भी अधिक दी गई हैं और इसमें एक ऐसी अनुक्रमणिका लगाई गई है जिससे प्रत्येक छन्द का, आसानी से, पता लग सकता है। छन्दों के काण्डबद्ध अङ्क और सम्पूर्ण अङ्क दोनों इस अनुक्रमणिका में दिये गये हैं। इस भूमिका में छात्रोपयोगी बातों के अतिरिक्त तुलसीदासजी की जीवनी पर भी नया प्रकाश डाला गया है और कवितावली में जितनी बातें उनकी जीवनी के सम्बन्ध में मिल सकी हैं उनकी आलोचना की गई है।

छत्रपुर—२५-१२-१६३३

चम्पाराम मिश्र

महाराज भवानीसिंह जू देव बहादुर

छतरपुर, बुन्देलखंड (सी० आई०)

भूमिका

तुलसीदास की जीवनी

तुलसीदास की जीवनी-सम्बन्धो सामग्री के दो भाग हो सकते हैं। एक—तो—वह जिसका प्रमाण मौजूद है। दूसरा वह जो प्रचलित किंवदंतियों पर आश्रित हैं। तुलसीदास के जो जीवनचरित अब तक छपे हैं उनका अधिकांश किंवदन्तियों के आधार पर लिखा गया है। उन पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है, यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। अतः इस सामग्री को छोड़कर हम केवल उसी का उल्लेख यहाँ करेंगे जिसका कुछ न कुछ प्रमाण मिलता है। इसके भी दो भाग हैं—एक अन्तरङ्ग, दूसरा बहिरङ्ग। पहले बहिरङ्ग को लीजिए। उसमें मुख्य ये हैं—

बहिरङ्ग साक्ष्य की समालोचना

(अ) नाभाजी का भक्तमाल और उस पर प्रियादासजी की टीका। नाभाजी ने केवल एक छप्पय तुलसीदासजी की प्रशंसा में लिखा है—

त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरै ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम-चरन-रस-मत्त रटत अहनिशि व्रत-धारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि-कुटिल-जीव-निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो॥

इससे यह तो सिद्ध हुआ कि नाभाजी के अनुसार तुलसीदासजी प्रसिद्ध भक्त थे और रामायण बना चुके थे; परन्तु उनका और कुछ पता इससे न चला।

इस पर प्रियादासजी ने सुनी-सुनाई कहावतों के आधार पर अद्भुत टीका रच डाली—

तिया सों सनेह, बिन पूँछे पिता गेह गई, भूली सुधि देह, भजे वाही ठौर आये हैं।
बधू अति लाज भई, रिस सों निकस गई, प्रीति राम नई, तन हाड़ चाम छाये हैं॥
सुनी जब बात, तब है गयो प्रभात, वह पीछे पछताय, तजि काशीपुरी धाये हैं।
कियो तहँ वास, प्रभु सेवा लै प्रकाश कीनो, लीनो दृढ़ भाव, नैन रूप के तिसाए हैं॥१॥

शौच जल शेष पाय, भूतहू विशेष कोऊ, बोल्यो सुख मानि, हनुमान जू बताये हैं
रामायन कथा, सो रसायन है कानन कों, आवत प्रथम, पाछे जात, घृणा छाये हैं ॥
जाइ पहिचानि, संग चले उर आनि, आये वन मध्य, जानि, धाइ, पाँव लपिटाये हैं।
करैं तिरस्कार, कही "सकोगे न टारि, मैं तो जाने रस-सार" रूप धरयो जैसे गाये हैं ॥२॥

"माँगि लीजै वर" कही दीजै "राम भूप रूप, अति ही अनूप, नित नैन अभिलाखिए।"
किया लै संकेत, वाही दिन ही सो लाग्यो हेत, आई सोई समै चेत "कबि छवि चाखिए ॥"
आये रघुनाथ, साथ लक्ष्मण, चढ़े घोड़े, पटरङ्गबोरे हरे, कैसे मन राखिए।
पाछे हनुमान आय बोले "देखे प्रानप्यारे" "नेकु न निहारे मैं तो भले फेरि भाखिए ॥३॥"

हत्या करि विप्र एक, तीरथ करत आयो, कहै मुख "राम, भिक्षा डारिए हत्यारे को।"
सुनि अभिराम नाम धाम में बुलाय लियो दियो लै प्रसाद कियो शुद्ध गायो प्यारे को ॥
भई द्विज-सभा कहि बोलि कै पठायो आप "कैसे गयो पाप, संग लैकै जेंये न्यारे को।"
पोथी तुम बाँचो, हिये भाव नाहिं साँचो, अजू ताते मतिकाँचो, दूरि करै अँध्यारे को ॥४॥

देखी पोथी बाँचि, नाम महिमा हू कही साँच, "ए पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजिए।"
"आवै जो प्रतीत कहो" कही "याके हाथ जेवैं जब शिवजू के बैल तब पंगति में लीजिए ॥"
थार में प्रसाद दियो, चले तहाँ पान कियो, बोले "आप नाम के प्रताप मति भीजिए।
जैसी तुम जानौ तैसी कैसे के बखानो अहो," सुनि कै प्रसन्न पायो जै जै धुनि रीझिए ॥५॥

आये निशि चोर, चोरी करन, हरन धन, देखे श्यामघन हाथ चाप-सर लिये हैं।
जब-जब आवैं, न साधु डरपावैं, एतो अति मँडरावैं, ए पै बली दूरि किये हैं ॥
भोर आये पूँछे "अजू! साँवरो किशोर कान ?" सुनिकर मौन रहै, आँसु डारि दिये हैं।
दई सब लुटाय, जानी चैाकी रामराय दई, लई उन दिक्षा, शिक्षा शुद्ध भये हिये हैं ॥६॥

कियो तनु विप्र त्याग, लागि चली संग तिया, दूर ही तें देखि कियो चरन प्रनाम है।
बोले यों "सुहागवती," "मरयो पति होहुँ सती" "अब तो निकस गई जाहु सेवो राम है ॥"
बोलि कै कुटुम्ब कही "जो पै भक्ति करौ सही" गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भये सब साधु, व्याधि मेटी लै बिमुखताकी, जाकी वास रहै तो न सूझै श्याम धाम है ॥७॥

दिल्लीपति बादशाह अहदी पठए लेन ताकों, सो सुनायो सूबै विप्र ज्यायो जानिए।
देखिबे कों चाहै नीके सुख सो निबाहे, आय कही बहु विनय गही चले मन आनिए ॥
पहुँचे नृपति पास, आदर प्रकाश कियो, दियो उच्च आसन लै, बोल्यो मृदु बानिए।
"दीजै करामाति जगख्यात सब मात किए" कही "झूठी बात, एक राम पहिचानिए ॥८॥"

"देखौं राम कैसे" कहि, कैद किये, किये हिये "हूजिए कृपालु, हनुमान जू ! दयाल हो।"
ताही समय फैलि गये, कोटि-कोटि कपि नए, लौंचै तन खैंचे चीर, भयो यों बिहाल हो ॥
फोरैं कोट, मारैं चोट, किये डारैं लोट-पोट, लीजै कौन ओट जाय, मानो प्रलयकाल हो।
भई तब आँखें, दुखसागर को चाखें, अब वेही हमें राखें, भाखें, वारौं धन माल हो ॥९॥

आइ पाइ लिये "तुम दिये हम प्रान पावैं" आपु समुझावैं "करामाति नेक लीजिए।"
लाज दबि गयो नृप, तब राखि लयो, कह्यो "भयो घर राम जू को वेगि छोड़ दीजिए।"
सुनि तजि दियो और कह्यो लैकै कोट नयो, अबहूँ न रहै कोऊ वामें, तन छीजिए।
कासी जाय, वृन्दावन आप मिले नाभा जू सों, सुन्यो हो कवित्त निज रीझ मति भीजिए ॥१०॥

मदनगोपाल जू को दरशन करि कही "सही राम इष्ट मेरे दग भाव पागी है।"
वैसोई सरूप कियो, दियो लै दिखाइ रूप, मनु अनुरूप छवि देखि नीकी लागी है ॥
काहू कह्यो "कृष्ण अवतारी जू प्रशंस महा, राम अंस" सुनि बोले "मति अनुरागी है।
दशरथ-सुत जानों, सुंदर अनूप मानो, ईसता बताई रति कोटि जुग जागी है" ॥११॥

इस टीका के पढ़ने और प्रियादासजी के स्वयं लिखने से ज्ञात होता है कि प्रियादासजी ने इन छन्दों में सुनी-सुनाई बातें भर दी हैं। वे स्वयं लिखते हैं—

इनही के दास दास दास प्रियादास जानो तिन लै बखानो मानो टीका सुखदाई है।
गोवर्धननाथ जू के हाथ मन परयो जाको करयो वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है ॥
मति अनुसार कह्यो लह्यो मुख सन्तन के अन्त कौन पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ि जानि अपराध मेरो छमा कीजै साधु गुनग्राही यह मानि कै सुनाई है ॥

सन्तों के मुख से जो कुछ सुना था वही प्रियादासजी ने लिख दिया है। साधुओं के सम्बन्ध में ऐसी अनेक गाथाएँ प्रचलित हो जाया करती हैं। उनको कहाँ तक प्रामाणिक माना जा सकता है, यह विचारणीय है। प्रियादासजी के अनुसार ही "भक्ति विश्वास जाके ताही को" इनका प्रकाश होता है। इतिहास या जीवनी के प्रमाण ढूँढ़नेवालों को यह आधार बहुत ही कमजोर दिखाई देता है।

(आ) संवत् १६६९ में तुलसीदासजी ने एक टोडर नामी व्यक्ति के पौत्रों के झगड़े की पञ्चायत की थी। इससे यह सिद्ध है कि संवत् १६६९ में तुलसीदासजी विद्यमान थे।

अन्तरङ्ग वर्णन

तुलसीदासजी विरक्त थे। उन्होंने नरकाव्य नहीं रचा। न तो आपने किसी राजा का आश्रय लिया, न किसी आश्रयदाता का वर्णन ही किसी भाँति किया, यद्यपि

उस समय के कवियों में कविवंश और राजवंश निरूपण की प्रथा प्रचलित थी। उदाहरण के लिए केशवदास का नाम लिया जा सकता है। परिणाम यह हुआ कि गोस्वामीजी की जीवनी का अधिकांश सन्दिग्ध अवस्था में है। कवितावली में जीवन-सम्बन्धी कुछ बातों का उल्लेख है। निम्नलिखित छन्दों में ऐसा उल्लेख पाया जाता है—

पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरै कथरी करवा है।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो, सपनेहू नहीं अपने बरवा है॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिनु बानर के चरवाहै॥ १॥

मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाउ सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई॥ २॥

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो हीतल सीतलताई।
* * * ॥ ३॥

छार तें सँवारि कै पहार हू तें भारी कियो, गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै॥ ४॥

* * *

अपत, उतार, अपकार को अगार जग, जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको।
पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो, कानन कपट को, पयोधि अपराध को॥ ५॥

तुलसी से बाम को भो दाहिनो दयानिधान,
* * *

जाँति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागि बस, खाए टूँक सब के बिदित बात दुनी सो।
* * *

राम नाम को प्रभाउ पाउ, महिमा प्रताप, तुलसी से जग मानियत महामुनी सो॥ ६॥

जाये कुल मंगन, बधावनो बजाये सुनि, भये परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन, जानत हैं चारि फल चारि ही चनक को॥

* * *

* * * ॥ ७ ॥

साहिब सुजान जिन स्वान हूँ को पच्छ कियो, रामबोला नाम, हैं गुलाम राम साहि को॥ ८॥

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ॥ ९॥

* * *

माँगिके खैबो मसीत को सोइबो * * *
मेरे जाति पांति, न चहौं काहू की जाति पांति, * *

* * *

अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग, साहही को गोत गोत होत है गुलाम को॥ १०॥

बाल्यावस्था

उपर्युक्त अवतरणों के पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि तुलसीदास बालकपन से ही अति दरिद्र थे। उनकी सम्पदा कथरी (फटा लिहाफ और बिछौना) और करवा (मिट्टी का लोटा) ही भर थी। विधि ने भी कोई और सम्पत्ति—जैसे बिरवा (वृक्ष) इत्यादि—उनके भाल में न लिखी थी। यहाँ तक कि 'बरवा' (बाल) तक भी वे अपने न समझते थे। माता-पिता ने उन्हें उत्पन्न होते ही छोड़ दिया था। वे रोटी के टुकड़े द्वार-द्वार माँगते फिरते थे। उसी समय राम का नाम उन्होंने सुना (कदाचित् राम-मन्त्र लिया अथवा किसी राम-नामी साधु का नाम सुना), जिसके द्वारा स्वार्थ और परमार्थ दोनों की प्राप्ति उनको हो गई।

'जन्मते ही छोड़ जाने' से दो प्रकार के अर्थ लगाये जाते हैं:—

(१) कुछ लोग कहते हैं कि तुलसीदास अभुक्त मूल में उत्पन्न हुए थे, अतएव मुहूर्त-चिन्तामणि के निम्नलिखित वचन के अनुसार तुलसीदास के माता-पिता ने उन्हें फेंक दिया था—

"जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पिताऽस्याष्ट समा न पश्येत्"। मुहूर्त-चिन्तामणि तुलसीदास का सम-कालीन ग्रन्थ कहा जाता है। यही क्यों, इस कथन के अनुमोदन में विनयपत्रिका का "जननि जनक तज्यौ जनमि" भी पेश किया जाता है।

(२) कुछ लोगों का कथन है कि तुलसीदास के माता-पिता उनकी बाल्यावस्था ही में मर गये थे।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन दोनों कथनों में से कौन अधिक माननीय है? यह कि अभुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण तुलसीदास के माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया था अथवा यह कि तुलसीदास की बाल्यावस्था ही में उनके माता-पिता का स्वर्ग-वास हो गया था। यदि स्वर्गवास की बात सही है तो प्रश्न यह होता है कि यह बात तुलसीदास ने स्पष्ट क्यों नहीं लिखी? "मातु पिता जग जाय तज्यो" ही लिखकर क्यों मौनावलम्बन किया? तुलसीदास ने कलि-वर्णन करते समय अनेक बुरी प्रथाओं का वर्णन किया है। सभी वर्णों और आश्रमों को अनेक स्थानों पर फटकारा है। गोरख-नाथ पर कठिन आक्षेप किया है। बाहुपीड़ा का विस्तृत वर्णन किया है। अपने क़ैद होने पर छन्द रचे हैं। महामारी का भी वर्णन किया है। यदि अभुक्त मूल वाली बात सच्ची है तो फिर क्या कारण है कि ऐसी बुरी प्रथा के प्रतिकूल या अनु-कूल उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, जिसकी बदौलत वे "द्वार-द्वार बिललात फिरे"। इस विषय में ध्यान देने योग्य एक बात और भी है। मुहूर्तचिन्तामणि से उद्धृत श्लोक में केवल पिता ही से तजे जाने की व्यवस्था है—'मुखं **पिता**ऽस्याष्ट समा न पश्येत्'—, क्योंकि यही 'पिता' 'त्यजेत्' क्रिया का कर्ता है। परन्तु तुलसीदास तो माता-पिता दोनों ही से अपना छोड़ा जाना बतलाते हैं; सो क्यों? यदि यह मानें कि उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था, तो उनसे 'तजा जाना' उन्होंने क्यों लिखा? उनके स्वर्गवास का उल्लेख करना तो उचित और स्वाभाविक होता। अतः यही कहना पड़ता है कि कवितावली से, उपर्युक्त दोनों कथनों में से, एक का भी समर्थन नहीं होता।

कुल-जाति

'जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि, भयो परिताप पाप जननी जनक को' को यदि "मातु पिता जग जाय तज्यो" के साथ रख कर पढ़ें तो अर्थ निक-

लता है कि माता-पिता को, जो मंगन कुल के थे, बधावा बजता सुन अर्थात् पुत्रोत्पत्ति की खबर पाकर पाप का परिताप हुआ और उन्होंने बालक को जन्मते ही छोड़ दिया। इसमें तुलसीदास ने अपने छोड़े जाने का कारण स्पष्ट 'पाप परिताप जननी जनक को' बताया है। हरिहरप्रसाद की कवितावली में पहली पंक्ति का पाठ यों है—"जायो कुल मंगन बधाओ न बजायो" आदि। इससे और भी स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि पुत्रोत्पत्ति से तुलसीदास के माता-पिता को 'पाप का परिताप' ऐसा हुआ कि बधावा तक न बजाया और पुत्र को छोड़ दिया, जिससे पुत्रोत्पत्ति की खबर तक किसी को न हो। इससे यह नतीजा निकल सकता है कि तुलसीदास किसी 'पाप' कर्म की संतान थे। और पाप भी ऐसा घोर जिससे उनके माता-पिता को उन्हें छोड़ देना पड़ा और जिसके स्पष्ट लिखने में तुलसीदास स्वयं समर्थ न हुए। अभुक्त मूल में जन्म होना ऐसा 'पाप' नहीं हो सकता जिसके लिखने में तुलसीदास को अथवा किसी को संकोच होता। बाल्यावस्था में माता-पिता की मृत्यु ही कोई ऐसा पाप नहीं है जिसको लिखने में कोई हिचके। इसमें यह आपत्ति बताई जाती है कि यदि तुलसीदास के माता-पिता ने उन्हें जन्मते ही छोड़ दिया था तो उन्हें यह ज्ञान कैसे हुआ कि वे अपने माता-पिता से छोड़े गये थे या यह कि उनके जन्म-काल में बधावा नहीं बजा था। परन्तु बड़े होने पर इसका ज्ञान होना कोई कठिन बात नहीं। जिस किसी ने उन्हें पाला हो अथवा जहाँ वे बालपन में रहे हों वहाँ यह बात आसानी से प्रचलित हो गई होगी और तुलसीदास को भी बड़े होने पर उसका ज्ञान हुआ होगा।

८ वें अवतरण के आधार पर तुलसीदास का जन्म-नाम 'रामबोला' बतलाया जाता है। परन्तु यदि "मातु पिता जग जाय तज्यो" सत्य है, यदि अभुक्त मूल के कारण माता-पिता ने तुलसीदास को जन्मते ही छोड़ दिया था, तो उनका नाम-करण किसने किया? मा-बाप ने मुँह न देखा होगा। फिर 'रामबोला' नाम भी अद्भुत है। गृहस्थों में ऐसा नाम कम सुनने में आता है।

नाम से तो जान पड़ता है कि बालक तुलसी के मुँह से पहले 'राम' शब्द निकला होगा, जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। अथवा तुलसी राम-नाम लेकर भीख माँगता रहा है, जिससे 'रामबोला' नाम से प्रसिद्ध हो गया। परन्तु १० वें अवतरण से यह अवश्य जान पड़ता है कि तुलसीदास को स्वयं अपनी 'जाति-पाँति' का कुछ पता न था। "मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति" और "साहही को गोत गोत होत है गुलाम को" स्पष्ट बताते हैं कि अपनी जाति-पाँति और गोत्र का उनको कुछ पता न था। यदि जन्म ही से वे माता-पिता से परित्यक्त थे, "बारे तें

ललात बिललात द्वार द्वार दीन" रहे, यदि "चारि फल चारि ही चनक को" जानते रहे और उन्होंने "जाति के, सुजाति के, कुजाति के" (चांडाल के) "टूक" "पेटागि बस" खाये थे, तो उनकी जाति-पाँति और गोत्र हो ही क्या सकते थे। हिन्दी-नवरत्न के लेखकों ने तुलसीदास को ब्राह्मण मानकर उनके कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारीण ब्राह्मण होने के विषय में अच्छा तर्क किया है। वह पढ़ने योग्य है। उसमें निर्णय किया गया है कि तुलसीदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके ब्राह्मण होने के तीन प्रमाण प्रायः दिये जाते हैं—(१) तुलसीदास ने स्वयं "जायो कुल मंगन" और (२) "सुकुल जन्म" लिखा है तथा (३) तुलसीदास ने ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा हर जगह की है। अंतिम प्रमाण तो निरर्थक है। क्योंकि भारतवर्ष में, अद्यावधि, कदाचित् ही कोई हिन्दू होगा, जो ब्राह्मणों की बड़ाई न करता हो। फिर तुलसीदास तो वर्णाश्रम-धर्म के बड़े पक्षपाती मालूम होते हैं। ब्राह्मणों की क्यों, उन्होंने तो कुल वर्णाश्रम-प्रणाली की बड़ाई की है और उसके नष्ट हो जाने पर शोक प्रकट किया है। यदि ऐसा कहनेवालों का कहना सत्य है तो अपने कुल को उन्होंने "मंगन कुल" भी तो बतलाया है। कोई ब्राह्मण अपने कुल को "मंगन कुल" न कहेगा। "मंगन" तो ब्राह्मणों को अन्य कुल के लोग अनादरार्थ कहने लगे हैं। कोई ब्राह्मण अपने आपको मंगन-कुल का नहीं कह सकता। ब्राह्मण स्वभावतः कुलाभिमानी होते हैं। 'सुकुल' से अर्थ किसी जाति के 'सु' (अच्छे) 'कुल' से हो सकता है। यदि ऐसे कुल की खोज करना है जो 'सुकुल' भी हो, 'मंगन कुल' भी और जिसमें "जाति-पाँति" न हो, बल्कि जिस "अपत, उतार" की "छाँह छुए" "जग" "ब्याध बाधको" सहमत है, जिसमें "पेटागि बस" "जाति के, सुजाति के, कुजाति के" "टूक" खाये जा सकते हैं तो ब्राह्मणों में ऐसी जाति का मिलना कठिन है। कौन ब्राह्मण ऐसा होगा जिसे परवा न हो कि "धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ" ? इससे और अधिक प्रमाण इस बात का क्या हो सकता है कि उनकी जाति-पाँति का कुछ पता न था ? कोई उन्हें जुलाहा, कोई राजपूत और कोई अवधूत बताता था। कहीं जगह न मिलने पर मसजिद तक में उनको सोना पड़ा—"माँगि के खैबो मसीत को सोइबो"—अर्थात् जब उन्हें कोई धर्मशाला इत्यादि में भी घुसने नहीं देता था तब वे मसजिद ही में पड़े रहते थे। जन्म से जिसने सब प्रकार के लोगों के 'टूक' खाये हों वह अपने को 'मंगन-कुल' का अवश्य बतलावेगा।

कोई-कोई कहते हैं कि तुलसीदास ने अपने लिए अहंकार-रहित होने से, ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु यदि ऐसा होता तो वे हर जगह ऐसा न लिख-

कर कहीं तो अपने को ब्राह्मण लिखते। जो अपने कुल को 'सुकुल' बतला सकता है वह अहंकार-रहित होते हुए भी अपने आपको ब्राह्मण लिखने में न चूकता, बशर्ते कि उसे अपने ब्राह्मण होने का पूर्ण ज्ञान होता। तुलसीदास को तो अपने कुल का पता ही न था। वे केवल इतना सुना-सुनाया जानते रहे होंगे कि किसी भले घर की सन्तान हैं, इसी लिए सुकुल तो कहा; परन्तु स्पष्ट कह दिया कि हमारी कोई जाति-पाँति नहीं है।

खेद है, बाबू शिवनन्दन सहाय जैसे विद्वान् ने, जिन्होंने तुलसीदासजी की निष्पक्ष बृहत् जीवनी लिखी है, यह आदि ही से मान लिया कि वे ब्राह्मण थे। वे लिखते हैं कि "गोस्वामीजी ने जन्म ग्रहण कर किसी ब्राह्मण-कुल को ही पवित्र किया था, इसमें तो सन्देह नहीं।" यह कहकर फिर उन्होंने यह निश्चय करने की चेष्टा की है कि वे कान्यकुब्ज थे या सरयूपारीण। हमें तो कवितावली पढ़कर तुलसीदास के 'ब्राह्मणकुल' में उत्पन्न होने में बड़ा सन्देह हो गया। जन्म ही से जिसने "जाति के कुजाति के अजाति के" टूक खाकर अपना पेट भरा हो वह अपने आपको "जायो कुल मंगन" अवश्य कहेगा। दोनों से यही ज्ञात होता है कि तुलसीदास को अपनी जाति का कुछ पता स्वयं न था। अतः अब उसकी तलाश शश-विषाण की सी खोज है।

तुलसीदास की जाति के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाण दिये जाते हैं—

(अ) काष्ठजिह्वा स्वामी—"तुलसी पराशर गोत्र दुबे पत्यौजा के।"

(आ) तुलसीराम अगरवाला-कृत उर्दू 'भक्तमाल'
(इ) राजा प्रतापसिंह कृत 'भक्तकल्पद्रुम' } कान्यकुब्ज होना बताते हैं।

(ई) ठाकुर शिवसिंह
(उ) पण्डित रामगुलाम द्विवेदी
(ऊ) डाक्टर ग्रियर्सन } सरयूपारीण मानते हैं।

इन सबकी युक्तियों और उनके खण्डन के लिए बाबू शिवनन्दन सहाय कृत श्रीगोस्वामी तुलसीदास देखना चाहिए। बाबू साहब ने इस झंझट को मिटाने के लिए एक नई युक्ति निकाली है कि सरवरिया ब्राह्मण भी अपने आपको कान्यकुब्ज कहते हैं, इसलिए इनको सरवरिया कान्यकुब्ज कहना चाहिए।

हमारी समझ में तो यह सब झंझट मात्र है। जब तक कोई पूरा प्रमाण किसी एक बात के निश्चय करने को न मिले, तुलसीदास को किसी जाति का न मानकर इनके लिखने को ही सार्थक करना चाहिए।

माता-पिता, पुत्र आदि

लोग तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी बताते हैं। कवितावली के निम्न-लिखित छन्द से 'रामबोला' नाम होने का पता तो चलता है, परन्तु माता-पिता के नाम का कुछ पता नहीं चलता—

"साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो 'रामबोला' नाम हौं गुलाम राम साहि को।"

माता का नाम हुलसी होने का प्रमाण यह कहा जाता है कि तुलसीदास ने लिखा है कि "शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी" अथवा अब्दुर्रहीम खानखाना ने कहीं लिखा है कि "गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय"। परन्तु इन दोनों अवतरणों से हुलसी माता का नाम होने का पता नहीं चलता। दोनों में हुलसी से 'प्रसन्न' होने का अर्थ स्पष्ट निकलता है। अपनी माता का नाम कोई नहीं लिखता, फिर जिसने पिता का नाम कहीं न लिखा हो वह माता का नाम क्यों लिखता? दोनों (माता और पिता) ही ने तो 'जग जाय' तज दिया था, फिर उनका ज्ञान ही तुलसीदास को क्योंकर होता?

पिता, पुत्र आदि कुटुम्बियों के प्रमाण में डाक्टर ग्रियर्सन ने निम्न-लिखित दोहे दिये हैं। परन्तु किसी प्रामाणिक प्रति में उनका पता नहीं चलता, अतः वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। न मालूम किसने कब बनाये और यदि तुलसीदास ने स्वयं रचे तो उनके ग्रन्थों में उनका पता क्यों नहीं है।

दुबे आत्माराम है पिता-नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान॥
प्रहलाद उधारन नाम है गुरु का सुनिए साध।
प्रगट नाम नहि कहत जो कहत होय अपराध॥
दीनबंधु पाठक कहत ससुर-नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय-नाम है सुत तारक गति होइ॥

विवाह

तुलसीदास के विवाह के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। एक अवतरण ऊपर दिया गया है, जिसमें उनके ससुर का नाम दीनबन्धु पाठक और उनकी स्त्री का नाम रत्नावली दिया है। दूसरा प्रियादासजी वाला अवतरण है जिसमें उनकी स्त्री का घर जाना और तुलसीदास का पीछा करना, फिर उसके ताने पर वैराग्य होना आदि अनेक दन्त-कथाएँ मिलेंगी। तीसरे महादेवप्रसाद कृत भक्ति-विलास में आगे दी हुई कहानी मिलेगी।

इहि विधि कछुक काल सुख पाये, मातु पिता परलोक सिधाए।
तिनके कर्म कीन्ह बहु भाँती, मन में सोच करत दिन-राती ॥
तहँ गुरु कही पुनि कथा पुरानी, नरहरिदास मनोहर बानी।
सुन तुलसी अब सोच विहाई, सबके मातु-पिता रघुराई ॥
सो तुम मानहु विप्रवर, राजापुर को जाहु।
चेतहु मेरे बचन अब, करहु आपनो ब्याहु ॥
यह सुनि तुरत चले ननियावर, पहुँचे गृही भरे सब चाँवर।
पुनि सुन्दर कुल देख बरावा, मातुल ने त्यहि ब्याह करावा ॥
करहि रमन गुरु-ज्ञान भुलाना, पत्नी सहित परम सुख माना।

इन्हीं कथाओं के ऊपर युक्ति जमाकर लोगों ने अनेक ऐसी ही बातें जोड़ ली हैं। परन्तु तुलसीदास के समकालीन किसी ग्रन्थ में इनकी चर्चा अभी तक नहीं मिली है। कदाचित् प्रियादास वाली बात की पुष्टि में ही यह सब लिखा और कहा गया है। प्रियादास वाली बात पर हम पहले ही कह चुके हैं कि वह कोई प्रमाण नहीं कहा जा सकता। हमारी समझ में तो इन सबके स्थान में तुलसीदास का लिखना कि 'ब्याह न बरेषी' ही को प्रामाणिक मानना चाहिए।

बाज लोगों ने यह कहकर प्रियादासवाली बात को सच मान लिया है कि यदि तुलसीदास को गृहस्थ अवस्था का अनुभव न हुआ होता तो वे उसका ऐसा अच्छा वर्णन न कर सकते। यह कोई बात नहीं। तुलसीदास ने अनेक बातों का ऐसा उत्कृष्ट वर्णन किया है जो उन्होंने प्राकृतिक चक्षु से तो कभी न देखा होगा, यथा रावण का अखाड़ा अथवा जनक की राजसभा आदि। कवि को मानसिक प्रज्ञा होती है और उसी धारणा से वह अनेक चीजों का अनुभव कर लेता है। परन्तु जब तक वे बातें न बताई जायँ जो तुलसीदास बिना गृहस्थावस्था का अनुभव किये नहीं लिख सकते थे तब तक उनके सम्बन्ध में क्या कहा जाय। हमारी समझ में तो 'ब्याह न बरेषी' अथवा "ब्याहे न बरात गये" उन्हीं के लिए कहा जायगा जिनका ब्याह न हुआ हो। यह कहना कि कवि अनेक बातें अपने ऊपर रखकर संसार की कहता है अथवा संसार को सम्मुख रखकर कहता है, एक ऐसी बात है जो अपनी बातों के सब प्रमाण को झूठा कर सकती है। जो बाते स्पष्ट कवि के लिए कही हुई दिखाई देती हैं उन्हें कवि के लिए ही मानना चाहिए और जो आम मालूम होती हैं उनको आम समझना चाहिए।

गुरु

तुलसीदास के गुरु नरहरिदास बताये जाते हैं। इसका आधार उनका यह दोहा है—

बंदौं गुरु-पद-कंज कृपासिन्धु नररूप हरि।

परन्तु यह कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। नररूप हरि गुरु का विशेषण माना जा सकता है। कवितावली से तो केवल इतना पता चलता है कि इनके गुरु कोई रामानन्दी थे। तुलसीदास अपने गुरु के पास बालकपन ही में पहुँच गये थे। माता-पिता से तजे जाने पर जिस समय "नीच, निरादर-भाजन, कादर कूकर टूकनि लागि" लालायित फिरते थे उसी समय "राम सुभाउ सुन्यो तुलसी" अर्थात् बालकपन ही में 'राम-चर्चा' इनको सुनाई पड़ गई थी। उसी समय 'प्रभु सों' 'बारक पेट खलाई' 'कह्यौ' से तात्पर्य मालूम होता है कि पेट के अर्थ भीख माँगने गये थे, पर वहीं रह गये। क्योंकि 'रघुनाथ से साहब' ने स्वार्थ (भोजन) और परमार्थ (राम-भक्ति) दोनों के देने में 'खोरि न लाई'। माँगने गये थे भीख, पा गये स्वार्थ और परमार्थ दोनों। कदाचित् किसी बड़े रामानन्दी साधु के यहाँ बालकपन ही में जाने से साधु की कृपा से वहीं रहने और रामकथा सुनने लगे, जिससे अनन्य भक्त होकर इतना बड़ा यश प्राप्त किया। यही अभिप्राय मानस में यह लिखने से ज्ञात होता है कि "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत, समुझि परी नहिँ बालपन तब अति रहेउँ अचेत"। अब प्रश्न होता है कि यह 'रघुनाथ' से 'साहब' रामानन्दी साधु कौन और कहाँ के थे और तुलसीदास से उनसे कहाँ भेंट हुई। कवितावली में इन प्रश्नों के उत्तर के लिए कुछ सामग्री नहीं है। कोई-कोई लोग 'सूकरखेत' को सोरों बताकर बड़ी व्याख्या करते हैं। परन्तु यदि 'मणिकर्णिका घाट' 'नीमसार' में और 'हरिद्वार' 'काशी' में और 'सीता-कुण्ड' 'खेरी' में हो सकता है तो कहीं पर भी 'सूकरखेत' होना सम्भव है। घाटों के नाम से स्थानों का नाम निश्चित नहीं हो सकता।

कुछ हो, जब तक कोई और अच्छा प्रमाण नहीं मिलता तब तक तुलसीदासजी की जीवनी ऐसी ही संदिग्ध अवस्था में रहेगी। जो जिसको सूझता है वही वह लिखता है और फिर एक बात की पुष्टि के लिए अनेक कथाएँ खोज निकालता या पैदा करता है। हमारी समझ में तो सबको छोड़कर तुलसीदास के अपने कहे हुए पर ही उसे आश्रित रखना चाहिए, जब तक कुछ प्रमाण और न मिले।

ग्रन्थ-प्रशंसा

तुलसीदास के ग्रन्थों में रामचरितमानस को छोड़कर कवितावली को सर्वोच्च नहीं तो एक उच्च पद अवश्य प्राप्त है। छन्दों के बाहुल्य तथा कविता की शैली के कारण वह कविता-प्रेमियों की प्रीति-भाजन तो है ही, परन्तु तुलसीदास के जीवन-

गोस्वामी तुलसीदासजी

सम्बन्धी और सामयिक घटनाओं के वर्णन से हिन्दी भाषा के इतिहासज्ञों में भी उसका आदर थोड़ा नहीं है। कवितावली की भाषा अधिकतर व्रजभाषा है। भाषा का माधुर्य्य उसके छन्दों में भरा पड़ा है। प्राकृतिक वर्णन भी ख़ूब है। उसमें अन्य भाषाओं के शब्दों—फ़ारसी, अरबी, बुन्देलखण्डी आदि—का भी बहुतायत से प्रयोग किया गया है। ग्रामीण भाषा के और ख़ासकर बुन्देलखण्डी ग्रामीण भाषा के शब्द भी पाये जाते हैं जिनका अर्थ लगाना भी कभी-कभी कठिन हो जाता है। जहाँ कविजी को आवश्यक मालूम हुआ है वहाँ उन्होंने अन्य भाषाओं और संस्कृत के शब्दों को मनमाना स्वरूप देकर प्रयुक्त किया है। कवितावली के पढ़ने से यह प्रत्यक्ष भान होता है कि उसके अनेक छन्द तुलसीदासजी ने उस समय रचे थे जिस समय हिन्दी भाषा पर उनका पूर्ण रूप से अधिकार स्थिर नहीं हुआ था। परन्तु अनेक छन्द, जो अनुमानतः प्रौढ़काल के हैं, भाषा के सम्बन्ध से बड़ी उच्च कोटि के हैं। उनमें प्रसाद गुण भरा पड़ा है। उदाहरण के लिए बालकाण्ड के उन छन्दों को देखिए जिनमें रामचन्द्रजी के बाल स्वरूप का वर्णन है। लङ्का-काण्ड और सुन्दर-काण्ड भी ऐसे छन्दों से भरे पड़े हैं। ओज गुण भी उनके अनेक छन्दों में मिलेगा।

अलङ्कार

कवितावली में अलङ्कारों की आयोजना भी अच्छी है। रूपक, यमक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि अलङ्कार बहुतायत से हैं। बहुधा स्वाभाविक रूप से अलङ्कारों का प्रभाव दिखाई देता है परन्तु अनेक रूपक ऐसी खींचातानी के साथ बाँधे गये हैं कि बिलकुल अस्वाभाविक हो गये हैं। उदाहरण के लिए छन्द २८४ देखिए जिसमें चित्रकूट का रूपक अहेरी से बाँधा गया है।

रस

कविता-प्रेमियों को इसमें नव रसों का स्वाद मिलता है। नमूने के लिए निम्न-लिखित पद्य उद्धृत किये जाते हैं—

शृङ्गार

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछीसी भौंहैं।
तून, सरासन, बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों "कहो साँवरे से, सखि! रावरे को हैं"? ॥ १ ॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज कली॥ २॥

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥ ३॥

करुणा

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये, मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

रौद्र

गर्भ के अर्भक काटन कों पटु धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा "धनु को दल्यौ," हौं दलिहौं बल ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो लरिहै, मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो, गरूर गुमान भरो, कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको॥

हास्य

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रत-धारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥

शान्त

न मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न विराग न ज्ञान कहूँ सब लागत फोकट झूँठ जटो॥
नट ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिय तो रसना निसि-बासर राम रटो॥

बीभत्स

लोथिन सों लाहू के प्रवाह चले जहां तहां, मानहुँ गिरिन गेरु झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर, कुंजर करारे भारे, कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीर चारी भारी भारी तहाँ, सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु-फारि फारि पेट खात, काक कंक-बालक कोलाहल करत हैं॥ १॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कें।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनी तापसी सी तीर-तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कें॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से, प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कें।
तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ हेरि हेरि हँसत हैं हाथ जोरि जोरि कें॥ २॥

अद्भुत

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि, रूप क निधान, घन-दामिनी बरन हैं।
तुलसी सुतीय सङ्ग सहज सुहाये अङ्ग, नवल कँवल हू ते कोमल चरन हैं॥
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति, मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ, चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥ १॥

लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानैा प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥ २॥

भयानक

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत "जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी, ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो, छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे"।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं, "बार बार कह्यौ पिय कपि सों न लागि रे"॥

वीर

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर, जाकी आँच अजहूँ लसत लंक लाह सी।
सोई हनुमान बलवान बांके बानइत, जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी॥
कंपत अकंपन सुखाय अतिकाय काय, कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो बीर रघुबीर को समीर-सूनु साहसी॥

कवितावली संग्रहमात्र

किसी किसी ने लिखा है कि कवितावली में सवैया, झूलना और घनाचरी के अतिरिक्त और छन्द नहीं हैं। परन्तु इसमें कुछ छप्पय भी मिलते हैं। इसी प्रकार कहीं कहीं इसमें कवित्त, घनाचरी, सवैया और छप्पय होना लिखा है। वास्तव में झूलना भी इसमें हैं।

कवितावली के संबंध में किसी-किसी का मत है कि वह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। समय-समय पर जो कवित्त तुलसीदास ने कहे और जो समस्यापूर्तियाँ उन्होंने कीं, उन्हीं का संग्रह-मात्र यह ग्रन्थ है। इसका प्रमाण यह बतलाया जाता है कि कवितावली में, काण्डों के विस्तार में, बहुत असमानता है। यथा—आरण्य और किष्किन्धा एक ही एक छन्द में समाप्त हो गये हैं। परन्तु यदि यह मत ठीक है तो उत्तरकाण्ड को छोड़कर, जिसमें दुनिया भर के विषयों पर कविता है, शेष काण्डों के छन्दों की रचना का कारण-विशेष होना चाहिए। सम्भव है, रामचरित-मानस में यथास्थान रखने के लिए कुछ छन्दों का निर्माण किया गया हो और अच्छे न जान पड़ने से या अन्य किसी कारण से उनका परित्याग कर दिया गया हो। (तुलसीदास ने दोहा आदि में ही रामचरितमानस रचा है।) यह भी सम्भव है कि पहले उन्होंने इसी प्रकार का छोटा रामायण बनाने का सङ्कल्प किया हो और जैसे-जैसे कवित्व-शक्ति बढ़ती गई हो वैसे-वैसे कथा बढ़ते देख रामचरित-मानस का निर्माण कर दिया हो।

कवितावली का निर्माण-काल संवत् १६६९ से १६७१ तक लोगों ने माना है। इसके प्रमाण में यह अवतरण दिया जाता है—'एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की' इत्यादि। कहा जाता है कि जिस समय यह छन्द कहा गया होगा उस समय शनैश्चर मीन के रहे होंगे। बैजनाथदास ने यह काल संवत् १६३५ से १६३७ तक ठहराया है और लिखा है कि रामचरितमानस के पीछे पहला ग्रन्थ यही बना काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के छपाये हुए रामचरित-मानस की भूमिका में यह काल अर्थात् जब शनैश्चर मीन के थे संवत् १६४० से १६४२ तक और संवत् १६६९ से १६७१ तक लिखा है। परन्तु रुद्रबीसी १६६९ से १६७१ तक होने से कवितावली का रचना-काल संवत् १६६९ से १६७१ तक माना है। यदि कवितावली एक संग्रह-मात्र है तो क्या यह सम्भव है कि उसमें के सब छन्दों का रचना-काल वही था जो इस एक कवित्त का रचना-काल (सं० १६३५ से १६३७ तक अथवा १६६९ से ७१ तक) रहा हो? एक कवित्त के काल से संग्रह के समस्त कवित्तों का रचना-काल निर्धारित नहीं हो सकता। हमें कवितावली के

सब छन्द मानस के पीछे के बने नहीं प्रतीत होते। एक तो यही समझ में नहीं आता कि मानस के बन चुकने के पीछे ऐसे छोटे ग्रन्थ के रचने ही से तुलसीदास का क्या प्रयोजन था। मानस जैसे ग्रन्थ से उनका यश दूर-दूर तक फैल चुका था। फिर उसके होते हुए कवितावली ऐसे ग्रन्थ का निर्माण करके क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? हाँ, यह समझ में आ सकता है कि जब कवितावली आदि छोटे ग्रन्थों से तुलसीदास की तृप्ति न हुई होगी तब अपनी शान्ति स्थिर करने को उन्होंने मानस का निर्माण किया हो। कवितावली के निम्नलिखित छन्द से भी यही अनुमान किया जा सकता है।

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी, न लही करनी न कछू की।
राम-कथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ी उर आखर दू की॥

पढ़ने से रामचरित-मानस प्रौढ़ अवस्था का ग्रन्थ और कवितावली के अनेक छन्द उससे बहुत पहले के मालूम होते हैं। उदाहरणार्थ केवट के नाव लाने और बिना पग धोये उतारने से इनकार करने के अवसर पर रामचरित-मानस और कवितावली में कही हुई कविता को देखिए।

कवितावली में लिखा है—

× × × × ×

बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।

यह रामचन्द्र से केवट ने कहा है कि चाहे आप मार ही क्यों न डालें परन्तु बिना पग धोये नाव पर न चढ़ाऊँगा, परन्तु रामचरित-मानस में जब तुलसीदास में अनन्य भक्ति स्थिर हो चुकी थी तब अपने इष्टदेव की शान में केवट से ऐसी कड़ी बात कहलवाना उन्हें अनुचित प्रतीत हुआ। मानस में यही बात लक्ष्मण की ओर इंगित करके लिखी गई है—

× × × × ×

बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहउँ,
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पार उतारिहउँ।

यही गति परशुराम की कथा में है। यही बात 'नवरत्न' के रचयिताओं ने लङ्का-काण्ड में देखी है, जहाँ हनुमान् की लड़ाई का ब्योरेवार वर्णन है और श्रीरामचन्द्र की लड़ाई थोड़े ही में लिखी है।

भरत की महिमा का वर्णन कवितावली में नहीं है। इस पर किसी-किसी को भ्रम हुआ कि कदाचित् यह तुलसीदास का ग्रन्थ ही नहीं है। परन्तु यदि हमारा अनु-

मान सही है कि इसके छन्द केवल मानस में सम्मिलित करने के लिए बनाये गये थे तो कुछ कथाओं पर छन्द न मिलने में कोई आश्चर्य्य नहीं। क्योंकि तुलसीदास को उनकी कथा चौपाई में ही लिखना मञ्जूर रहा होगा, इसलिए इस कथा के छन्द नहीं लिखे गये। अथवा जो छन्द लिखे गये होंगे वे रामचरित-मानस में ले लिये गये होंगे और कवितावली के लिए बाकी नहीं रहे।

रामचरित-मानस और कवितावली की भाषा पर विचार करने से भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। कवि की प्रारम्भिक अवस्था में शब्दाडम्बर पर उसका विशेष ध्यान रहा करता है। वह बड़े-बड़े क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया करता है या भाषा पर पूर्ण अधिकार न होने से शब्दों को तोड़-मरोड़कर उनका प्रयोग करता है। परन्तु जब उसका शब्द-कोष बढ़ जाता है, भाषा पर अधिकार जम जाता है तब वह शब्दों को छोड़कर भावों की ओर ध्यान देता है। इसी लिए प्रौढ़ावस्था की कविता में उच्च भाव और अर्थ-गाम्भीर्य्य पाये जाते हैं। कवितावली में शब्द बहुत तोड़े-मरोड़े हुए, अनेक भाषाओं से भरे गये हैं। उसके कवि का शब्द-कोष सङ्कीर्ण था। वह भाषा को बना-बनाकर लिखता था। तुकबन्दी और समस्यापूर्ति की ओर भी उसका ध्यान जाता था। मानस के तुलसीदास का शब्द-कोष विस्तीर्ण था। वे भाषा पर अधिकार जमा चुके थे। शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता उन्हें नहीं थी। समस्यापूर्ति से उनका ध्यान हट चुका था। रूपक बाँधने के लिए प्राकृतिक निरीक्षण से काम लिया जाता था न कि मनगढ़न्त ख़यालों से।

संक्षेपतः शब्दाडम्बर से हटकर मन अर्थ-गाम्भीर्य्य, उच्च भावों और श्लिष्ट भाषा से महाकाव्य बनाने में लगा हुआ था। कवि की हीन दशा की गाथा समाप्त हो चुकी थी। समाज-सुधार ही लक्ष्य था। बुरा कहनेवालों को भी नमस्कार था। उन पर क्रोध न था। मन को पूर्ण शान्ति मिल चुकी थी। कवितावली में भी इन लक्षणों से युक्त छन्द मिलते हैं। ये प्रौढ़ावस्था के बने हैं। कदाचित् मानस के साथ या उसके पीछे लिखे गये हों। परन्तु भाषा के देखने से इसमें कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि कवितावली का एक बड़ा भाग मानस के पूर्व का है। वह कवि की प्रारम्भिक नहीं तो मध्यावस्था का अवश्य द्योतक है। अपने इस कथन के समर्थन में हम निम्न उदाहरण देते हैं—

उत्तरकाण्ड के छन्द नं० ११३, १५४, १५५, १५७, १५८, १६१, १६४, १६५, १६६, २३१, २३६।

उर्दू के शब्द—फ़हम, ख़लक़, जहाज़, फ़ौज, क़हर, निवाज़, दग़ाबाज़, ग़ुलाम, ख़ास, ख़सम, जहान इत्यादि।

ग्रामीण भाषा के शब्द,—कांडिगो, नाढ़े, साढ़े, झुकर, खपुआ, फङ्ग, चटकन, बिसाहे, मजक इत्यादि।

तोड़े-मरोड़े हुए शब्द—तिच्छन, नच्छन, माहली, लसम, जरणी, जानपनी, उप्पम इत्यादि—

कवितावली में सामयिक वर्णन

कवितावली में सामयिक अवस्था का वर्णन अनेक छन्दों में किया गया है—

(१) जाहिर जहान में जमानो एक भांति भयो, बेंचिये बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु × × ×

(२) स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ, कहायो राम रावरो हैां, जानत जहानु है।
नाम के प्रताप, बाप! आज लैं निबाही नीके, आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है॥
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव! पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु है।
तुलसी की, बलि, बार बार ही सँभार कीबी जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है॥

(३) दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकालदुख दुरित दुराज, सुख सुकृत सँकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड काल की करालता भले को होत पोचु है॥
आपने तैा एक × × ×
× × × ×

(४) राजा रङ्क, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम कें।
× × × ×
× × × ×

(५) बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो, त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है॥
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग, निगम नियोग ते सो केलही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि राम नाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥

(६) बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपाल न राज-समाज बड़ोई छली है॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥

(७) खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच बस, कहैं एक एकन सों "कहाँ जाइ, का करी"॥
बेद हूँ पुरान कही, लोकहू बिलोकियत, साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु! दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥

(८) कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन जोबन जुर-जरत, परै न कल कही।
राज काज कुपथ कुसाज, भोग रोग ही के, वेद-बुध बिद्या पाइ बिबश बलकही॥
गति तुलसीस की लखै न कोउ जो करत, पब्बइतें छार, छारै पब्बइ पलकहीं।
कासों कीजै रोष? दोष दीजै काहि? पाहि राम! कियो कलिकाल कुलि खलल खलकहीं॥

(९) बबुर बहेरे को बनाइ बाग लाइयत, रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है।
गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हूँ को, आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है॥
आप महापातकी हँसत हरि हरहू को, आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत है।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है॥

उपर्युक्त सामान्य व्यवस्था के वर्णन के अतिरिक्त तुलसीदास ने कवितावली के उत्तर-काण्ड में १५ कवित्तों में काशी में महामारी का वर्णन किया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि संग्रह संवत् १६७५ के पश्चात् किया गया है। आगरे में सन् १६१८ ईसवी अर्थात् संवत् १६७५ में महामारी थी और उसी समय के लगभग वह काशी में रही होगी।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय समाज की बड़ी दीन और हीन अवस्था थी। न वर्णाश्रम-धर्म का पालन होता था और न कर्म था। प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना पंथ चलाने को उतारू था। कोई किसी का आदर नहीं करता था। बदमाशों का ज़ोर था, धनवानों को शोच था। जीविका तो एक ओर रही, लोगों को भीख भी न मिलती थी। पण्डित लोग विवाद में समय बिताते थे। अकाल बारम्बार पड़ते थे। दरिद्रता संसार में छाई हुई थी। राजा कृपालु न था, राज-समाज छली था। वैरागी वेश-धारी रागी थे, गृहस्थों को भोग प्राप्त नहीं था।

समाज की ऐसी हीन दशा में यदि तुलसीदास को भीख के लिए भी कष्ट उठाना पड़ा तो क्या आश्चर्य है?

समाज-वर्णन के अतिरिक्त कवितावली में अन्य विषयों का भी वर्णन है—

(अ) मूर्ति-पूजा का वर्णन तीन छन्दों में किया गया है। एक छन्द में मूर्ति-पूजा की उत्पत्तियाँ दी गई हैं—

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहां' 'सब ठाउँ हैं', 'खंभ में' 'हां' सुनि हांक नृकेहरि जागे॥
बैरि बिदारि भये बिकराल, कहै प्रह्लादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तबतें सब पाहन पूजन लागे॥

(आ) क्षेमकरी शकुन वर्णन— १ छन्द
(इ) प्रह्लाद-चरित्र— ४ "
(ई) उद्धव-गोपी-संवाद— ३ "
(उ) चित्रकूट-वर्णन— २ "
(ऊ) बाहु-पीड़ा-वर्णन— २ "

विषय-सूची

श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत

कवितावली

बालकाण्ड

सवैया

[१]

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे, धिक से ॥
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक से ।
सजनी ससि में समसील उभै नव-नील सरोरुह से बिकसे ॥

अर्थ—राजा दशरथ के द्वार पर मैं आज सुबह गई, (तो) राजा लड़के को गोद में लेकर निकले । मैं शोच को छुड़ानेवाले लड़के (रामचन्द्र) को देखकर ठगी सी रह गई (चुपचाप रह गई), (और क्यों न रह जाती ?) जो न ठगे उसे धिक्कार है । हे तुलसी ! उसके काजल लगे नैन, मन को प्रसन्न करनेवाले, अच्छे खञ्जन के बच्चे से थे । जैसे हे सजनी ! चन्द्र में बराबर के दो नये नीले कमल खिले हों ।

शब्दार्थ—से = वे । तुलसी मनरञ्जन—हे तुलसीदास ! मन को प्रसन्न करनेवाले, अथवा तुलसी के मन को प्रसन्न करनेवाले । सकारे = सुबह । अवलोकि = देखकर । जातक = बच्चे । ससि = चंद्रमा । समसील = बराबर के । उभै = दो । सरोरुह = कमल । बिकसे = खिले ।

[२]

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये ।
नव-नील कलेवर पीत भँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये ॥
अरविंद सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये ।
मन मों न बस्यौ अस बालक जौ तुलसी जग में फल कौन जिये ? ॥

अर्थ—कमल से हाथों में पहुँची और पैरों में घुँघुरू थे और हृदय में अच्छी मणियों की माला बनी थी। नये (कोमल) नीले अङ्ग पीली झँगुलियाँ में झलकते थे। राजा गोद में लिये अति प्रसन्न हो रहे थे। उसका मुख कमल सा था और रूप (सुंदरता) के मकरन्द को आनन्दित होकर नयन रूपी भृङ्ग (भौंरे) पी रहे थे। यदि ऐसा बालक मन में न बसा, तो हे तुलसी! इस जग में जीने का क्या फल है?

शब्दार्थ—नूपुर = घुँघुरू। मरन्द = पुष्पों का रस, मकरन्द। भृङ्ग = भौंरा। कंज = कमल। मंजु = सुंदर। कलेवर = शरीर। अरविंद = कमल।

[३]

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं❀॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं॥

अर्थ—शरीर की ज्योति नीले कमल की सुन्दरता को हरती थी, और नयन कमलों की शोभा को हरते थे। अति सुन्दर धूल-भरे शोभायमान थे और सब कामदेव की छवि को दूर रखते थे, अर्थात् उनकी शोभा कामदेव से भी बढ़कर थी। छोटे छोटे दाँत बिजली की ज्योति से चमकते थे, (लड़के) किलकते थे, और बाल-विनोद (लड़कों का सा खेल) कर रहे थे। (ऐसे) राजा दशरथ के चारों पुत्र तुलसी के मनरूपी मन्दिर में सदा विहार करें।

शब्दार्थ—तन = शरीर। दुति = प्रकाश। सरोरुह = कमल। मंजुलताई = सुंदरता। अनंग = कामदेव। कल = मीठा शब्द।

[४]

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन मंदिर में बिहरैं॥†

अर्थ—कभी अड़कर चन्द्रमा माँगते हैं, कभी (अपनी) परछाहीं देखकर डरते हैं, और कभी हाथ की ताली बजा-बजाकर नाचते हैं। इससे सब माताओं का मन ख़ुश

❀ पाठान्तर—करैं।

† कुछ प्रतियों में यह छन्द नहीं मिलता है।

होता है। कभी हठ करके ख़फ़ा होकर कुछ कहते हैं फिर वही लेते हैं कि जिसके लिए अड़ करते हैं। दशरथ के ऐसे चारों लड़के तुलसीदास के मन में सदा विहार करते रहें।

शब्दार्थ—आरि करें, अरें = हठ करते हैं। प्रतिबिंब = परछाहीं

[५]

वर दंत की पंगति कुन्दकली, अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करैं तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की॥

अर्थ—अच्छे दाँतों की पाँति कुन्दकली सी है और ओठों के खोलने से ऐसा प्रतीत होता है मानों बादलों के बीच में बिजली चमकती है, अथवा, अधर खोलने से दाँत कुंदकली से दिखाई देते हैं और अमूल्य मोतियों की माला ऐसी सुन्दर है मानों बादल के बीच में बिजली चमकती है। घुँघुरारी लटैं मुख के ऊपर लटकती हैं। कुण्डल कपोलों पर शोभायमान हैं (हिल रहे हैं)। तुलसी इन पर अपने प्राण न्योछावर करता है और इन बोलों की बलैयाँ लेता है।

शब्दार्थ—पंगति = पंक्ति, लकीर। अधर = ओठ। चपला = बिजली।

[६]

पद कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजूतट चौहट हाट हिये॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये?।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये॥

अर्थ—कमल से पैरों में सुन्दर पनही बनी (पहने) हैं और कमल से हाथों में तीर कमान लिये हुए लड़कों के सङ्ग सरजू के किनारे चौहट हाट हिये (चौराहे व बाज़ार व हृदय) में खेलते फिरते हैं। हे तुलसी ! यदि ऐसे बालक से प्रीति नहीं है, तो जप योग व समाधि करने से क्या लाभ ? वे मनुष्य गधे, सुअर व कुत्ते के समान हैं। कहौ उनके जीने से इस संसार में कौन लाभ है, अर्थात् उनका जीना वृथा है।

[७]

सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर, सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं करतीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै॥

तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न पबै ॥

अर्थ—श्रेष्ठ सरजू के तीर पर रघुवीर, और उनके सब वीर सखा फिर रहे हैं। हाथ में छोटे-छोटे धनुष और बाण हैं और कमर पर तरकस कसे हैं। नये पीत पट शोभायमान हैं। हे तुलसी! दश, चारि, नौ, तीन, इकीस सबमें सरस्वती की मति उस समय की शोभा की उपमा के लिए विचारते और देखते फिरते लँगड़ी हो गई और उपमा न मिली।

शब्दार्थ—दश = दिशा। चारि = चार युग। नौ = नौ खण्ड। तीन = तीनों काल। इक्कीस = ७ लोक + १४ भुवन। भारति = सरस्वती।

घनाक्षरी

[८]

छोनी में के छोनीपति छाजे जिन्हैं छत्र छाया
छोनी छोनी छाये छिति आये निमिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बरबेष बपु,
बरिबे को बोले बयदेही बरकाज के ॥
बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
तुलसी मुदित मन पुरनर-नारि जेते
बारबार हेरैं मुख औध मृगराज के ॥

अर्थ—सब पृथ्वी पर के राजा, जिन्हें छत्र की छाया जगह-जगह छाये रहती है अर्थात् जिन पर सब जगह छत्र लगा रहता है, वह मिथिला के राजा की सब भूमि पर (देश में) छावनी-छावनी में, जगह-जगह, छा गये। बड़े प्रतापवान्, तेजवाले, बरिवण्ड (बलवान्), अच्छे शरीर और वेषवाले, वैदेही के स्वयंवर में बरने को बुलाये हैं। बन्दीजन बोले विरद (प्रण) बजाकर (अर्थात् ज़ोर से पुकारकर) अथवा विरुदावली कहकर, अच्छे-अच्छे वाजे भी वजे और उस समाज के बाजे-बाजे वीर अपने बाहु धुनने लगे अर्थात् सीता ब्याहने के लिए बाहें फुलाने लगे, ताल ठोकने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय जनकपुर के जितने पुरुष और स्त्रियाँ थीं वह सब अवध के सिंह अर्थात् राजा राम के मुख को बार-बार देखते थे।

शब्दार्थ—छोनी, छिति = पृथ्वी। बोले = बुलाये आये हैं। बरकाज = स्वयंवर। छोनी = छावनी, डेरा।

[९]

सीय के स्वयंवर समाज जहाँ राजनि को,
राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को ? ।
पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से,
गुन के निधान रूपधाम सोम काम को ? ॥
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को ।
तहाँ दसरत्थ के समर्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायो चाप चन्द्रमा-ललाम को ॥

अर्थ—सीताजी के स्वयंवर में जहाँ राजाओं का समाज था, और राजाओं के राजा और महाराजा अनेक विद्यमान थे, जिनके नाम कौन जानता है (अर्थात् इतने राजा और महाराजा थे जिनके नाम तक कोई नहीं जानता था)। (वह राजा लोग) पवन, इन्द्र, अग्नि, सूर्य्य, कुवेर और चन्द्र से गुण के समुद्र और रूप के घर कामदेव की सी शोभावाले थे। बली बाण और रावण सरीखे शूर वहाँ थे, जिन्हें सदा रण का सालिम (पूरा) गुमान (घमण्ड) था। वहाँ दशरथ के समर्थ (लायक़) बेटे तुलसीदास के नाथ (रामचन्द्र) ने चपरि (बढ़कर) चन्द्रमा-ललाम (महादेव) के चाप (धनुष) को चढ़ा दिया।

शब्दार्थ—चंद्रमा-ललाम = जिनके माथे पर चंद्रमा है अर्थात् महादेव।

[१०]

मयनमहन पुर-दहन गहन जानि
आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि* जेते भले भले भूमिपाल
किये बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है ॥

* पाठांतर—सदश।

कुलिस कठोर कूर्म-पीठतें कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत हीं,
टूट्यौ मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है॥

अर्थ—कामदेव के नाशक, पुर (त्रिपुरासुर) के दहन करनेवाले, महादेवजी ने जानि (जान-बूझकर) सब गहन अस्त्रों का सार लाकर, अथवा कामदेव के नाशक महादेव ने पुर के मारने का काम कठिन जानकर, जिस धनुष को सब चीज़ों का सार लेकर बनवाया है। जनक सदसि (सभा) में जितने बड़े-बड़े भले-भले राजा हैं उन सबको बलहीन करके अर्थात् मानों उनका बल अपने में खींचकर अपना बल बढ़ाया है। वज्र से भी कठोर, कछुए की पीठ से भी कड़ा ऐसे हठी धनुष को किसी ने भी आगे बढ़कर नहीं चढ़ाया अथवा न हठ करके और न भूलकर भी धनुष को किसी ने चढ़ाया। सो धनुष हे तुलसी! रामचन्द्रजी के कमल से हाथ छूते ही टूट गया मानो बचपन से महादेवजी ने उसे यही पढ़ाया था कि रामचन्द्रजी छुवैं तब ही तू टूट जाना।

शब्दार्थ—मयन = कामदेव। महन = नाश करनेवाले। गहन = घोर, कठिन। कुलिस = वज्र।

छप्पय

[११]

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुर बिमान, हिमभानु, भानु संघटित परस्पर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥

अर्थ—अति भारी पृथ्वी भी सब समुद्रों पर्वतों और तालाबों सहित हिलने लगी। शेषजी उस समय बहिरे हो गये। दिक्पाल और सब चर व अचर व्याकुल हो गये। दिशाओं के हाथी लरखरा गये (हिलने लगे) और रावण मुहँ के बल गिर पड़ा। देवताओं के विमान, सूर्य्य और चन्द्रमा एक दूसरे में मिल गये। ब्रह्मा

और महादेव चौंक उठे; वराह, कछुवा और शेप सबके सब हिलने लगे। जब रामचन्द्रजी ने शिव का धनुप तोड़ा तो ऐसी भारी आवाज़ हुई कि ब्रह्माण्ड फट गया ॥

शब्दार्थ--गुर्वि =भारी। पव्वै=पर्वत। हिमभानु=चन्द्रमा। चण्ड = तीक्ष्ण।

घनाक्षरी

[१२]

लोचनाभिराम घन-स्याम रामरूप सिसु,
सखी कहैं सखी सों तू प्रेम पय पालि, री।
बालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तोर्यो,
मंडलीक-मंडली-प्रतापदाप दालि री ॥
जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, तुलसी को,
सबको भावतो ह्वैहै मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला की कोखि परतोषि तन वारिए री,
राय दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥

अर्थ—सखी सखी से कहती है कि तू लोचन-अभिराम (नेत्रों को सुख देनेवाले) बादल से श्याम रूप-वाले राम बालक को प्रेम के दूध से पाल। इस राजा के बालक ने सहज ही में धनुप तोड़ डाला और बड़े बड़े राजाओं की मण्डली के बल के गर्व को नाश कर दिया। जनक, सीता, हमारा, तुम्हारा और तुलसीदास सबका प्यारा होगा, यह मैंने तो कल ही कहा था। कौशल्या की कोख पर खुश होकर अपने तन को निछावर करना चाहिए, और हे आली! राजा दशरथ की बलैया लेनी चाहिए (जिन्होंने ऐसा पुत्र उत्पन्न किया)।

शब्दार्थ—मंडलीक = राजा। पिनाक = धनुष। दाप = ग़रूर, गर्व। तोषि = प्रसन्नता।

[१३]

दूब दधि रोचना कनकथार भरि भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकी के,
"पहिराओ राघो जू को" सखियाँ सिखावतीं ॥

तुलसी मुदितमन जनक नगरजन,
झाँकतीं, झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं ।
मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं पलकैं न लावतीं ॥

अर्थ—सोने के थारों में दूब, दही, गोरोचन भर-भर के आरती बना-बनाकर सुन्दर स्त्रियाँ गाती हुई चलीं। जानकी के कमल से हाथ जयमाल लिये शोभायमान थे। और सखियाँ सिखाती थीं कि रामचन्द्रजी को पहिनावो। तुलसीदासजी कहते हैं कि जनक नगर के लोग मन में प्रसन्न थे, और रानी झरोखों में लगी (खड़ी) झाँकती शोभा पा रही थीं, मानों सुन्दर चकोरी अपने अपने नीड़ (अड्डे) पर बैठी हुई चन्द्रमा की किरण पी रही थीं और पलक भी नहीं झपकाती थीं।

शब्दार्थ—रोचना = गोरोचन। कनक = सोना। कंज = कमल। चारु = सुंदर।

[१४]

नगर निसान बर बाजैं, ब्योम दुंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं।
जय जय तिहूँ पुर, जयमाल रामउर,
बरसैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं ॥
जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं ।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरि,
"जोरी जियो जुग जुग" सखीजन जाँचहीं ॥

अर्थ—नगर में सुन्दर नगाड़े बज रहे थे और आकाश में दुन्दुभियाँ बजती थीं। देवताओं की स्त्रियाँ विमानों पर चढ़ीं गा-गाकर नाच रही थीं। तीनों लोकों में जय-जय मच गया; जयमाल रामचन्द्र के गले में शोभायमान थी; देवता लोग सुन्दर रूप धरे फूलों की वर्षा कर रहे थे। जनकजी का प्रण रह गया; सबके मन की हो गई। तुलसीदास प्रसन्न थे। उनके रोम-रोम में हर्ष भरा था। साँवले लड़के और गोरी वधू पर तिनका तोड़ (नज़र न लगने देने के लिए) स्त्रियाँ यही माँगती थीं कि यह जोड़ी जुग-जुग जिये।

शब्दार्थ—व्योम = आकाश। रूर = सुंदर। राचहीं = रचना, बनाना। भावतो = मन का चाहा।

[१५]

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों,
"लोक लखि बोलिए पुनीति रीति मारखी"।
जगदम्बा जानकी, जगत पितु रामभद्र,
जानि, जिय जोवो, जो न लागे मुँह कारखी॥
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान वेद,
बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज ना विराजमान,
राम से न वर, दुलही न सीय सारखी॥

अर्थ—अच्छे राजा लोग भोंड़े राजाओं से वचन कहते थे कि लोक को देखकर प्रेम की पवित्र रीति को कहिए। हृदय से श्रीजानकी को जगदम्बा और श्रीराम को जगत्-पिता जान कर देखो जिससे मुँह में कालौंच न लगे। बहुत से ब्याह देखे हैं, पुराण वेदों में सुने हैं और पण्डितगण, साधु मनुष्य, स्त्री और पारिषदों से बूझे हैं (जाने हैं)। परन्तु ऐसे समान समधी किसी समाज में विद्यमान नहीं हुए; न राम सा दुलहा न जानकी सी दुलहिन, देखी, न सुनी।

[१६]

बानी, बिधि, गौरी, हर, सेस हूँ, गनेस कही,
सही भरी लोमस, भुसुण्डि बहु बारिखो।
चारि दस भुवन निहारि नर नारि सब,
नारद को परदा न नारद सो पारिखो॥
तिन कही जग मैं जगमगाति जोरी एक,
दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो।
रमा, रमारमन, सुजान हनुमान कही,
"सीय सी न तीय, न पुरुष राम सारिखो"॥

अर्थ—सरस्वती, ब्रह्मा, गौरी, महादेव, शेष और गणेश ने कहा और लोमश व बहुत पुराने भुशुण्डि ने भी उसकी सही की; चौदह भुवन के पुरुषों और स्त्रियों को देखकर नारद—जिनसे किसी का परदा नहीं है और न जिनसा पारिषद (परखैया, जाननेवाला) है उन्होंने भी कहा कि संसार में एक ही जोड़ी जगमगा रही है। दूसरी बात का कहनेवाला व सुननेवाला और दूसरा कौन हुआ है ? रमा, व रमारमण (विष्णु), सुजान (जाननेवाले) हनुमान ने यही कहा कि सीताजी सी स्त्री और रामचन्द्र सा पुरुष नहीं है।

शब्दार्थ—सही भरी = उस पर सही की अर्थात् उसका समर्थन किया। चख चारिखे = चारि आँखवाले कौन हैं अर्थात् कोई नहीं है।

सवैया

[१७]

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातेँ सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

अर्थ—श्री रघुनाथजी दूलह और सुन्दर सीताजी घर में दुलहिन बनीं। सब सुन्दर स्त्रियाँ मिलकर गीत गाती हैं और युवा (जवान) मिलकर वेद-पाठ करते हैं। कङ्कण के नग में परछाहीं से सीताजी रामचन्द्रजी का रूप देखती हैं। इससे सब सुधि भूल गई हाथ टेककर रह गई और पल भी नहीं हिलाती हैं।

शब्दार्थ—जुवा = युवा, अथवा जुआ, विवाह में वर-दुलहिन को जुआ खिलाने की रीति अब भी अनेक जातियों में प्रचलित है।

घनाक्षरी

[१८]

भूप मंडली प्रचंड चंडीस-कोदण्ड खंड्यौ,
चंड बाहु-दंड जाको ताही सों कहतु हौं।
कठिन कुठार धार धारिबे की धीरताहि,
वीरता विदित ताकी देखिए चहतु हौं॥

तुलसी समाज राज तजि सो विराजै आजु,
गाज्यौ, मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं।
छोनी में न छाँड़्यो छप्यौ छोनिप को छोना छोटो,
छोनिप छपन बाँको बिरुद बहतु हौं॥

अर्थ—राजाओं की मण्डली में शिव के प्रचण्ड धनुष को तोड़ा, ऐसी कड़ी बाहु जिसकी है, उसी से मैं कहता हूँ। कठिन कुठार धरिबे के (सहने के) धैर्य्य को और उसके प्रख्यात बल को मैं देखना चाहता हूँ। हे तुलसीदास, वह राजाओं की समाज को छोड़कर आज बिराजै अर्थात् बाहर हो जावे। ऐसा कहकर वह (परशुराम) गरजे। जैसे शेर हाथियों के राजा को पकड़ता है वैसे ही उसे पकड़ूँगा। पृथ्वी पर किसी राजा के छिपे हुए छोटे बच्चे को भी मैंने नहीं छोड़ा, मैं राजाओं के नाश करने का बाँका प्रण रखता हूँ।

शब्दार्थ—प्रचंड = कठिन। चंडीस = शिवजी। कोदंड = धनुष। छप्यौ = छिपा हुआ। छोना = बच्चा। छपन = नाश करने का। बिरुद = प्रण। बहतु हौं = धारण करता हूँ।

[१६]

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानो मौनता गही।
रोखे माखे लषन अकनि अनखौहीं बातैं,
तुलसी विनीत बानी विहँसि ऐसी कही॥
"सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ!
प्रगट प्रताप आप कह्यो सो सबै सही।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेशजू को,
रावरी पिनाक मैं सरीकता कहा रही॥"

अर्थ—कुठार हाथ में धारण करनेवाले (परशुरामजी) का निरादर करके केवल लक्ष्मणजी बोले और अन्य राजा तो मानों भय से चुप हो रहे। तुलसीदासजी कहते हैं कि लक्ष्मणजी को परशुरामजी की अनखौंही बातें सुनकर गुस्सा आया परंतु विनीत भाव से हँसकर बोले कि हे परशुरामजी, तुम्हारा सुन्दर यश तो सब भुवनों में भरा है और जो कुछ आपने अपना प्रताप अब प्रकट रूप से कहा सो सब बिलकुल सही है,

परन्तु महादेवजी का धनुष जो टूट गया है सो इससे न जुड़ैगा। क्या आपकी शराकत धनुष में रही—अर्थात् क्या आपका इसमें साझा था अथवा ('कहाँ' पाठ होने से) आपकी सरीकत (बराबरी) धनुष कैसे कर सकता है, धनुष का टेढ़ापन तो टूटने से निकल गया किन्तु आपका टेढ़ापन अभी बाकी है।

शब्दार्थ—अकनि = सुनकर। सरीकता = बराबरी, साझा।

सवैया

[२०]

गर्भ के अर्भक काटन कों पटु धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा "धनु को दल्यौ," हौं दलिहौं बल ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै, मरिहै, करिहै कछु साको।
गोरो, गरूर गुमान भरो, कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको॥

अर्थ—गर्भ के बच्चों को मारने के लिये जिसका कराल फरसा तेज़ धारवाला है वही, मैं राजसभा में पूछता हूँ कि धनुष किसने तोड़ा है। मैं उसके बल को तोड़ूँगा। छोटे मुँह बड़ा जवाब देता है, लड़ैगा, मरैगा और कुछ साका (कहानी) छोड़ैगा। हे कौशिक! कहो, यह गोरा, गरूर और घमण्ड से भरा हुआ छोटा सा लड़का किसका है?

शब्दार्थ—अर्भक = बच्चा। साको = वह बातें जो वीर पुरुषों की प्रशंसा में कही जाती हैं, प्रशंसा।

घनाक्षरी

[२१]

मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दये,
जीते जातुधान, जे जितैया बिबुधेस के।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघभूरि भारी,
लोचन अतिथि* भये जनक जनेस के॥
चंड-बाहु-दंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यो,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस देस के।

* पाठान्तर—अथित।

सांवरे गोरे सरीर, धीर महा बीर दोऊ,
नाम राम लषन, कुमार कोसलेस के ॥

अर्थ—मेरे साथ यज्ञ की रक्षा के लिये राजा ने इन्हें भेजा है। इन्होंने इन्द्र के जीतनेवाले राक्षसों को मार डाला, अहिल्या (गौतम की स्त्री) को तार दिया और उसके भारी सब पापों को नाश कर दिया, राजा जनक के नैन अतिथि हुए अर्थात् उनके पास गये अथवा राजा जनक के नैन अथित हो गये (स्थिर हो गए, देखते ही रह गये), इन्होंने अपने प्रचण्ड बाहुबल से शिवजी का धनुष तोड़ा और देश देश के राजाओं को जीतकर सीताजी को व्याहा। साँवले और गोरे शरीरवाले, धीर, बड़े वीर राम लक्ष्मण दोनों दशरथ के लड़के हैं।

शब्दार्थ—अघ = पाप। भूरि = ढेर। मख = यज्ञ।

सवैया

[२२]

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिये धाये।
लक्खन-राम विलोकि सप्रेम, महारिसि ते फिरि आँखि देखाये ॥
धीर सिरोमनि बीर बड़े, बिनयी, बिजयी, रघुनाथ सोहाये।
लायक हे भृगुनायक, सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाये ॥

अर्थ—राजाओं के भयानक काल, परशुरामजी, धनुष टूटा सुनकर फरसा लेकर दौड़ आये। राम लक्ष्मण को इन्होंने प्रेम से देखा और फिर क्रोधित होकर आँखें दिखाईं। फिर धीरों में श्रेष्ठ बड़े वीर विनय करनेवाले और सबको जीतनेवाले रामचन्द्रजी से प्रसन्न हुए। परशुरामजी जो बड़े लायक थे सो धनुष-बाण रामचंद्रजी को देकर सहज ही में चल दिये।

इति बालकाण्ड

अयोध्याकाण्ड

सवैया

[२३]

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध*तजी मगबास†के रूख ज्यौं पंथ के साथी ज्यौं लोग लुगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मानो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं॥

अर्थ—रामचन्द्रजी के अंगों ने राजसी वस्त्र और आभूषणों को त्यागकर (छोड़कर) ऐसी शोभा पाई जैसे पंख गिराकर सुआ—अथवा केंचुल छोड़कर साँप। अवध को मगध के वृक्ष अर्थात् अरण्ड की तरह अथवा मग (रास्ते) में बाँस की तरह अथवा रास्ते के वास (ठहरने की जगह) की भाँति रामचन्द्रजी ने छोड़ दिया और उन स्त्री-पुरुषों को भी, जो रास्ते में साथ हो लिये थे, छोड़ दिया अथवा राह के संगियों की भाँति अयोध्यावासियों को छोड़ दिया। प्यारे भाई और स्त्री को साथ लिया। तब उनकी ऐसी शोभा हुई मानों धर्म और क्रिया देह धरकर शोभायमान हुए हैं। कमल के से नेत्रवाले रामचन्द्रजी बाप के राज्य को पथिक की तरह छोड़कर चल दिये।

शब्दार्थ—कीर = सुआ, सांप। कागर = रङ्गीन पर, केंचुलि। उप्पम = उपमा। बटाऊ = बटोही, रास्तागीर।

[२४]

कागर-कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं॥

अर्थ—आभूषण और वस्त्रों को त्यागकर राम का शरीर ऐसा शोभायमान हुआ जैसे पंख छोड़कर सुवा अथवा केंचुल छोड़कर साँप, और काई छोड़कर जल। माता,

---

* पाठांतर—अवध।

† पाठांतर—बाँस।

पिता और प्यारे लोग, सबको सहज प्रीति और सगाई (रिश्तेदारी आपसदारी) से आदर करके छोड़ दिया। स्त्री और अच्छे भाई को साथ लेकर अवध में दो दिन की सी मेहमानी खाकर श्रीरामचन्द्रजी, जिनके कमल के से नेत्र हैं, बाप के राज्य को पथिक की तरह छोड़कर चल दिये।

शब्दार्थ—लस्यो = शोभायमान हुआ। पहुनाई = मेहमानदारी। हुते = थे।

घनाक्षरी

[२५]

सिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी! भगिनी ज्यौं सेई है।
कहैं मोहि मैया; कहौं "मैं न मैया, भरत की
बलैया लैहौं, भैया! तेरी मैया कैकेई है" ॥
तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
बाम बिधि मेरो सुख सिरिससुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह*-कुलिस लै टेई है ॥

अर्थ—प्रीति से शिथिल हुई कौशल्याजी सुमित्राजी से कहती हैं कि मैंने कैकेयी को सौति की तरह नहीं माना, बल्कि हे सखी! बहिन की तरह उसकी सेवा की है। जब मुझसे रामजी मैया कहते थे तो मैं कहती थी कि मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ, भरत की माँ हूँ, तेरी बलैया लूँगी, भैया! तेरी मैया कैकेयी है। हे तुलसी, रामचन्द्र ने स्वाभाविक तौर पर उसे माँ समझा और तन मन वाणी किसी तरह से न जाना कि मता (सलाह) यह है अथवा यह न जाना कि कैकेयी विमाता है (दूसरी माँ) है। मेरा ब्रह्मा ही टेढ़ा है कि जिसने मेरे सिरस के फूल के से कोमल सुख के लिये छल की छुरी को वज्र (पत्थर) पर तेज़ किया अथवा छल छुरी को क्रोध के पत्थर पर तेज़ किया।

शब्दार्थ—कै मतेयी = कै + मतेयी = कि + मता + ई = कि मता यह है अथवा कि + मतेयी = कि + विमाता। टेई = तेज किया।

*पाठान्तर—को।

[२६]

"कीजै कहा, जीजीजू !" सुमित्रा परि पाँय कहै
"तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है ।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ?
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ,
राजपूत पाये हूँ न सुख लहियतु है ।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है ॥"

अर्थ—सुमित्रा ने पाँव पकड़कर कहा कि हे जीजी ! क्या किया जावे, जो ब्रह्मा सहाता है वह सब सहना पड़ता है। आपके सुभाय को रामचन्द्रजी के जन्म ही से जानती हूँ परन्तु कैकेयी की करनी पर शोच आता है कि राजा के घर उत्पन्न हुई, राजा को ब्याही आई और राजा का सा पुत्र पाकर भी उसे सुख नहीं मिला, चन्द्रमा अमृत का घर है उसे मृग ने मलिन किया और उस पर भी बिना बाहु वाला राहु उसे ग्रसता है अर्थात् वदन तो उसका चंद्रमा का सा सुंदर है परंतु हृदय चंद्रमा के मृग की भाँति काला है, उस पर भी अब ईर्षा रूपी राहु उसे ग्रसना चाहता है ।

शब्दार्थ—सुधागेह = चंद्रमा ।

सवैया

[२७]

नाम अजामिल से खलकोटि अपार* नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिलाकन, होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥

अर्थ—जिसके नाम ने अजामिल ऐसे करोड़ों पापियों को संसार रूपी अपार नदी में से डूबते हुए निकाल लिया, जिसके सुमिरने से मेरु (पर्वत) कण हो जाता है

* पाठान्तर—जासु के नाम अजामिल से खल कोटि ।

अथवा कण मेरु सम हो जाता है और समुद्र बकरी के खुर के निशान सम हो जाता है अथवा अजाखुर बढ़कर समुद्र हो जाता है; हे तुलसी! जिसके कमल रूपी पैरों से ऐसी नदी (गङ्गा) उत्पन्न हुई है जो गाढ़े पापों को हरती है, वे ही प्रभु स्वयं नदी के पार करने को कगार पर खड़े नाव माँग रहे हैं।

शब्दार्थ—अजाखुर = अजा (बकरी) + खुर, खुर से जो छोटा सा निशान मट्टी पर बन जाता है। तटिनी = नदी। स्वै = आप, स्वयं।

[२८]

एहि घाट तेँ थोरिक दूरि अहै कटिलौं जलथाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै* तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू? ॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
वरु मारिये मोहिं, बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥

अर्थ—केवट कहता है कि इस घाट से थोड़ी ही दूर पर कमर तक पानी है; वह स्थल मैं आपको बतला दूँगा। आपके पैरों की धूल छू जाने से नाव तर जायगी (अहिल्या की तरह), फिर मैं घर जाकर स्त्री को क्या समझाऊँगा! मुझे और कुछ आधार नहीं है, फिर लड़कों को किस तरह जिलाऊँगा? चाहे मुझे मार क्यों न डालिए, बिना पैर धोये नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

शब्दार्थ—तरनी = नाव। घरनी = स्त्री। वरु = चाहे।

[२९]

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारि के नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?।
तुलसी सुनि केवट के वर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥

अर्थ—न तो आपका दोष है और न आपके पैरों का। पैरों की धूल का ही बड़ा महत्त्व है। यह जल में चलनेवाली लकड़ी की नाव पत्थर की अपेक्षा कोमल है। तिस पर भी पानी उसे खा गया है अर्थात् जीर्ण हो गई है। पवित्र पैरों को धोकर नाव

---

* पाठान्तर—तवै।

पर चढ़ाऊँगा। क्या आज्ञा होती है ? हे तुलसी ! केवट के सुन्दर वचन सुनकर रामचन्द्रजी सीताजी की ओर देखकर हँसे।

शब्दार्थ—रावरे = आपका। भूरि = बड़ा। पाहन = पत्थर। बन-बाहन = पानी की सवारी, नाव। हँसे हहा है = ज़ोर से हँसे।

घनाक्षरी

[३०]

पात भरी सहरी*, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू बेद ना† पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू!
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ?॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वैकै बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सों‡ साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥

अर्थ—पत्ते में भरी मछली के से मेरे सब लड़के छोटे छोटे हैं, [रघुनाथदासजी ने यह अर्थ भी किया है,—पाँति भारी सहित हूँ अर्थात् मेरा कुटुंब बड़ा है, अथवा पात (पाप) भारी है, बड़ा पापी हूँ और सब लड़के बारे-बारे बाल बुद्धिवाले, अज्ञानी हैं।] मैं जाति का केवट हूँ, उन्हें कुछ वेद तो न पढ़ा दूँगा (जिससे कुछ कमा खा लें)। हे राजाजी, इसी से सब कुटुम्ब लगा है और मैं दीन दरिद्री हूँ, दूसरी नाव कैसे बनवाऊँगा। गौतम की स्त्री अहिल्या की तरह मेरी नाव भी तर जायगी। आपसे निषाद होकर बात क्या बढ़ाऊँ (क्या हुज्जत करूँ), परन्तु हे तुलसीदास के प्रभु ! आपसे मैं सच कहता हूँ अथवा 'सौं' पाठ से आपकी कसम खाता हूँ कि बिना पैर धोये नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

शब्दार्थ—सहरी = मछली। निषाद = केवट।

---

* पाठान्तर—सहरि।

† पाठान्तर—न।

‡ पाठान्तर—सौं।

[३१]

जिनको पुनीत बारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहैं गाइ कै।
जिनको जोगींद्र मुनिबृंद देव देह भरि
करत बिराग जप जोग मन लाइ कै॥
तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।
तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोये बिनु
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै?॥

अर्थ—जिन (चरणों) का पवित्र जल (चरणोदक) ऐसी गंगा के रूप में महादेवजी शिर पर रखते हैं, कि जिनका तीनों लोकों को पवित्र करने के लिए बहने का यश वेद भी गाते हैं जिन चरणों के दर्शन के लिए बड़े बड़े योगी, मुनि और देवता जन्म भर वैराग्य, यज्ञ और योग मन लगाकर करते हैं, हे तुलसीदास, जिन चरणों की धूल छूकर अहिल्या तर गई और गौतम (उसके प्रति) गौना सा लिवा घर चले गये, उन चरणों को पाकर बिना धोये नाव पर चढ़ाकर अपनी मज़दूरी न खोऊँगा और न अपनी हँसी कराऊँगा।

शब्दार्थ—बारि = जल। त्रिपथगामिनी = तीनों लोकों में बहनेवाली, गंगा। देह भरि = जन्म भर। पठावनी = मज़दूरी, नाव।

[३२]

प्रभुरुख पाइकै बोलाइ बाल घरनिहिँ,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पाँय पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।

बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ* जानकी लषन तन हेरि हेरि ॥

अर्थ—प्रभु की निगाह पाकर स्त्री और बालकों को (केवट ने) बुला लिया। वे लोग पैरों में पड़ने और वंदना करने के बाद चारों ओर घेरकर बैठ गये। छोटे से कठौता में गङ्गाजी का पानी भर लाये और पैर धोकर उस पवित्र जल (चरणोदक) को बार बार पीने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि देवता लोग प्रसन्न होकर उनके भाग्य को सराहने लगे और फूलों की वर्षा करने लगे और टेरटेरकर 'जय, जय' पुकारने लगे। सनेह से भरी और असयानी (चालाकी से खाली, सीधी) बात सुनकर देवता हँसे; [अथवा देवताओं की सनेहभरी सीधी बात सुनकर] रामचन्द्रजी भी, लक्ष्मण और सीताजी की ओर देखकर, हँसने लगे।

शब्दार्थ—घरनि = स्त्री।

सवैया

[३३]

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्ण-कुटी करिहौ कित ह्वै ?।"
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ॥

अर्थ—सीताजी ने गाँव से निकलकर ज्योंही दो पैर रक्खे कि माथे पर पसीना आ गया और मधुर ओठ कपड़े की भाँति सूख गये। फिर पूछने लगीं कि हे प्यारे! कितनी दूर चलना है, पर्णकुटी कहाँ पहुँचकर बनाओगे? स्त्री (श्री जानकीजी) की व्याकुलता को देखकर रामचन्द्रजी की बहुत सुंदर आँखों से आँसू बहने लगे।

शब्दार्थ—च्वै = चूना, टपकना, बहना। डग = क़दम। कनी = बूँदें। मधुराधर = मधुर (मीठे, कोमल) ओठ। वै = दोनों।

[३४]

"जल कों गये लक्खन, हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि ढाढ़े ॥"
तुलसी रघुबीर प्रिया-स्रम जानिकै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥

* पाठांतर—राम।

अर्थ—लक्ष्मणजी पानी लेने गये हैं, अभी लड़के हैं, हे प्यारे! छाँह में खड़े होकर घड़ी भर उनकी राह देख लो। आपका पसीना पोंछकर हवा कर दूँ और इस बालू में भुने पैरों को धो दूँ। हे तुलसी! सीताजी को थकी जानकर रामचन्द्र ने बड़ी देर तक बैठकर पैर के काँटे निकाले। सीताजी ने रामचन्द्रजी का प्रेम देखा, उनका शरीर पुलकित हो गया और आँखों में आँसू भर आये।

शब्दार्थ—पसेउ = पसीना। भूभुरि ढाढ़े = गरम मिट्टी से जले हुए।

[३५]

ठाढ़े हैं नौ*द्रुम डार गहैं, धनु काँधे धरे, कर शायक लै।
बिकटी भ्रकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है॥
तुलसी असि† मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं‡ प्रान निछावर कै।
स्रम सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मै॥

अर्थ—(रामचन्द्र) नवीन वृक्ष की डार पकड़े और कन्धे पर धनुष धरे हाथ में बाण लिये खड़े हैं। टेढ़ी भौंहें किये हैं। बड़ी बड़ी आँखें हैं और गालों की शोभा अनमोल है (जिसका कुछ मोल नहीं)। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी मूर्ति को हृदय में लाकर जड़ प्राणों को उन पर निछावर कर दूँगा, अथवा तुलसीदासजी (अपने आपसे) कहते हैं कि ऐसी मूर्ति को हृदय में ला, हे मूर्ख! इस पर प्राण निछावर कर डाल। परिश्रम से निकले पसीने के बिन्दुओं से भरी साँवली देह ऐसी शोभायमान है जैसे तारों भरी बड़ी अँधेरी रात।

शब्दार्थ—नौ = नव, नया। द्रुम = पेड़। विकटी = टेढ़ी। बड़री = बड़ी। स्रम सीकर = परिश्रम से निकले पसीने की बूँदें। तारक = तारे। मै = मय = के साथ (उर्दू शब्द)।

घनाक्षरी

[३६]

जलजनयन, जलजानन, जटा हैं सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।

---

* पाठांतर—नव।

† पाठांतर—अस।

‡ पाठांतर—डारु धौं।

साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनि पट धरे, उर फूलनि के हार हैं ॥
करनि शरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं ।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नर-नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥

अर्थ—कमल से नेत्र हैं, कमल अथवा चन्द्रमा सा मुख है, शिर पर जटा है, यौवन की उमङ्ग के सब अङ्ग शरीर पर उदय हुए हैं अर्थात् निकल रहे हैं, अथवा यौवन की उमङ्ग के उदय से सब अङ्ग उदार हैं अर्थात् चमक रहे हैं। साँवरे (राम) और गोरे (लक्ष्मण) के बीच में एक स्त्री बिजली सी है। मुनियों के से कपड़े और फूलों के हार पहने (शोभायमान) है। हाथों में धनुष बाण, कटि पर तरकस लिये बड़े सुन्दर किसी राजा के लड़के हैं। तुलसीदास तीनों लोकों के तिलक तीनों को देखकर नर और नारी चित्रसारी के चित्र के से देखते रह गये अर्थात् अचल हो रहे।

शब्दार्थ—उदार = बड़े। भामिनी = स्त्री। सुदामिनी = बिजली। शिलीमुख = बाण। चितेरे = तस्वीर में खिंचे। चित्रसार = चित्रशाला।

[३७]

आगे सोहै साँवरो कुँवर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि-वेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं ॥
साथ निसि-नाथ-मुखी पाथनाथ-नन्दिनी सी,
तुलसी बिलोके चित्त लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन, यौवन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं ॥

अर्थ—आगे आगे साँवले कुँवर शोभा पा रहे हैं और गोरे कुँवर पीछे हैं। दोनों मुनियों का-सा सुन्दर रूप धारण किये कामदेव को भी लजा रहे हैं। बाण, धनुष, और वस्त्र वन के ही बने धारण किये हैं और कटि पर अच्छे तरकस कसे हैं, जो अति शोभा पा रहे हैं। साथ में चन्द्र-वदनी सीता लक्ष्मी सी रास्ते में चली जाती हैं। हे तुलसी! देखते ही मन अपने सङ्ग में लगा लेते हैं। मन में आनन्द की उमङ्ग, शरीर में यौवन की उमङ्ग, और रूप की उमङ्ग अङ्ग-अङ्ग में उमड़ रही है।

शब्दार्थ—बिसिषासन = धनुष। निशिनाथ = चन्द्रमा। पाथनाथ-नंदिनी = पाथ (जल) + नाथ = पाथनाथ (समुद्र) + नंदिनी = कन्या, अर्थात् लक्ष्मी।

[३८]

सुंदर बदन, सरसीरुह सुहाये नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि* के।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक-पटनि† के॥
नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत छटनि‡ के।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि§ के॥

अर्थ—सुन्दर मुख पर कमल से नयन शोभा पा रहे हैं और सिर की जटाओं के ऊपर सुन्दर फूलों के मुकुट हैं। कन्धे पर धनुष शोभायमान है और पवित्र हाथ में बाण और कमर पर तरकस है। मुनियों के से उनके कपड़े अन्य वस्त्रों की शोभा की लूट करनेवाले हैं। साथ में कोमल स्त्री है जिसके शरीर के उबटन से मानो ब्रह्मा ने बिजली की छटाओं के झुण्ड बनाये हैं। गोरे का रूप देखते सोना अच्छा नहीं लगता और साँवरे का रूप देखकर बादलों का घमण्ड भी दूर हो जाता है।

शब्दार्थ—अंसनि = कंधा। लूटक + पटनि = पटनि (वस्त्रों) की लूट + क (करनेवाले) अथवा लूट + कपट + नि = कपटों की लूट करनेवाले अर्थात् खोनेवाले। बरूथ = झुंड। बिद्युत = बिजली। सलोनो = नमकीन।

---

* पाठांतर—जटानि।

† पाठांतर—पटानि।

‡ पाठांतर—छटानि।

§ पाठांतर—घटानि।

बल्कल बसन, धनु बान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाये अंग,
नवल कँवल हू ते कोमल चरन हैं॥
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥

अर्थ—छाल के कपड़े पहने, धनुष-बाण हाथ में लिये, तरकस कमर पर रक्खे, रूप के घर, बादल और बिजली के से रूपवन्त हैं अर्थात् एक साँवले दूसरे गोरे हैं। हे तुलसी! सुन्दर स्त्री सङ्ग में है जिनका शरीर स्वाभाविक तौर पर शोभा पानेवाला है और चरण नये कमल से भी कोमल हैं। दूसरे वसन्त, दूसरे रति और कामदेव मालूम पड़ते हैं। सूरत देखते ही तन मन के हरनेवाले हैं। तपस्वियों का सा रूप बनाये पथिक बनकर मार्ग में शोभायमान हैं, मानो संसार के नेत्रों को सुफल करने चले हैं।

शब्दार्थ—तून = तरकस। दामिनी = बिजली। बरन = रंग।

सवैया

[४०]

बनिता बनी श्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी! मोहिँ सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं, सकुचात मही पद पंकज छ्वै॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥

अर्थ—साँवले और गोरे कुमारों के बीच में स्त्री (सीता) बनी (शोभायमान) हैं। हे सखी! मुझसी विह्वल होकर देखो (अथवा मोही मोहित सी होकर देखो अर्थात् देखते ही मोहित हो)। मार्ग के योग्य ये नहीं हैं, अति कोमल हैं, ये क्योंकर मार्ग चलेंगे? इनके कमल से पैरों को छूकर पृथ्वी शरमाई जाती है।

तुलसीदास कहते हैं कि गाँवों की स्त्रियाँ सुनकर आश्चर्ययुक्त हुईं, उनके शरीर पुलकायमान हो गये और आँखों से पानी बह निकला। दोनों राजकुमार सब तरह सुन्दर, मन को हरनेवाले और उपमा-रहित हैं।

शब्दार्थ—बिथकीं = थकित, आश्चर्ययुक्त।

[४१]

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जित मैन लियो है।
बान* कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि बेष कियो है॥
संग लिये बिधु-बैनी† बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है॥

अर्थ—साँवले और गोरे कुँवर स्वाभाविक ही सलोने (सुन्दर) हैं मानों मनोहरता (खूबसूरती) कामदेव से छीन ली (जीत ली) है, अथवा मनोहरता में कामदेव को जीत लिया है। धनुष बाण और तरकस लिये हैं। (अथवा बाल पाठ से) बालक हैं और कमान और तरकस लिये हैं। शिर पर जटा शोभायमान हैं और मुनियों का सा भेष बनाये हुए हैं। साथ में चन्द्रमा के से मुँहवाली स्त्री है जिसने अपने रूप में से रत्ती भर रति को भी दे दिया है। पैरों में तो पनहीं भी नहीं है, ये पैदल क्योंकर चलेंगे? यही सङ्कोच मेरे जी में है।

[४२]

रानो मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?
आँखिन में सखि! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कै बनबास दियो है?

अर्थ—मेरी समझ में रानी (कैकेयी) महा बेवकूफ़ तथा वज्र और पत्थर से भी कठोर हृदयवाली है। राजा ने भी अपना नफ़ा नुक़सान नहीं जाना जिन्होंने स्त्री का कहना मान लिया। ऐसी सुन्दर मूरत के चले आने पर इनके

---

* पाठांतर—बाल।

† बैनी = बदनी, मुँहवाली, अथवा अमृत के से बोलवाली।

प्यारे कैसे जीते होंगे ? हे सखी ! ये तो आँखों में रखने लायक हैं, इनको वनवास क्योंकर दिया गया ?

[४३]

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछीसी भौंहैं ।
तून, सरासन, बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों* हमरो मन मोहैं ।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों "कहौ साँवरे से, सखि ! रावरे को हैं" ?॥

अर्थ—सिर पर जटा हैं, वक्षस्थल और बाहें बड़ी हैं, लाल नेत्र हैं, तिरछी सी भौहें हैं। धनुष बाण और तरकस धारण किये हुए हैं। हे तुलसी ! वन के रास्ते में बहुत ही शोभा पा रहे हैं। आदरसहित बारम्बार स्वाभाविक तौर पर देखकर हमारा तुम्हारा सबका मन मोहते हैं अथवा तुम्हारी तरह हमारा भी मन मोह लेते हैं। गाँव की स्त्रियाँ सीताजी से पूछती हैं कि कहो यह साँवले से आपके कौन हैं।

[४४]

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने,† सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मानो मंजुल कंज कली ॥

अर्थ—अमृत के रस से पगी सुन्दर वाणी को सुनकर जानकी ने समझ लिया कि यह ग्रामवधू बड़ी सयानी (होशियार) है अथवा (जानकीजी जो बड़ी सयानी हैं) खूब समझ गईं। आँखें तिरछी करके उन्हें संकेत देकर समझा दिया और कुछ हँसकर चल दीं अथवा हँस सी दीं (अर्थात् आँखों में यह बता दिया कि यह हमारे पति हैं)। हे तुलसी ! उस समय पर सब स्त्रियाँ उनको देखकर लोचनों का लाभ उठाने लगीं और ऐसी शोभा को प्राप्त हुईं मानो प्रेम के तालाब में सूरज को उदय हुआ देखकर सुन्दर कमल की कलियाँ खिल गईं हों।

---

* पाठान्तर—तुम्हरो ।

† पाठान्तर—सानि ।

[४५]

धरि धीर कहैं "चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहि हैं।
कहि है जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहि हैं॥
सुख पाइ हैं कान सुने बतियाँ, कल आपस में कछु पै कहि हैं"।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महि हैं॥

अर्थ—(सब) धीर धरकर कहती थीं कि चलो देखें कि ये रात को कहाँ रहेंगे। यदि संसार बुरा कहेगा तो कुछ शोच नहीं है। . हम अपनी आँखों का लाभ तो पा लेंगी। इनकी बातों को सुनकर कानों को सुख होगा। आपस में तो कल कुछ कहेंगे अर्थात् यदि यह हमसे नहीं बोलते तो आपस में जो बातचीत करेंगे उसे ही सुनकर कानों को सुख होगा अथवा कानों को इनकी बात सुनकर सुख होगा और कल यानी भविष्य में कुछ कहने को (वर्णन करने को) तो होगा, ऐसी अद्भुत बातचीत का फिर ज़िकर करते रहेंगे अथवा बातें सुनकर कान कल और सुख पावेंगे अथवा कल (= शांति) भरी बातें सुनकर कान सुख पावेंगे। हे तुलसी! पलकें प्रेम से लग गईं (अर्थात् हिलती न थीं अथवा बंद हो गईं) और सब रामचन्द्र को हृदय में देखकर पुलकायमान हुईं।

[४६]

पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाये।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाये॥
जिन देखे सखी! सत भायहु तें, तुलसी तिन तौ मन फेरि न*पाये।
यहि मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभाय सिधाये॥

अर्थ—पैर कोमल हैं, साँवला गोरा शरीर करोड़ों कामदेवों को लजाकर शोभा पा रहा है। हाथ में धनुष बाण और सिर पर जटा हैं। कमलनयन सोना के से हैं अथवा लाल हैं। हे सखी! जिन्होंने सीधे-सीधे भी देखे हैं उन्होंने मन का ऋण चुका लिया अर्थात् जो कुछ पाना था पा लिया अथवा वे मन फेर न सकीं। इस रास्ते आज कुँवर विधुवैनी स्त्रीसमेत पधारे हैं।

---

* पाठान्तर—के रिन।

[४७]

मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज सरासन सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछोहैं।
केहि भाँति कहौं सजनी! तोहिं सों, मृदु मूरति द्वै निबसीं* मनमोहैं॥

अर्थ—कमल सा मुख, कमल से सुंदर नेत्र, सुन्दर भौंहें मानो कामदेव के धनुष हैं। सुंदर शरीर है। साँवले गोरे बालक कोमल हैं; किशोर अवस्था है, सिर पर जटा शोभायमान हैं। हे तुलसी! कटि पर तरकस और धनुष बाण लिये हैं। इनकी तिरछी सी दृष्टि अचानक मुझ पर जा पड़ी। हे प्यारी! तुझसे क्या कहूँ, दोनों कोमल मूरतें मन को मोहती हुई बस गईं अथवा मेरे मन में बस गई हैं।

[४८]

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै, चितु दै, चले लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल, चलैं भृकुटी कल काम-कमानहुँ सों तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग निषंग कसे, धनु सों सर जोरे॥

अर्थ—प्रेम से पीछे की ओर तिरछे नेत्रों से सीताजी को देखकर चित्त (अपना) देकर और सीता का चित्त लेकर चोरे (धीरे से) चले कि मृग भाग न जावे, अथवा चित्त को चुरानेवाले रामचन्द्रजी चले अथवा चित्त देकर चितचोर (मृग) को ले (सन्मुख करके) चले। साँवले शरीर पर पसीना चमकता था। हे तुलसी! मेरा मन वह छबि देखकर प्रसन्न हो गया। चञ्चल नयन हैं और चलायमान सुंदर भौंहैं मानो कामदेव की कमान से तिनका तोड़ती हैं अर्थात् उनको चुनौती देती हैं। रामचन्द्रजी मृग के साथ तरकस लिये और धनुष पर बाण चढ़ाये शोभायमान हैं।

[४९]

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै?॥

---

* पाठान्तर—निकसीं।

अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं, न भगैं, जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक हैं ॥

अर्थ—चार सुन्दर बाण बनाकर कटि पर कसे हैं और हाथ में धनुष-बाण लेकर रामचन्द्र शिकार खेलते फिरते हैं। तुलसीदास उस रूप को क्योंकर वर्णन करैं अलौकिक (संसार में न मिलनेवाले) रूप को देखकर मृगी और मृग चौंक उठते हैं और आश्चर्य से चित्त देकर (मोहित होकर) देखने लगते हैं, न हिलते हैं न भागते हैं, मन में यह समझकर कि पाँच बाण धरे कामदेव हैं।

[५०]

बिंध्य के बासी उदासी तपोब्रत-धारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे ॥
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे ॥

अर्थ—विन्ध्याचल में रहनेवाले, परम उदासीन, बड़े तप और व्रत को धारण करनेवाले बिना स्त्री के दुखी थे। "गौतम की स्त्री तर गई", हे तुलसी! यह कथा सुनकर, मुनियों के समूह सुखी हुए। तुम्हारे कमल के से पैर के छूने से सब पत्थर चन्द्रमुखी (स्त्री) हो जायँगी और सबको बिना परिश्रम स्त्रियाँ मिल जायँगी। हे रामचन्द्रजी! आपने भला किया जो कृपा करके वन में पैर रक्खा।

इति अयोध्याकाण्ड

आरण्यकाण्ड

सवैया

[५१]

पंचवटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाये।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छबि छाये॥
देखि मृगा मृगनैनी कहै प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाये।
हेम कुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाये॥

अर्थ—सुन्दर पंचवटी में पत्तों की बनी कुटिया के भीतर स्वाभाविक तौर पर सुन्दर श्रीराम बैठे हैं। (वहीं पर) सीताजी व प्यारे भाई भी शोभायमान हैं। हे तुलसी! सबके शरीर में अथवा उनके सब अंगों में बड़ी छबि छाई हुई है। मृग को देखकर मृग के से नेत्रवाली (सीताजी) ने प्रीतम के मन को भानेवाले प्यारे वचन कहे और सोने के मृग के पीछे धनुष बाण लेकर श्रीरामचन्द्रजी चल दिये।

शब्दार्थ—हेम = सोना
कुरंग = मृग, हिरन।

इति आरण्यकाण्ड

किष्किन्धाकाण्ड

घनाक्षरी

[५२]

जब अंगदादिन की मति गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो ।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि* आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो ॥
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो ।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो ॥

अर्थ—जब अंगद वगैरह की अक्ल और चाल दोनों थक गईं तब भी हनुमानजी को कूदने में पल न लगा (अर्थात् हनुमान उस समय भी झट कूदने को समर्थ हुए)। वह साहस करके जल्दी से खेल ही में पर्वत पर चढ़ गये और चारों ओर देखने लगे। (देखते ही) और सबकी कल (शांति) जाती रही (अर्थात् सब विकल हो उठे कि न जाने क्या होगा; हनुमानजी सन्देशा लेकर लौट भी पावेंगे या नहीं अथवा हनुमानजी के क्रोध को देखकर कमठ आदि सब हिल गये जैसा कि आगे कहते हैं)। हे तुलसी ! रसातल का पानी ऊपर आ गया, वराहजी हिल गये, शेषजी और कछुवा की शक्ति हीन हो गई। चारों पैरों की चपेट से दबकर पैरों से चिपट गया और हनुमानजी के उचकने के साथ पर्वत भी चार अंगुल ऊँचा उठ गया।

शब्दार्थ—कोल = वराह। सकेलि = स + केलि = खेल में।

इति किष्किन्धाकाण्ड

---

* पाठान्तर—सिकिलि।

सुन्दरकाण्ड

घनाक्षरी

[५३]

बासव बरुन बिधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगार सो।
समय पुराने पात परत डरत बात,
पालत, ललात रतिमार को बिहार सो॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव,
राग बस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो॥

अर्थ—इन्द्र, वरुण, ब्रह्मा सबके वन से अधिकतर सुन्दर रावण का वन है, मानो वसन्त का शृंगार यही है। समय आ जाने पर भी वायु पुराने पत्ते गिराने से डरता है कि कहीं शोर होने से वा पतझाड़ हो जाने से रावण क्रोध न करे इसलिए वहाँ सदा वसन्त रहता है, अथवा समय पर ही पुराने पत्ते गिरते हैं और वायु सदा रावण से डरता है इसलिए हरे पत्ते कभी नहीं गिराता। उस वन का पालन-पोषण ऐसा होता है जैसे रति और कामदेव के बाग़ का। (उस वन में) सुन्दर बावली, बाग़, तालाब की बनावट को देखकर सहज वैरागी हनुमान का चित्त भी रागवश हो गया। परन्तु अशोक के पेड़ के नीचे सीताजी की दशा को देखकर तुलसीदासजी ने हनुमानजी को तीनों लोकों के शोक के सार सा देखा। अथवा हनुमानजी ने अशोक को तीनों लोक के शोक के सार सा देखा अथवा अशोक के पेड़ के नीचे सीता की दशा देखकर बाग़ को तीनों लोक के शोक का सार देखा।

शब्दार्थ—बासव = इन्द्र। रतिमार = रति + कामदेव। तिलोक = ति + लोक = तीन लोक। ललात = प्यार करना। विटप = वृक्ष

[५४]

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीके सब काल सींचे सुधासार नीर को* ।
मेघनाद तें दुलारो प्राण तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय यातुधान धीर को* ॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ,
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को* ।
बिद्यमान देखत दसानन को कानन सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को* ॥

अर्थ—उस बाग के माली (पानी देनेवाले) मेघमाल (बादल की माला थीं) और रक्षक बड़े बड़े विकराल योधा थे। बाग सब काल में अमृत के से जल से सींचा जाता था। रावण को वह बाग मेघनाद (पुत्र) और अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा था। उस पर रावण की बड़ी प्रीति थी। हे तुलसी ! इस बात को सुनकर और जानकर भी सीता का दर्शन करने के पश्चात् रामचन्द्रजी के बल पर (हनुमान्) उस बाग में ताल ठोककर (डङ्का बजाकर) घुस गया (और) रावण की मौजूदगी में उसके देखते वन को साहसी वायुपुत्र ने तहस-नहस (नष्ट) कर डाला।

[५५]

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं' ॥
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि,
बिंध की दवारि कैधों कोटि सत सूर हैं ॥

---

* पाठान्तर—के।

अर्थ—बहुत से लत्ते इकट्ठा करके और तेल में बोर-बोर (डुबा-डुबाकर) राक्षस गली-गली अथवा घर-घर से दौड़े आकर पूँछ में बाँधते हैं। वैसा ही बन्दर भी बड़ा कौतुकी (तमाशा करनेवाला) है। वह (मानो) डरकर ढीला शरीर करता है और लात की मार सहता है और जी में कहता है कि मूर्ख हैं। लड़के ख़ुशी से शोर मचाते हैं और ताली दे-देकर गाली देते हैं और पीछे ढोल, निशान और तुरई बजाते जाते हैं। पूँछ बढ़ने लगी, जगह-जगह पर आग लगा दी गई, मानो विन्ध्याचल की दवाग्नि (वन की आग) है या करोड़ों सूर्य्य निकल आये हैं।

शब्दार्थ—खोरि = घर, गली। लँगूर = पूँछ। तूर = तुरई। दवारि = दावानल। सूर = सूर्य्य।

[५६]

लाइ लाइ आगि भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
तुलसी बिराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट, काल तें कराल भो।
तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख विकराल, मुख तैसो रिसि लाल भो॥

अर्थ—लड़कों के झुण्ड आग लगा-लगाकर जहाँ-तहाँ भाग गये। हनुमान् थोड़ी देर के लिए झुककर छोटा हो गया (और फिर) मेरु पर्वत से भी ऊँचा हो गया। बन्दरों का खिलाड़ी राजा कूदकर सोने के कँगूरे पर चढ़ गया और रावण के महल पर उसी समय जा खड़ा हुआ। हे तुलसी! बन्दर उस समय पूँछ बड़ी लम्बी पसारकर आकाश में ठहरा। उस समय उसे देखकर योधा घबड़ाने लगे। वह काल से भी कठोर, तेज का घर सा उस समय लगता था, मानो करोड़ों अग्नि और सूर्य्य हैं। उसके नख विकराल थे और वैसा ही क्रोध से मुँह लाल था।

शब्दार्थ—निबुकि = झुककर।

[५७]

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानों,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है ॥
'तुलसी' सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखैं जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है" ॥

अर्थ—पूँछ से बड़ी विकराल आग की ज्वालाएँ निकल रही हैं, मानो लङ्का लील जाने को काल ने अपनी जीभ निकाली है, या मानो आकाश-मार्ग (आकाशगङ्गा) में बहुत से पुच्छल तारे भरे हैं, या वीररसधारी वीरों ने तलवार म्यान से बाहर कर रक्खी है । हे तुलसी ! (यह जान पड़ता है मानो) इन्द्र का धनुष है, वा बिजली चमकती है, या मेरु से आग की धार बह निकली है । राक्षस देख रहे हैं और राक्षसियाँ घबराकर कह रही हैं कि तब बाग ही उजाड़ा था अब लंका जला दी !

शब्दार्थ—बालधी = पूँछ । व्योम = आकाश । बीथिका = रास्ता, गली । धूम-केतु = पुच्छल तारे ।

[५८]

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे ।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे ॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे" ।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे" ॥

अर्थ—जिस-जिस जगह हनुमान् जाके गरजते हैं वहीं-वहीं मकान में आग लग जाती है और लोग चिल्लाते हैं अथवा जगह-जगह लोग आग लगी देखकर रोते और चिल्लाते हैं कि भागो-भागो, आग लगी है, घर जल रहा है। बाप, माँ, भाई, बहन, स्त्री, भाभी, बेटा छोटा लड़का कहाँ है। अरे अभागो! मूर्ख! भागो! हाथी खोल लाओ, घोड़ा निकालो, बैल भैंस खोलो, बकरी लाओ और जो सोता हो उसे जगा दो। अरे! जागो-जागो। हे तुलसी! घबराई हुई मंदोदरी यह (कौतुक) देखकर कहती थी कि पिय (रावण) से पहिले ही बार-बार कहा था कि बन्दर से मत बोलो।

शब्दार्थ—बुबुक = भभक। बुबुकारी = चिल्लाना। निकेत = घर। भामिनी = स्त्री। छोहरा = लड़का। ढोटा = बेटा। महिष = भैंस। बृषभ = बैल।

[५८]

देखि ज्वाल*जाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धीर' धाये बीर बलवान हैं।
लिये सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन समीर†, धीर धरे धनुबान हैं॥
तुलसी समिध सौंज‡ लंक-जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जब, तिल, धान हैं।
स्रुवा सो लंगूल बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुने हनुमान हैं॥

अर्थ—आग की लौ को देखकर और हाहाकार को सुनकर रावण ने कहा कि बन्दर को पकड़ो अथवा धैर्य धरो। (यह सुनकर) बलवान् शूर-वीर चले। वायु के से धीर राक्षस शूल, शेल (बरछी), पाश (फाँसी), परिघ, बड़े लट्ठ, और धनुष-बाण लिये हैं। हे तुलसी! यह लङ्का रूपी यज्ञकुण्ड, सामग्री रूपी समिधा और राक्षस रूपी सुपारी, जौ, तिल और धान को देखकर, पूँछ रूपी स्रुवा से बली वैरी रूपी हवि को हाँक-रूपी स्वाहा कह-कहकर हनुमान् ने राक्षसों को आग में हवन कर दिया।

* पाठांतर—ज्वाला।

† पाठांतर—सनीर।

‡ पाठांतर—सौंजी।

शब्दार्थ—समिध = समिधा, यज्ञ करने की लकड़ी। पूँगीफल = सुपारी। जव = जौ। सौंज = सामग्री। लंगूर = दुम। प्रतिकूल = वैरी। हुने = आहुति दिये।

[६०]

गाज्यो कपि गाज ज्यों बिराज्यो ज्वाल जाल जुत,
भाजे* बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाये जातुधान धारि,
बारिधारा उलदैं जलद ज्यों नसावनो† ॥
लपट झपट झहराने, हहराने वात,
भहराने भट, पर्‌यो प्रबल परावनो।
ढकनि‡ ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो ॥"

अर्थ—वज्र के समान हनुमान गरजे और अग्नि की ज्वाला सहित अति शोभायमान हुए। बड़े-बड़े धीर-वीर भागने लगे और रावण भी घबरा गया। "दौड़ो! दौड़ो! पकड़ो!" सुनकर राक्षसों की सेना पानी ले-लेकर दौड़ी, मानो सावन का बादल पानी की धारा उलट रहा है अथवा मानो नसावनो (प्रलयकाल का) मेघ है। आग की लपट बढ़ने लगी, हवा बड़े वेग से चलने लगी, योधा भी घबरा गये और सब लोग भागने लगे। धक्के से ज़बरदस्ती मन्त्री लोग (रावण को) ढकेल ले गये (भगा ले गये) और कहने लगे कि हे नाथ! यहाँ कोई बल नहीं चलेगा, अग्नि बड़ी भयङ्कर है।

शब्दार्थ—गाज्यो = गरजा। गाज = वज्र। ज्वाल-जाल = अग्नि की किरणें। उलदैं = उलचने लगे। झहराने = झुलसे हुए। वात = वायु। ढकनि = ढक्कों से। पेलि = ज़बरदस्ती पकड़कर। अनल = अग्नि।

[६१]

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो§ मेघनाद, सविषाद कहै रावनो।

---

* पाठान्तर—भाज्यो।

† पाठान्तर—जौन सावनो।

‡ पाठान्तर—हकानि = बुलाकर।

§ पाठान्तर—डर्‌यो।

बेग जीत्यो* मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो ॥
तुलसी सयाने जातुधाने पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो"।
काहे को कुशल रोषे राम बाम-देवहू की,
बिषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो ॥

अर्थ—बड़े भयङ्कर भेष को देखकर और सिंह के से शब्द को सुनकर मेघनाद उठा और रावण भी दुखी होकर कहने (बोलने) लगा। (इसके) वेग ने वायु को जीत लिया और प्रताप ने करोड़ों सूर्य्य जीत लिये, काल की करालता और वामन की बड़ाई जीत ली। हे तुलसी! जो बुद्धिमान् राक्षस थे वह पछताकर कहने लगे कि जिसका ऐसा दूत है उस मालिक का तो अभी आना बाक़ी है। रामचन्द्र के गुस्सा करने पर महादेव की भी कुशल नहीं है अथवा शिवजी की दी हुई कुशल रामचन्द्र के गुस्सा होने पर कहाँ रहेगी? बड़े बलवान् से वैर करना फ़िज़ूल है।

शब्दार्थ—बादि = व्यर्थ, फ़िज़ूल।

[६२]

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्योंहूँ कोऊ पालि है?"॥
तुलसी मँदोवै मींजि† हाथ धुनि माथ कहै,
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है"।
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालि है"॥

अर्थ—सब रानियाँ घबराकर पानी-पानी पुकारने लगीं; रानियाँ, जिनकी चाल मंद मंद गज की भाँति थी वह, अब भागने लगीं अथवा गज-चाल गत जानकर (भूलकर)

---

* पाठान्तर—जितो।

† पाठान्तर—मींजै।

भागी जाती हैं। वस्त्र छूट गये, मणि और भूषण की भी कोई सँभाल नहीं करता है। मुँह सूखे हैं और कहती हैं कि कोई क्योंकर रक्षा करेगा। हे तुलसी! मन्दोदरी हाथ मींजती थी और माथा धुनकर कहती थी कि मैंने कल (पिछले दिनों) कितना कहा था उसे उस समय किसी ने न सुना। बेचारा विभीषण बार-बार पुकारकर कहता रहा कि यह बन्दर बड़ो बला है और बहुत से घरों का नाश करेगा।

शब्दार्थ—अकुलानी = घबड़ाई हुई। परानी = भागी। बिसारैं = छोड़ैं। मंदोवै = मंदोदरी, रावण की स्त्री। बापुरो = बेचारा। घालि है = नाश करेगा।

[६३]

कानन उजार्‌यो तो उजार्‌यो न बिगारेउ कछू,
बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों।
निपट निडर देखि काहू ना लख्यो बिसेषि,
दीन्हों न छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों॥
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों।
तुलसी मँदोवै रोइ रोइ के बिगोवै आपु,
"बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों"॥

अर्थ—वन को उजाड़ा था तो उजाड़ा ही था, कुछ ऐसा नहीं बिगाड़ा था कि बेचारे बन्दर को मेघनाद हार से जबरदस्ती बाँध लाये। किसी ने ऐसा बड़ा बेडर देखकर भी ख़ासकर उसे न ताका और उस कुल के कुठार (नाशकर्ता, रावण) से कहकर छुड़ा न दिया। मेरे लड़के भी छोटे-बड़े सब अनाड़ो हैं जो साँप से खेलते हैं और छुरा की धार को गले में लगाते हैं। हे तुलसी! मन्दोदरी रो-रोकर आप आँसू बहाती है कि मैंने दाढ़ीजार से पुकार-पुकार कहा था (लेकिन उसने न माना)।

शब्दार्थ—हठहार = हठ जिससे हार गया (मेघनाद)। अथवा हठि = हठ करके + हार = जंगल। अनेरे = अनाड़ी।

[६४]

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को।

मींजि मींजि हाथ धुनैं माथ दशमाथ-तिय,
तुलसी तिलो न भयो बाहिर अगार को ॥
सब असबाब डाढ़ो*, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो†,
जिय की परी सँभार‡ सहन भँडार को ? ।
खीभति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को" ॥

अर्थ—रानियाँ सब पुकारती रोती घबड़ाई हुई भागी जाती थीं और हनुमानजी के वेष (रूप) को देख नहीं सकती थीं। हे तुलसी ! हाथ मल-मलकर और माथा धुन-धुनकर रावण की स्त्रियाँ कहती थीं कि सामने (घर) का असबाब तिल भर (थोड़ा सा भी) बाहिर न हुआ (निकल न सका)। सब असबाब पड़ा है, न मैंने निकाला, न तूने निकाला। जी की सँभाल पड़ गई, असबाब कौन सँभालता। अथवा वह रानियाँ हाथ मलती थीं जो तिल भर भी (ज़रा भी) अगारी (पहिले) पर्दे से बाहर न हुई थीं अथवा अगार (महल) के बाहर न हुई थीं। मन्दोदरी खिसियाकर दुःख सहित मेघनाद की ओर देखकर कहती थी कि सब कुछ इसी दाढ़ीजार का किया है। अब उसे क्यों नहीं काटता (अर्थात् जैसा बीज बोया है वैसा फल पावेगा) अथवा सब कुछ इसी दाढ़ीजार का बोया काटना पड़ता है।

[६५]

रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं,
"हा हा ! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों ।
काहे मेघनाद, काहे काहे रे महोदर ! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों ? ॥
काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन !
अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों ? ।

---

* पाठांतर—डाढ ।
† पाठांतर—काढे ।
‡ पाठांतर—सँभारै ।

तुलसी बढ़ाय बादि सालतें बिसाल बाहैं,
याही बल, बालिसो*! बिरोध† रघुनाथ सों !" ॥

अर्थ—रावण की राक्षसी रानियाँ रो-रोकर कहने लगीं कि हा-हा कोई बीस बाहुवाले और दस माथेवाले रावण से जाकर कहे। क्यों रे मेघनाद और महोदर! तू भी धैर्य्य नहीं बँधाता, अब हाथ क्यों नहीं पकड़ लेता है। क्यों रे अतिकाय और अकम्पन! अरे अभागे! औरतों को छोड़े जाते हो और आप साथ छोड़कर भागे जाते हो? हे तुलसी! वाद बढ़ाकर (फ़िज़ूल) बड़ी बाहुओं को सालते (नष्ट कराते) हो, अथवा साल सी बड़ी बाहें व्यर्थ बढ़ाई हैं। इसी बल पर मूर्खो! रामचन्द्र से झगड़ा बढ़ाया है।

शब्दार्थ—बिलखानी = रोती हुई। लाइ लेत = पकड़ लेता। बालिसो—मूर्खो, छोकड़ो।

[६६]

हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि‡, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्हीं अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग§ चले भागि है॥
बालधी फिरावै, बार बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागि है।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"चित्र हू के कपि सों|| निसाचर न लागिहैं" ॥

अर्थ—[हनुमानजी ने] बाज़ार में, रास्ते में, कोट में, शहर-पनाह में, अट्टालिकाओं में, महल में, पौरि में और गली-गली में दौड़-दौड़कर बड़ी आग दे दी है। दुखी होकर सब पुकार रहे हैं और कोई किसी की सँभाल नहीं करता। सब लोग जो जहाँ हैं वे वहीं से व्याकुल होकर भागे जा रहे हैं। पूँछ घुमाता है और बार-बार

---

* पाठांतर—बालि सों।
† पाठांतर—बैर।
‡ पाठान्तर—अटनि।
§ पाठान्तर—लोक।
|| पाठान्तर—से।

उसे झाड़ता है। उसमें से बूँदी सी (चिनगारियाँ) झरती हैं मानो लङ्का को पिघला-पिघलाकर पाग रहा है, अर्थात् लङ्का को पिघला-पिघलाकर मानो चाशनी बना रहा है जिसमें आग की चिनगारी की बूँदी पाग रहा है। हे तुलसी! राक्षसियाँ घबराकर कह रही हैं कि तसवीर के बन्दर की बराबरी भी राक्षस नहीं कर सकेंगे।

[६७]

'लागि लागि आगि', भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुंध अंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात, अकुलात अति,
"तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं"॥

अर्थ—"आग लगी है, आग लगी है" कहते हुए सब लोग जहाँ-तहाँ भाग चले। माँ बेटी को और बाप बेटे को भी नहीं सँभालता है। बाल बिखरे और नङ्गे बदन धुएँ की धुन्ध से अन्धे होकर छोटे-बड़े सब बार-बार पानी-पानी पुकार रहे हैं। घोड़े हिन-हिनाते हैं और भागे जाते हैं और हाथी चिंघाड़कर भारी भीड़ को पेलकर रौंदे डालते हैं। लोग नाम लेकर चिल्ला रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं और अति घबड़ा रहे हैं। हे तात! ताव खाये जाते हैं और अग्नि की लपट से झुलसे जाते हैं अथवा सब झुलसे जाते हैं।

शब्दार्थ—तौंसियत=ताव खाना, तप जाना। झौंसियत=झुलसना। झारहीं=सब, लपट।

[६८]

लपट कराल, ज्वाल जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे?।
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, "भ्रात! तू निबाहि रे॥

प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप
बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे" ।
तुलसी बिलोकि लोक व्याकुल बिहाल कहैं,
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥

अर्थ—अग्नि की ज्वाला बड़ी विकराल है, भयङ्कर लपटें दसों दिशाओं में छा गई हैं, धुआँ छाया है जिससे सब घबड़ा रहे हैं। (ऐसी दशा में) कौन किसको पहिचाने। पानी को तरसते और पानी पानी चिल्ला रहे हैं। सब अङ्ग जले जाते हैं, और दबे जाते हैं भाई! बचाओ। स्त्री पति से कहती है कि भागो, पति स्त्री से, पिता पुत्र से और पुत्र पिता से कहता है कि भागो। तुलसी सब दुनिया को व्याकुल देखकर बेहाल होकर कहते हैं कि रावण को अब बीस आँखों से देखकर बचाना चाहिए। अथवा हे रावण! अब बीसों आँखों से देख ले।

शब्दार्थ—लेहि = लेना, बचाना।

[६९]

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए?।
"लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ॥

अर्थ—हर एक गली, बाज़ार, अटा, महल, पौरि, घर, द्वार सबमें बन्दर ही बन्दर दिखाई पड़ता है। नीचे ऊपर दिशा विदिशा सबमें बन्दर ही बन्दर दिखाई पड़ता है मानो तीनों लोक बन्दर ही से भरे हुए हैं। आँख मूँदने से हृदय में और खोलने से बाहर वह खड़ा दिखाई पड़ता है और जहाँ कोई भागकर जाता है, वहाँ भी दिखाई पड़ता है और कोई क्या करै अथवा किसी के पुकारने पर जहाँ तहाँ भाग जाता है। अथवा जहाँ जाओ वहाँ और किसी को पुकारो, बन्दर ही बन्दर दिखाई देता है।

लो, अब लो, तब तो किसी ने कहना न माना, जिस-जिसको रोकना चाहो वही ऐंठा जाता था।

शब्दार्थ—कोकिये—को (कौन) + किये (करै) अथवा पुकारना। सतराए = ऐंठ जाना।

[७०]

एक करै धौंज, एक कहै काढ़ो सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहै 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े,
एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो'॥
तुलसी कहत एक "नीके हाथ लाये कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो।"
"धाओ रे, बुझाओ रे" कि "बावरे हौ रावरे,
या औरे आगि लागी, न बुझावै सिन्धु सावनो"॥

अर्थ—एक दौड़ा जा रहा है, एक कहता है कि सब बटोरकर निकाल लो, एक अँजुरी भर पानी पीकर कहता है कि अब तो नहीं आया जाता। कोई बड़ी भीड़ में पड़ गया है, कोई जलता हुआ निकाला गया। कोई खड़ा देख रहा है और कहता है कि अग्नि बड़ी विकराल है। हे तुलसी! कोई कह रहा है कि बन्दर ने अच्छे हाथ लगाये परन्तु (रावण) लड़कों की सी शेखी मारना अब भी नहीं छोड़ता। अथवा मेघनाद अच्छे हाथों बन्दर को लाया था और देखो तो लड़का अब भी शेखी मारना नहीं छोड़ता। दौड़ो रे, बुझाओ रे, क्या आप बावले हो गये हैं यह और ही तरह की आग लगी है जो समुद्र और सावन की वर्षा से भी नहीं बुझती।

शब्दार्थ—धौंज = दौड़ना। सौंज = बटोरकर, असबाब। डाढ़त = जलता हुआ।

[७१]

कोपि दसकंध तब प्रलय-पयोद बोले,
रावन-रजाइ धाइ आये जूथ जोरिकै।
कह्यो लंकपति "लंक बरत बुताओ बेगि,
बानर* बहाइ मारौ महा बारि बोरिकै"॥

* पाठांतर—वारन = हाथी, वार न—देर न।

बात को सुनकर मन्त्रियों ने सिर धुने और वे रावण से कहने लगे कि यह ईश्वर के टेढ़े होने का विकार है।

शब्दार्थ—युगपट = २ × ६ = १२। सर्पी = घी।

[७३]

"पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम,
काल, लोकपाल मेरे डर डावाँडोल हैं।
साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहि,
महातप-साहस बिरंचि लीन्हें* मोल हैं॥
तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा,
बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल† हैं।
को है ईस नाम?‡ को जो बाम होत मोहू सो को§?
मालवान! रावरे के बावरे से बोल हैं"॥

अर्थ—अग्नि, वायु, पानी, सूर्य, चन्द्रमा, यम, काल, दिक्पाल सब मेरे डर से डरते हैं। महादेवजी मेरे प्रभु हैं, विष्णु सदा मुझसे डरते रहते हैं, और तप करके साहस करके मैंने ब्रह्मा को मोल ले लिया है (जो वर चाहा उनसे माँग लिया)। तुलसी तीनों लोकों में कोई दूसरा आज राज्य नहीं है; बाजे-बाजे राजाओं के बेटी-बेटा ओल (जमानत) में हैं। वामदेव नामी ईश (देवता) कौन हैं जो मुझसे भी टेढ़े होते हैं अर्थात् मुझसे वाम होते वामदेव का नाम ईश न रहेगा, उनका प्रभुत्व जाता रहेगा। हे मालवान! तेरी बातें तो बावलों की सी हैं।

शब्दार्थ—ओल = कर के बदले में हैं।

[७४]

"भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल,
नाकपाल लोकपाल जेते सुभट समाज हैं।

---

* पाठान्तर—लिये।

† पाठान्तर—बोल।

‡ पाठान्तर—बाम।

§ पाठान्तर—सन।

कहैं मालवान "जातुधानपति रावरे को
मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है?॥
राम-कोह पावक, समीर सीय-स्वाँस, कीस
ईस-बामता बिलोकु, वानर को ब्याज है।
जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको वीर तोसो सूर सिरताज है"॥

अर्थ—मालवान कहते हैं कि हे रावण! पृथ्वी के राजा, नाग (पाताल के रक्षक), स्वर्ग के रक्षक (देवता), लोकपाल और जितने योधागण हैं, उनमें ऐसा जगत् में कौन है जो आपका मन में अथवा मन से भी बुरा (हानि) चाहे अर्थात् कोई नहीं। रामचन्द्र का ग़ुस्सा अग्नि है, सीताजी की श्वास वायु है, ईश्वर का उलटा-पन बन्दर है, सो ख़ूब देख ले। बंदर का तो बहाना है, यही अग्नि जलाकर फेर-फेरकर निडर होकर उस लङ्का को जला रही है जहाँ तुझसा बाँका वीर राजा है।

[७५]

पान, पकवान बिधि नाना को, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनक-किरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडारहीं।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथसार जरे, घोरे घोरसारहीं॥

अर्थ—तरह-तरह की पीने और खाने की चीज़ें, सामान और सीधा, तरह-तरह के धान बखारों में जल रहे हैं। करोड़ों सोने के किरीट, पलँग और पिटारे, और पीढ़े, सब जली हुई चीज़ों के भार के भार भरकर कहार निकाल रहे हैं। भारी अग्नि बढ़ रही है। जहाँ से निकालते हैं वहीं जल रहे हैं। लपट बड़े वेग से

मकानों में और भंडारों में भरी है। हे तुलसी ! महल घर बाजार कुछ न बचा, हाथी हथसार में और घोड़े घुड़सार (अस्तबल) में जल गये।

[७६]

हाट बाट हाटक पघिल चलो घीसो घनो,
कनक-कराहीं लंक तलफति ताय सों* ।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरि कीन्हीं भली भाँति भाय सों ॥
पाहुने कृसानु पवमान† सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों ।
तुलसी निहारि अरि नारि दै दै गारि कहैं,
"बावरे सुरारि बैर कीन्हों राम राय सों" ॥

अर्थ—हाट और बाज़ारों में सोना घी सा पिघल चला मानो सोने की लङ्का कड़ाही है और ताव से जल रही है अथवा सोने की कड़ाही में लङ्का ताई जाती है। बली राक्षसगण तरह-तरह के पकवान हैं। उनको मानो अच्छी तरह से पाग-पाग के ढेर किये हैं। अतिथि अग्नि को मानो पवन से आदर करके यह पकवान परोस कर बड़े चाव से हनुमान ने जिंवाया है। हे तुलसी ! बैरी की स्त्रियाँ गाली दे-देकर कहती हैं बावले ने रामचन्द्र से वैर किया है।

[७७]

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर,
दिन दिन बिकल सकल सुखराँक‡ सो ।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक औत पावै§ न मनाक सो‖ ॥

---

* पाठान्तर—जायसों।

† पवमान के स्थान पर पकवान अच्छा पाठ है।

‡ राँक = रंक = भिखारी, मट्टी, चीण।

§ पाठान्तर = औ तपावै।

‖ मनाक = जरा सा भी।

राम की रजाय तें रसायनी समीरसूनु
उतरि पयोधि पार सोधि सरबाँक सो।
जातुधान बुट* पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन† जारि कियो है मृगाँक सो॥

अर्थ—विराट के उर में रावण का सा राजरोग दिन प्रति बढ़ते देखकर सब (देवता) विकल थे और सब सुख रंचक सा (न कुछ) था। सुर, सिद्ध और मुनि भाँति भाँति का उपाय करके हार गये परन्तु शोक न मिटा, न रोग किंचित् मात्र भी घटा। राम की आज्ञा से रसायन बनानेवाले हनुमान ने समुद्र पार करके और चारों ओर से शोध के राक्षसों की बूटी से पुटपाक में सुवर्ण और रत्नजटित लङ्का को यत्न से जलाकर मृगाङ्क बना दिया।

शब्दार्थ—राँक = रंक, भिखारी, मिट्टी, रंचक। मनाक = ज़रा सा भी। सर्व आँक = सब तरह। जातरूप = सोना। मृगाङ्क = सोने की भस्म, प्रायः राजरोगों में दी जाती है।

[७८]

जारि बारि कै विधूम, बारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो पगनि, भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
"मातु! कृपा कीजै, सहिदानि दीजै", सुनि सीय
दीन्ही है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै॥
"कहा कहौं, तात! देखे जात ज्यों बिहात‡ दिन,
बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै"।
तुलसी सनीर नैन, नेह सों सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै॥

अर्थ—लङ्का को जलाकर धुँवा से रहित कर (कोयला करके), पूँछ को समुद्र में बुझाकर [सीता के] पैरों पर माथा नवाकर के हनुमान हाथ जोड़ के खड़ा हुआ। हे माँ, कृपा करो, कोई चिन्हारी (निशानी) दो। यह सुनकर सीता ने आशीष दी और

---

* पाठान्तर—बुट–भूप बुट पुटपाक।

† जटित

‡ पाठान्तर—विहान।

सुन्दर चूड़ामणि उतार दी। हे प्यारे! तुमसे क्या कहूँ, देखे जाते हो कि दिन कैसे कटते हैं। तुम्हारा बड़ा सहारा था सो उसे भी तुम तोड़ चले। हे तुलसी! आँखों में आँसू भरे और प्रेम से शिथिल वाणी और विकल सीताजी को देखकर हनुमानजी ने उनसे निहोर के कहा।

[७९]

"दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर, अरि अंत की अवधि रही थोरि कै।
बारिधि बँधाइ सेतु ऐहैं भानु-कुल-केतु,
सानुज कुसल कपि-कटक बटोरि कै" ॥
बचन बिनीत कहि सीता को प्रबोध करि,
तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
"जै जै जानकीस दससीस करि केसरी"
कपीस कूद्यो बात घात बारिधि* हलोरि कै ॥

अर्थ—छ सात दिन बीतते हुए न जान पड़ेंगे, हे माता! धीर धर, वैरी के अन्त की अवधि अब थोड़ी रह गई है। भाई सहित रामचन्द्रजी और बन्दरों की फौज बटोर के समुद्र पर पुल बाँधकर आवैंगे। नम्र वचन कहकर सीता को इतमीनान कराके हे तुलसी! त्रिकूट पर्वत पर चढ़कर डङ्का की चोट हनुमान ने यह कहा—"जय रामचन्द्र, रावण से हाथी को सिंह रूप जय" यह कहकर हनुमान बात घात अर्थात् हवा के ज़ोर से अथवा बात जात बात के कहने में (बहुत थोड़े समय में) समुद्र हिलोरि के पार कूद गया अथवा बात-जात (हनुमान) कूद गया।

शब्दार्थ—डफोरि कै = डङ्का की चोट, चिल्लाकर। बात घात = हवा के ज़ोर से अथवा बात-जात = पवन पुत्र वा बात जाते हुए अर्थात् बहुत ही थोड़ी देर में, बिना प्रयास।

[८०]

साहसी समीर-सूनु नीरनिधि लंघि, लखि
लंक सिद्धपीठ निसि जागो है मसान सो।

* पाठान्तर—उदधि।

तुलसी बिलोकि महा साहस प्रसन्न भई,
देवी सीय सारखी, दियो है बरदान सो ॥
बाटिका उजारि अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानु-कुल-भानु को प्रताप-भानु भानु सो ।
करत बिसोक लोककोकनद, कोक-कपि,
कहैं जामवंत आयो आयो हनुमान सो ॥

अर्थ—साहसी हनुमान समुद्र पार करके लङ्का को सिद्ध पीठ पाकर रात को मसान जगाने लगा। हे तुलसी! उनका महा साहस देखकर सीताजी सी देवी प्रसन्न हुई अथवा देवी सी सीता प्रसन्न हुई और उनको वरदान दिया। बाग को उजाड़कर, अच्छ और सेना को संहार कर, गढ़ (लङ्का) को जलाकर रामचन्द्रजी का प्रताप रूपी भानु, सूर्य की तरह, सकल जगतरूपी कमल और चक्रवाक को प्रसन्न करता हुआ कपि (हनुमान्) आया। जामवन्त आदि कपि यह देखकर कहने लगे कि हनुमान् से आ रहे हैं।

शब्दार्थ—समीर-सुनु = वायुपुत्र, हनुमान्। नीर-निधि = समुद्र। निशि = रात। जागो है = जगाया है। सारखी = सरीखी = सी। धारि = सेना। भानु-कुल-भानु = सूर्य्यकुल के भानु, रामचंद्र। कोकनद = कमल।

[८१]

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिक समाज मानो,
आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं ॥
"जै जै जानकीस जै जै लखन कपीस" कहि
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत रेत हैं।
अंगद मयंद नल नील बलसील महा,
बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं ॥

अर्थ—आसमान को देखकर और भारी किलकारी सुनकर हनुमान् को पहचानकर (सब कपि) सचेत और आनन्दित हो गये। मानो डूबते हुए जहाज का समाज

बच गया, आज फिर से उत्पन्न हुए, यह जानकर सब हनुमान के गले में हाथ डाल मिलने लगे। "जय रामचन्द्र, जय लक्ष्मण, जय कपीश" (ऐसा) कहकर खिलाड़ी बंदर कूदने लगे और रेत-रेत में (अर्थात् रेत में प्रत्येक जगह) नाचने लगे। अङ्गद, मयन्द, नल, नील यह सब बलवान् कपि बड़ी बड़ी पूँछ फिराते थे और भाँति भाँति के मुख बनाते थे।

[८२]

आयो हनुमान प्रान-हेतु, अंकमाल देत,
लेत पगधूरि एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझै बार बार सीय-समाचार कहे,
पवनकुमार भो बिगत स्रम सूल हैं॥
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल,
एक पूजै बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं 'तुलसी' ! सकल सिधि ताके, जाके
कृपा-पाथ-नाथ सीता-नाथ सानुकूल हैं'॥

अर्थ—प्राणों के आधार हनुमान् लौट आये, कोई उनको गले से लगाते हैं, कोई उनके पैर की धूल माथे पर लेते हैं, कोई उनकी पूँछ को चूमते हैं। (कोई) बार-बार सीता के समाचार पूछते हैं, हनुमान भी समाचार कहकर श्रम-रहित हुए। अथवा (कहे के स्थान पर कहौ और कहे के पश्चात् जो, है वह समाचार के बाद होने से) कोई पूछता है कि हे हनुमान कहो थकावट दूर हुई ? कोई भूखा जानकर कन्दमूल फल सामने रखता है। कोई मूल (कंद) और फूल तोड़ लाकर उनके बाहुबल की पूजा करता है अथवा (मूल तोरि पाठ होने से) कोई फूल तोड़ लाकर बल की मूल बाहुओं की पूजा करता है। कोई कहता है कि हे तुलसी ! उसको सब सिद्ध है जिस पर कृपासिन्धु रामचन्द्र प्रसन्न हैं।

[८३]

सीय को सनेहसील, कथा तथा लंक की*,
चले कहत चाय सों, सिरानो† पथ‡ छन में।

---

* पाठान्तर—लङ्क कहै चले जात।

† पाठान्तर—सिरानी।

‡ पाठान्तर—पंथ।

कह्यो जुवराज बोलि बानर समाज आजु,
खाहु फल" सुनि पेलि पैठे मधुबन में ॥
मारे बागवान, ते पुकारत दिवान गे,
'उजारे बाग अंगद' दिखाये घाय तन में ।
कहैं कपिराज 'करि काज* आये कीस,
तुलसीस† की सपथ महामोद मेरे मन में' ॥

अर्थ—सीताजी का स्नेह और शील व लङ्का की कथा कहते बड़े चाव से रास्ते में चले जाते हैं, रास्ता क्षण भर में (न कुछ देर में) कट गया। युवराज अङ्गद ने सब बन्दरों को बुलाकर कहा कि आज "फल खाओ"। यह सुनकर सब मधुबन में घुस गये। बागवानों को मारा जो रोते हुए राज्य में गये और यह चिल्लाकर कहने लगे कि अङ्गद वग़ैरह ने बाग उजाड़ दिया, और बदन की चोट दिखाने लगे। सुग्रीव ने कहा कि बन्दर कार्य्य कर आये, महाराज रामचंद्र की कसम मेरे मन में बड़ी खुशी है।

[८४]

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाय सीस बीस बाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रज‡ तेज को निधान भो ॥
तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा,
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर§ जहान भो।
तीसरे उपास बनवास सिंधु पास सो,
समाज महराज जू को एक दिन दान भो ॥

---

* पाठान्तर—करि आये कीश काज।

† पाठान्तर—महाराज।

‡ पाठान्तर—राज।

§ पाठान्तर—जागर = उजागर, प्रकाश, जाहिर, जाँगर, जँगरा, दाना निकाल लेने पर जो डण्ठल बचता है।

अर्थ—कुबेर की नगरी और सुमेरु के समान (अर्थात् सोने की) लङ्का जो ब्रह्माजी की बुद्धि का विलासस्थान है अर्थात् जहाँ रहकर ब्रह्माजी अपनी बुद्धि की विलक्षणता दिखलाते हैं अथवा ब्रह्मा की जितनी बुद्धि थी वह सब ख़र्च करके बनी है। जिसने महादेवजी को शिर चढ़ाये हैं ऐसा बीस बाहुओंवाला वीर रावण तेज का निधान जिस नगर का राजा है, हे तुलसी ! जहाँ तीनों लोक की सामग्री और सम्पदा समेट-कर इकट्ठी कर रक्खी है, जिससे संसार सूना हो गया अथवा जो सब दुनिया में ज़ाहिर हैं, वह नगर और उसका सब समाज अर्थात् सब समृद्धि सहित लङ्का को तीसरे उपास अर्थात् तीन दिन भूखे रहकर वन में सिन्धु के किनारे महाराजा रामचन्द्रजी ने एक ही दिन में अथवा एक दिन दान में दे दिया अर्थात् विभीषण को दे डाला।

इति सुन्दरकाण्ड

---

* पाठान्तर—राज।

† पाठान्तर—जागर = उजागर प्रगट, ज़ाहिर। जांगर = जंगरा, दाना निकल जाने पर जो डण्ठल बचता है।

लंकाकाण्ड

घनाक्षरी

[८५]

बड़े बिकराल भालु, बानर बिसाल बड़े,
तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपि हैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड* बाहुदंड खंड,
मंडि मेदनी को मंडलीक-लीक लोपि हैं॥
लंकदाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन† को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपि हैं।
"बाचि है न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारिहू के,
को है रनरारि को जौं कोसलेस कोपि हैं॥"

अर्थ—हे तुलसी! बड़े कराल और बड़े शरीरवाले रीछ और बन्दर बड़े-बड़े पहाड़ लेकर समुद्र को भर देंगे। बड़े बलवान् और प्रतापशील और कठिन भुजाओं-वाले, पृथ्वी को भूषित करके (भर के) बड़ों-बड़ों का अथवा मण्डलीक रावण का नाम मिटा देंगे। लङ्का का दाह देखे पीछे किसी के मन में उत्साह नहीं रह गया। सब मन्त्री पुकार-पुकार कर कहने लगे कि जब रामचन्द्र पैर रक्खेंगे और क्रोध करेंगे, अथवा मन्त्रियों ने पैर रोपकर कहा कि जब रामचन्द्रजी क्रोध करेंगे तो लड़ाई में महादेव, विष्णु की आड़ लेने पर भी हम लोग न बचेंगे।

[८६]

त्रिजटा कहत बार बार तुलसीस्वरी सों‡,
"राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोषिहैं।

---

* पाठान्तर—बलबंड।

† पाठान्तर—काहू।

‡ पाठान्तर—तुलसी खरी सो।

सकुल सँघारि जातुधान धारि, जंबुकादि
जोगिनीजमाति कालिका-कलाप तोषिहैं ॥
राज दै निवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं ।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो,
को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोषिहैं" ॥

अर्थ—त्रिजटा बार-बार सीताजी से कहती है कि रामचन्द्रजी एक ही बाण से सातो समुद्रों को सोखेंगे और सकुटुम्ब राक्षसों की सेना को मारकर जम्बुक वग़ैरह, योगिनियों की जमाति (समूह) कालिका आदि को सन्तुष्ट करेंगे अर्थात् उनको इतना भोजन देंगे कि वह सन्तुष्ट हो जावेंगे और नाद करने लगेंगे। डङ्के की चोट राज देकर विभीषण की सेवा का फल देंगे और आकाश में बाजे बजेंगे और देवगण को प्रेम से पालेंगे। क्या रावण, कहाँ का मेघनाद बेचारा और कहाँ का कुम्भकर्ण, ये सब कीड़े के समान नष्ट होंगे जब रामचन्द्र रण में क्रुद्ध होंगे।

शब्दार्थ—ब्योम = आकाश। बापुरो = बेचारा। बिबुध = देवता।

[८७]

बिनय सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों,
"पाये कछु समाचार आरजसुवन के ?"
"पाये जू! बँधायो* सेतु, उतरे† कटक कुलि,‡
आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के ॥
बदनमलीन बलहीन दीन देखि मानो,
मिटे घटे तमीचर तिमिर भुवन के।
लोकपतिसोककोक, मूँदे कपिकोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु-आदित उवन के ॥

* पाठान्तर—बँधाये।

† पाठान्तर—आये।

‡ पाठान्तर—भानु-कुल-केतु।

अर्थ—विनय और प्रीति के साथ सीता त्रिजटा से कहती हैं क्या कुछ समाचार आर्यपुत्र (रामचन्द्र) के तुमने पाये हैं? (त्रिजटा ने कहा कि) हाँ पाये हैं कि सेतु बाँधकर रामचन्द्रजी पार आय उतरे हैं। (दारुण=) कठिन (दुवन के) दुर्जन के, दारुण-दुवन अर्थात् रावण के, दूत देखि देखि आये हैं। (उनको) कुम्हलाये मुँह और बलहीन देख देखकर मालूम होता है कि सब भुवनों का राक्षसरूपी अन्धकार मिटा चाहता है, लोकपति (दिग्गजों) रूपी चकवा जो शोक-युक्त है और बन्दररूपी कमल जो अभी बन्द हैं उनको प्रसन्न करने और खोलने को रामचन्द्ररूपी सूर्य्य के उदय होने के केवल दो दण्ड रहे हैं अर्थात् थोड़ी देर बाक़ी है।

झूलना

[८८]

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि*
दलत† जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि परबाम‡ बिधिबाम तेहि राम सों,
सकल संग्राम दसकंध काँध्यो॥
समुझि तुलसीस कपि§ कर्म घर घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत||
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥

अर्थ—सुबाहु, मारीच, खर, त्रिशिरा, दूषण और बालि को मारने में जिसने एक से दूसरा बाण नहीं लगाया; उस राम से रावण ने, जिस पर दूसरे की स्त्री हर लाने से ब्रह्मा भी उलटे हैं, लड़ाई मोल ली है। तुलसी के प्रभु (रामचन्द्रजी) और हनुमान का कर्म समझकर घर घर शोर मच गया है और सब यह सुनकर विकल हैं कि

* पाठान्तर—बली।

† पाठान्तर—बंधन।

‡ पाठान्तर—धाम।

§ पाठान्तर—कोपि।

|| पाठान्तर—अकृत=न किया हुआ, स्वयं उत्पन्न हुआ अथवा अछत=अक्षत, चिरञ्जीव अथवा देखते हुए, होते हुए।

समुद्र बाँधा गया है। बड़े दृढ़ क़िले में रहते हुए भी, और रावण से अद्‌भुत नायक के होते भी, अथवा लङ्का को अकृत (स्वयं) विश्वकर्मा कृत जानते हुए भी, कोई लङ्का में राँधा भात नहीं खाता है अर्थात् सब अत्यन्त भयभीत हैं।

सवैया

[८६]

बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भये हनि हाथ-हजारी।
बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लंक न जारी ?
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहैं को गज कौन गजारी।
कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन बात बड़ो सो बड़ोई बजारी॥

अर्थ—विश्व को जीतनेवाले परशुराम से सैकड़ों वीर हाथ मारकर बिना हाथ के बलहीन हुए अथवा हाथ-हजारी (हजार योधाओं के पतियों) को मारनेवाले परशुराम भी बलहीन हुए, अथवा हाथ-हजारी (सहस्रबाहु) को मारनेवाले परशु-राम भी बलहीन हुए। बाई के मारे अचेत रावण ने मामा की सीख को न सुना तो क्या बन्दर ने लङ्का को न जला दिया। अब भी राम से मिलने में भलाई है। फिर क्या कोई पूछेगा कि गज कौन था और ग्राह कौन ? अर्थात् दोनों के भेद करनेवाले राम ही हैं अथवा फिर कौन पूछेगा कि गज कौन और गजारि कौन ? सब छोटे बड़े एक साथ मारे जावेंगे अथवा नहीं तो मालूम पड़ेगा कि गज कौन और गजारि कौन ? अर्थात् बड़ा बलवान् दोनों में कौन है। उसकी बड़ो महिमा है, उसके काम बड़े हैं, जन (आदमियों) में उसकी बात बड़ी है, परन्तु वह रावण बजारी (नंगा, बेहया) बड़ा है। अथवा बजारी (दलाल) कोई कितना भी कहे अपना मतलब न छोड़े।

[९०]

जब पाहन भे बनबाहन से, उतरे बनरा 'जय*राम' रढ़े।
तुलसी लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलबारि बढ़े॥
करि कोप करैं रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरंग चमू पल में दलिकै रन रावन राढ़† के हाड़‡ गढ़े॥

* पाठान्तर—जै जै।
† पाठान्तर—राँड़।
‡ पाठान्तर—सुहाड़।

अर्थ—जब पत्थर और लकड़ी (वृक्षों) को वाहन बनाकर अथवा जब पत्थर वनवाहन (नौका) हो गये तो बन्दर राम की जय करते हुए पार उतर आये। हे तुलसी! सब शैल और शिला लिये हुए ऐसे शोभित थे मानो समुद्र के पानी का बल बढ़ रहा अर्थात् समुद्र में ज्वार आ गया अथवा उनका बल ऐसा बढ़ा जैसे समुद्र का पानी। कोप करके बन्दर कहते हैं कि राम की आज्ञा हो तो खेल ही खेल में अर्थात् बिना प्रयास कूदकर गढ़ पर चढ़ जायँ और चतुरङ्ग सेना को क्षण भर में मारकर लड़ाई में रावण से राढ़ (हठी व बली) के अथवा रावण को राँड़ (निस्सहाय) करके उसके हाड़ों (हड्डियों) को गढ़ डालें।

घनाक्षरी

[९१]

बिपुल बिसाल बिकराल कपि भालु मानो
काल बहु वेष धरे धाये किये करषा।
लिये सिला सैल, साल ताल औ तमाल तोरि
तोपैं तोयनिधि, सुर को समाज हरषा॥
डगे दिग-कुंजर, कमठ कोल कलमले,
डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा।
तुलसी तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
को करै अटक कपि-कटक अमरषा॥

अर्थ—अत्यन्त बड़े और विकराल कपि व भालु क्रोध करके दौड़े मानो अनेक रूप धारण किये काल हैं और पर्वत और शिला उखाड़कर और साल, ताड़ और तमाल के वृक्ष तोड़कर समुद्र को पाट दिया, सेतु बाँध दिया, जिसे देखकर देवगण अति प्रसन्न हुए। दिग्गज डिग गये, कछुवा, सूकर हिलने लगे, पर्वतों की पाँति-सहित पृथ्वी हिलने लगी, धरा (पृथ्वी) को धारण करनेवाले (शेष) धरषा गये (दब वा घबरा गये)। हे तुलसी! वानर तेज़ी से चलते थे और रामचन्द्र की क़सम खाते थे। जब बन्दरों की सेना क्रोधित हुई तब उसे कौन रोक सकता था?

शब्दार्थ—करखा = क्रोध। तोप = पाट देना। तोयनिधि = समुद्र। धराधर = शेष, पर्वत। अमरषे = क्रोधित हुए।

[९२]

आये सुक सारन बोलाये ते कहन लागे,
पुलकि सरीर सैना करत फहमही।
'महाबली बानर बिसाल भालु काल से
कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही'॥
हँस्यो दसमाथ रघुनाथ को प्रताप सुनि,
तुलसी दुरावै मुख सूखत सहमही।
राम के विरोधे बुरो बिधि हरि हरहू को,
सबको भलो है राजा राम के रहमही॥

अर्थ—शुक सारन दूतों को बुलाया तो वह लोग आकर कहने लगे कि वानर सेना की याद करते ही शरीर के रोंगटे खड़े होते हैं। बन्दर बड़े बली हैं, भालु बड़े भारी हैं, काल से भी कठिन हैं, न जाने कहाँ रहते थे, और न जाने पृथ्वी पर कहाँ समायँगे? रामचन्द्र का प्रताप सुनकर रावण हँसा। हे तुलसी! मुँह सहमकर (घबड़ाकर) सूख गया परन्तु उसे छिपाना चाहता है। रामचन्द्र के वैर से ब्रह्मा-विष्णु-महादेव का भी कल्याण नहीं। सबका भला रामचन्द्र की दया ही से है।

शब्दार्थ—फहम = समुझ। सहम = डर। रहम = दया।

[९३]

'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि,' भयो
सोर चहुँ ओर लंका आये जुवराज के।
एक काढ़ै सौज, एक धौंज करै कहा ह्वैहै,
'पोच भई महा' सोच सुभट समाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानौ गाजे गाज के।
सहमि सुखात बातजात की सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के॥

अर्थ—अङ्गद के लङ्का में आने पर चारों ओर शोर मच गया कि वही बन्दर फिर आया। कोई बटोर-बटोरकर असबाब निकालता था। कोई कहता था कि देखें अब की क्या करेगा। सब योधागण की मति पोच हो गई अर्थात् सब बड़े-बड़े सुभट घबड़ाने लगे। रामचन्द्र की कसम खाकर अङ्गद गरजा, सब राक्षसों ने अपनी-अपनी आँखें मूँद लीं, मानों वज्र टूट पड़ा हो। वे हनुमान की याद कर सहमकर इस भाँति डरे जैसे लवा बाज़ के झपटने पर छिपता है।

शब्दार्थ—सौज=सामग्री। सौंज=कसम, धौज=दौड़ धूप।

[९४]

तुलसी सबल रघुबीर जू के बालिसुत
वाहि न गनत, बात कहत करेरी सी।
बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
रिस काहे लागत कहत हौं तो तेरी सी॥
चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि,
नेकु धका देहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी।
सुनु दसमाथ! नाथ-साथ के हमारे कपि
हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी॥

अर्थ—तुलसी कहते हैं कि सबल (बलवान्) रघुवीर (राम) के दूत बालि-सुत (अङ्गद) ने वाहि (रावन) को कुछ नहीं गिना और बड़ी कड़ी बात कही कि शिव जी की बकसीस (दी हुई सम्पदा) नाश होते मुझे दिखाई देती है। क्रोध क्यों करते हो? मैं तुम्हारी सी कहता हूँ। बानर, भालु गढ़ पर चढ़कर जब मज़बूत मकानों और कोट के कँगूरों को नेक धक्का देंगे तब वह (गढ़) ढेलन (ईंटों) के ढेर से गिर पड़ेंगे। हे रावण! सुन, हमारे बन्दर जो रघुनाथ के साथ हैं जब लङ्का में हाथ लगावेंगे तो हथेली सी साफ़ रह जावेगी, अर्थात् कुछ बाक़ी न रहेगा।

[९५]

दूषन बिराध खर त्रिसर कबंध बधे,
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को।

एक ही बिसिष बस भयो बीर बांकुरो जो,
तोहू है बिदित बल महाबली बालि को ॥
तुलसी कहत हित, मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालि को ।
वीर-करि-केसरी कुठार-पानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़ !* तोसो गनै घालिको ॥

अर्थ—जिसने खर-दूषण, विराध, त्रिशिरा, कबन्ध मारे और विकराल तालों को अथवा सप्त तालों को जो बड़े विशाल रहे बेध दिया, यह कल का तमाशा है। एक ही बाण में बड़े-बड़े वीर वश हुए (मारे गये), सो बड़े बली बालि का बल तुझे भी ज्ञात है (उसे भी रामचन्द्रजी ने मार डाला)। तुलसी कहते हैं कि अंगद ने कहा कि मैं भलाई की बात कहता हूँ, पर तू कुछ नहीं डरता, अथवा मैं तेरी भलाई की बात कहता हूँ इसलिए मुझे कुछ भय नहीं है, मेरा क्या जावेगा, तू ही अपनी कुचालि का फल पावेगा। वीर रूप हाथियों को शेर, कुठार हाथ में रखनेवाले (परशुरामजी) ने हार मान ली, तो तेरी क्या गति है। हे मूर्ख ! तुम्हारे ऐसों को कौन गिनता है।

शब्दार्थ—बिड़ = मूर्ख।

सवैया

[६६]

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे।
बालि बली खरदूषन और अनेक गिरे जेजे भीति में दौरे ॥
ऐसिय हाल भई तेहि धौं, नतु लै मिलु सीय चहे सुख जौरे।
राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, संकर सौरे ॥

अर्थ—तुझसे ही कहता हूँ ऐ बावले रावण ! राम से वैर न कर; बली बालि और खर-दूषण और बहुत से जो इस डर की जगह दौड़कर गये अथवा दीवाल में दौड़े वह सब गिरे (नाश हो गये)। यही हाल तेरा होगा, नहीं तो जो सुख चाहता है तो सीताजी को लेकर मिल। राम के क्रोध करने पर, तुलसीदास कहते हैं कि, सौ ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नहीं राख सकेंगे।

---

* पाठान्तर—बड़े = बच, बढ़े = दब गया।

[६७]

तू रजनीचरनाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहिं लाज न* गालबजावत सोहौं॥
बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु आयसु भंग ते जो हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तो हौं॥

अर्थ—तू राक्षसों का नाथ अर्थात् राजा है परन्तु मैं रामचन्द्र के दास का दास हूँ। अपनी गली में कुत्ता भी बलवान् होता है। तेरे (तुझे) लाज नहीं है। परन्तु (गाल बजाते) फ़िज़ूल बकवाद करते मुझे शोभा नहीं है, अथवा तेरे सामने मुझे गाल बजाते लाज नहीं है क्योंकि जैसे को तैसा चाहिए, अथवा मेरे सामने तुझे बकवाद करते लाज नहीं आती। अभी बीस भुजा और दसों सिर हर लेता, यदि रामचन्द्र की आज्ञा-भङ्ग का डर न होता। जैसे खेत (मैदान) में शेर हाथी को नाश करता है वैसे ही यदि दल को नाश न करूँ तो मैं बालि का बेटा नहीं।

[६८]

कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुज-दंड द्वै† अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं॥
आयसु भंग ते जो न डरौं सब मींजि सभासद सोनित खोरौं।
बालि को बालक जो तुलसी दसहू मुख के रन में रद तोरौं॥

अर्थ—रामचन्द्र के काम के लिए मैं आज त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर समुद्र में डुबा सकता हूँ। अपने दोनों बाहुओं में ब्रह्माण्ड को दबाकर झट से फोड़ सकता हूँ। सब सभासदों को मींजकर लोहू से स्नान करा सकता हूँ यदि रामजी की आज्ञा के टूटने से न डरूँ। हे तुलसी! मैं तब बालि का पुत्र कहाऊँ जब लड़ाई में दसो मुँह के दाँत तोड़ूँ।

सवैया

[६९]

अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निशाचर सैन पचा॥

---

* पाठान्तर—है बलवान गली निज श्वान न लाजन।

† पाठान्तर—द्वै भुजदण्ड से।

न टरै पग मेरुहु ते गरु भो, सो मानों महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं "जग में बलसालि है बालिबचा" ॥

अर्थ—बड़े क्रोध से सभा में पैर रोपा, सब लङ्का में डर से शोर मच गया, मेघनाद से योधा बड़े वेग से उठे, और कुल निशाचर-सेना प्रचार के (कोशिश करके) हार गई अथवा मेघनाद से वीर गुस्से में होकर उठे मगर पैर मेरु से भी भारी हो गया, उठाये नहीं उठता, मानो ब्रह्मा ने पृथ्वी के सङ्ग बनाया है अर्थात् पृथ्वी का एक भाग है उससे अलग हो ही नहीं सकता। हे तुलसी! सब वीर अङ्गद की प्रशंसा करने लगे कि जग में बालि का बेटा बड़ा वीर है।

घनाक्षरी

[१००]

रोप्यौ पाँव पैज कै बिचारि रघुवीरबल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यौ धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि,
तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि, घठा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥

अर्थ—अङ्गद ने रामचन्द्र के बल को विचारकर, प्रण करके, पैर को रक्खा, जिसे बड़े-बड़े बली मिल-मिलकर उठाने लगे परन्तु वह ज़रा नहीं हिला। पृथ्वी ने भी धैर्य्य छोड़ दिया, सुमेरु धसकने लगा और धीर शेषनाग भी भार न सह सके। बलवान् अङ्गद के दबाने से पृथ्वी पसीज गई। हे तुलसी! मानो मेरु के मसकने (दवाने) से सिन्धु उछलने लगा अथवा मेरु मसक (फट) गया। कच्छप की पीठ पर मन्दर (पर्वत) का जो घट्ठा पड़ा था वह तो काम आया, परन्तु कलेजा कसकता है।

झूलना

[१०१]

कनकगिरि सृंग चढ़ि देखि मर्कट कटक,
बदत मंदोदरी परम भीता।
"सहसभुज मत्त-गजराज-रनकेसरी
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
दास तुलसी समरसूर कोसलधनी
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।
रे कंत ! तृन दंत गहि सरन श्रीराम कहि,
अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता॥"

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सोने के पहाड़ की चोटी पर चढ़कर और बन्दरों की सेना को देखकर बहुत डरी हुई मन्दोदरी कहने लगी कि सहस्रबाहु से मस्त हाथी के लिए सिंह के समान परशुराम का ग़ुरूर जिसे देखकर जाता रहा, लड़ाई में बलवान् जिन कोसल के प्रभु ने ख्याल ही में (बात की बात में) बली बालि को जीत लिया, हे कन्त ! तिनका दाँतों में पकड़कर ऐसे श्रीरामचन्द्र की शरण लो और सीता को सौंप दो। (दाँतों में तिनका दबाने से अर्थ शरण लेने से है।)

[१०२]

"रे नीच ! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो।
सहस-दसचारि खल सहित खरदूषनहि,
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥
मैं जु कहौं कंत ! सुनु, संत* भगवंत सों
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो ?
बीस भुज सीस दस खीसि गये तबहिं
जब ईस के ईस सों बैर कीन्ह्यो॥"

* पाठान्तर—मंत = मंत्र, सलाह।

अर्थ—हे नीच ! जिसने मारीच को विकल करके, ताड़का को मारकर, शिव के धनुष को तोड़कर सबको सुख दिया; खरदूषण के साथ १४ सहस्र राक्षसों को मार डाला; उसे तूने तब भी न जाना। मैं जो कहती हूँ उसे सुन, संत और भगवान् से लड़कर बालि ने कौन फल पाया ? तेरे बीस भुजाओं सहित दसों शिर तभी नष्ट हो गये जब तूने महादेव के प्रभु (रामचन्द्र) से बैर किया।

[१०३]

"बालि दलि, काल्हि जलजान पाषान किय,
कंत ! भगवंत तैं तउ* न चीन्हें।
बिपुल बिकराल भट भालु कपि काल से
संग तरु तुंग गिरिस्रृंग लीन्हें ॥
आइगे कोसलाधीस तुलसीस जेहि
छत्र मिसि मौलि† दस दूरि कीन्हें।
ईस-बकसीस जनि खीस करु, ईस ! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल बैदेहि दीन्हें ॥"

अर्थ—हे कन्त ! बालि को मारकर जब कल ही पत्थरों को नौका (सेतु) बना दिया तब भी तूने भगवान् को न पहचाना। बड़े विकराल वीर बन्दर और भालू उनके सङ्ग हैं जो काल के समान हैं और बड़े वृक्ष और पहाड़ों के शृङ्ग लिये हैं। तुलसी के प्रभु रामचन्द्र आ गये जिन पर महादेव का छत्र है जिनके लिए तुमने दस सिर दूर किये (अर्थात् जिन महादेव पर तुमने अपने सिर चढ़ा दिये थे वही रामचन्द्र पर छत्र किये हैं), अथवा जिन्होंने छत्र के बहाने दसों सिरों को गिराया था। हे कन्त ! महादेव के दिये हुए वर के बल पर मत हँसी कर अथवा महादेव की दी लङ्का को मत नाश कर, सुन अब भी सीताजी के देने से कुल की कुशल है।

शब्दार्थ—दश मौलि = दश शिर।

[१०४]

"सैन के कपिन कों को गनै अर्बुदै,
महाबल-बीर हनुमान जानी।

---

* पाठान्तर— तब।

† पाठान्तर—शशिमौलि = महादेव।

भूलिहैं दस दिसा, सेस* पुनि डोलिहैं,
कोपि रघुनाथ जब बान तानी ॥
बालि हू गर्ब जिय माहिं ऐसो कियो,
मारि दहपट कियो जम की घानी† ।"
कहत मन्दोदरी सुनहि, रावन ! मतो,
"बेगि लै देहि बैदेहि रानी ॥"

अर्थ—उनकी सेना के वानरों को कौन गिन सकता है, वह तो अर्बुद (बड़ी संख्यावाले, असंख्य) हैं और समझ लो कि हनुमान से महाबली वीर हैं। दसों दिसा भूल जायँगी, (अर्थात् तू ज्ञानशून्य हो जायगा) और शेषजी हिलने लगेंगे जब रामचन्द्र क्रोध करके बान तानेंगे। बालि ने अपने मन में ऐसा ही गरूर किया था (कि मेरा कोई क्या कर सकता है) उसे मार चौपट कर यमराज की राजधानी को भेज दिया अथवा कोल्हू में पेर दिया। मंदोदरी ने रावण से कहा कि यह मता सुन कि जल्दी सीता को लौटा दे।

[१०५]

"गहन उज्जारि पुर जारि सुत मारि तव,
कुसल गो कीस बरबेर जाको।
दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,
खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको ॥"
दास तुलसी सभय बदति मयनंदिनी,
'मंदमति कंत ! सुनु मंत म्हाको।
तौलौं मिलु बेगि नहिं जौलौं रन रोष भये,
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको' ॥

अर्थ—वन को उजाड़कर, नगर को जलाकर, तुम्हारे लड़के को मारकर, जिसका बड़ा बली बन्दर साफ़ निकल गया; दूसरे दूत ने क्रोध से सभा में प्रण करके पैर को रोपा और तुम सबको छोटा कर दिया, सबका गरूर लचा दिया। तुलसीदास कहते

* पाठान्तर—सीस।

† पाठान्तर—धानी = राजधानी।

हैं कि डर सहित मन्दोदरी कहती है कि हे मन्दमति पति! मेरी सलाह मान, तब तक जाके जल्दी से मिल जब तक दशरथकुमार रामचन्द्र विरदवाले बाँके वीर रण में क्रोध नहीं करते हैं।

घनाक्षरी

[१०६]

'कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजार्‌यो सो बिलोक्यो बल कीस को।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधान मंडली में
कपि कोपि रोप्यो पाँउ, सो प्रभाव तुलसीस को॥
कंत! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो* कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तैलौं मिलु बेगि जौलौं चाप न चढ़ायो राम,
रोषि बान काढ़्यो ना दलैया दससीस को'॥

अर्थ—बन को उजाड़कर अच्छ को मारकर सेना को धूल सा उड़ा दिया, नगर को जला दिया वह बल बन्दर का देखा। तुम्हारे होते हुए राक्षसों की सभा में बन्दर ने क्रोध से पैर रोपा। यह प्रभाव भी तुलसी के प्रभु (रामचन्द्र) का था। हे कन्त! मन्त्र (सलाह) सुन, कुल का अन्त करने से अन्त में हानि ही होगी। हाय तात! बीस भुजाओं का बल आप हृदय में किये हैं? अथवा बीस भुजाओं का बल हृदय से निकाल डालिए अर्थात् यह आपका भ्रम है। तब तक जल्दी से जाकर मिलिए जब तक रामचन्द्र ने क्रोध करके धनुष नहीं चढ़ाया है और रावण को मारनेवाला बाण नहीं निकाला है।

[१०७]

"पवन को† पूत देखैा, दूत बीर बाँकुरो, जो
बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।

---

* पाठान्तर—न्हातो कीजै हिये ते। (२) हाय तात न कीजै।

† पाठान्तर—के।

बालि बलसालि को, सो काल्हि दाप दलि, कोपि
रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो ॥
सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि,
आये* नाथ! भागे तें खिरिरि† खेह खाहिगो" ।
तुलसी "गरव तजि मिलिबे को साज सजि,
देहि सीय न तो पिय ! पाइमाल जाहिगो ॥"

अर्थ—रामचन्द्र के बली दूत पवनसुत हनुमान् को देखा जो लङ्का से बड़े गढ़ को धक्कों से ढकेलि के गिरा गया। बालि का पुत्र जो बली है उसने कल तुम्हारे घमण्ड को दबाकर क्रोध से पैर रोपा। तुम्हारी सब सेना का चाव भाग गया। वही रघुनाथ बन्दरों के साथ समुद्र बाँधकर आये हैं। हे नाथ! भागने से घसिट-घसिटकर मट्टी खानी होगी। तुलसीदास कहते हैं कि घमण्ड छोड़ मिलने का सामान करो, सीता को दो, नहीं तो हे पिय पायमाल (नष्ट) हो जाओगे।

शब्दार्थ—खेह = राख, मिट्टी। खिरिर = घसिट घसिटकर। पाइमाल = पाँयमाल, पैर से मला, नष्ट।

[१०८]

"उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,
केसरीकुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो ।
बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो ॥
तुलसी तिहारे बिद्यमान जुवराज आजु
कोपि, पाँव रोपि बस कै छोहाइ छाँड़िगो ।
कहे की न लाज, पिय! अजहूँ न आये बाज,
सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो ॥"

अर्थ—जिसे अपार समुद्र के पार उतरते देरी नहीं लगी, वह अदंड (जिसे कोई दंड नहीं दे सका) पवनसुत सबको कैसा दण्ड दे गया। अथवा

---

* पाठान्तर—आयो ।

† पाठान्तर—खिरि

वह पवनसुत तुमसे अदण्ड को भी कैसा डाँडि गया। फुलवारी को उजाड़कर, अक्ष और बाग़ के रक्षकों को मारकर जो तुम्हारे बड़े भारी-भारी योधा थे उन्हें चावल की भाँति काँड़ि गया (छिलका उतार गया, कूट गया)। तुलसीदास कहते हैं कि तुम्हारे होते हुए भी अङ्गद ने आज क्रोध करके पाँव रोपा और सबको छूँछा करके छोड़ गया अथवा वश में करके रहम से छोड़ गया अथवा तुम्हें अपने पैर छुलाकर छोड़ गया। कहने की तुम्हें कुछ शर्म नहीं है, अब भी तुम बाज नहीं आते हो। सब समाज सहित लङ्का राँड़ के भण्डार की सी लुट गई, अर्थात् ऐसी लुटी मानों उसकी रखवाल राँड़ (असहाय बलहीन स्त्री) थी अथवा विधवा के गढ़ की तरह घूमघूमकर देख गया।

[१०६]

"जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हें,
पैयत न छत्री-खोज खोजत खलक में।
महिषमती को नाथ*, साहसी सहसबाहु,
समर समर्थ, नाथ! हेरिए† हलक में॥
सहित समाज महाराज सो जहाज राज
बूड़ि गयो जाके बलबारिधि-छलक में।
टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते
नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में॥"

अर्थ—जिसके असह्य क्रोध ने त्रिदोष के दाह को भी दूर (मात) कर दिया था कि जिससे संसार में क्षत्रियों का खोज ही नहीं मिलता था, माहिषमती का राजा, साहसी सहस्रबाहु, जिसकी रण में सामर्थ्य को, हे नाथ! हलक में (मन में) सोचिए अर्थात् जिसका बल आप खूब जानते हैं, हे महाराज! समाज के साथ वह सहस्रबाहुरूपी जहाज़ जिसके बल रूपी समुद्र की छलक में डूब गया (अर्थात् जिसने ऐसे बली को भी नष्ट कर दिया था), सो परशुराम धनुष के टूटने से राम से कुछ टेढ़े होने पर पलक में (क्षण भर में) बिना नाक के हो गये अर्थात् उनकी सब शेख़ी जाती रही।

---

* पाठान्तर—नाह।

† पाठान्तर—हरषे।

[११०]

"कीन्हीं छोनी छत्री विनु, छोनिप-छपनहार,
कठिन कुठार-पानि बीर बानि जानिकै ।
परमकृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनुहाई ह्वैहै मन अनुमानि कै ॥
नाक में पिनाक मिसि बामता बिलोकि राम,
रोक्यो परलोक, लोकभारी भ्रम भानि* कै ।
नाइ दशमाथ महि, जोरि बीसहाथ, पिय !
मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै ॥"

अर्थ—जिन्होंने पृथ्वी को बिना क्षत्रिय के किया था, जिनके हाथ में राजाओं को मारनेवाला कठिन कुठार था, उनकी वीर बानि को जानकर और मन में यह समझ कर भी कि जब इनके पास धनुष होगा तब क्या गति होगी रामचन्द्र ने, जो राजाओं और लोकपालों पर बड़ी दया करनेवाले हैं, पिनाक (महादेव के धनुष) के बहाने से परशुराम की नाक में टेढ़ापन देखकर संसार के भारी भ्रम को मिटा दिया और परलोक की गति को रोक दिया, अथवा जिन्होंने पृथ्वी को बिना क्षत्रिय के कर दिया था जो राजाओं के नाशक थे, बड़े कड़े कुठार को हाथ में लिये थे उनकी वीर-गति को जानकर और यह समझकर राम ने, जो राजाओं और लोकपालों पर दया करते हैं, उनका धनुष भी हर लिया था और पिनाक के बहाने से परशुराम की नाक में टेढ़ापन देखकर उनकी गति को रोक दिया था, अथवा जिन्होंने पृथ्वी को बिना क्षत्रियों के कर दिया था ऐसे परशुराम की वीरगति को जानकर उनकी गति को रोक दिया था, ऐसे राजाओं और लोकपालों पर दया करनेवाले रामचन्द्र की जब धनुहाई होगी तब क्या गति होगी, उसका अनुमान करके अर्थात् बिना धनुहाई (धनुष से बाण चलाये) यदि परशुराम की यह गति हुई तो जब तेरे ऊपर बाण चलेंगे तो क्या गति होगी इसका अनुमान करके और लोक के भारी भ्रम को मिटाकर दशों सिर पृथ्वी पर नवाकर और बीसों हाथ जोड़कर निश्चय उनसे मिलिए और रघुनाथ को अपना नाथ पहचानिए अथवा हे नाथ रामचन्द्रजी को पहचान कर उनसे मिलिए ।

---

* पाठान्तर—मानि कै ।

[१११]

"कह्यो मत मातुल बिभीषनहु बार बार,
आँचर पसारि पिय पाँय लै लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर, नाथ ! भृगुनाथ गति,
समय सयानी कीन्ही जैसी आय गौं परी ॥
बायस, बिराध, खरदूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीर के न पूरी काहु की परी।
कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी ॥"

अर्थ—मामा और विभीषन ने बार-बार सलाह दी और मैं भी अञ्चल पसार-कर बार-बार पैरों पर पड़ी। जनकपुर में हे नाथ ! परशुराम की अथवा जनकपुरी में तुम्हारी और परशुराम की जो गति हुई सो विदित है। उन्होंने होशियारी की। जैसा समय था वैसा किया। जयन्त, विराध, खर-दूषण, कबन्ध, बालि किसी की भी पूर राम के वैर से न पड़ी। हे कन्त ! बुरी सलाह का फल बीसों आँखों से देखो, कि कपि ने लङ्का को राँड़ की सी अर्थात् अनाथ की सी झोपड़ी समझा अर्थात् उसे नष्ट कर दिया, जला दिया।

सवैया

[११२]

'राम सों साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे।
आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे ॥
नाथ! सुनी भृगुनाथ-कथा, बलि बालि गये चलि बात के साँठे।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे* ॥'

अर्थ—रामचन्द्र से सलाह करने से रोज हित है। सीधे काम को टेढ़ा मत करो। हे पिय समझिए, अपनी समझ कहती हूँ कि ठौर ही नाश है, हम लड़ने योग्य नहीं हैं। हे नाथ ! परशुराम की कथा सुनी होगी और बालि बात की बात में साँठे (सेंठे की तरह) चले गये, अथवा अपनी बात साठे रहे अर्थात् पकड़े रहे और

* पाठान्तर—ठाढे, नाढे, साँढे, काँढे। आइ परे पुनि सायर काढ़े।

चले गये। विभीषण भाई जा मिला, हे प्रभु ! आ पड़ने पर वैर निकालेगा, अथवा सायर जो समुद्र है उसके किनारे पर प्रभु आ गये हैं।

[११३]

पालिबे को कपि-भालु-चमू जमकाल करालहु को पहरी है।
लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है॥
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है।
नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है॥

अर्थ—पालने को बन्दर और भालुओं की सेना है जो यम और कराल काल के भी कोप को हरनेवाली है, अथवा बन्दर और भालु सेना को पालने के लिए हनुमान् पहरी (पहरेवाले) की तरह है। लङ्का से बड़े दुर्ग को गिरा देने के लिए और जला देने को कहर (महामारी) है। राक्षसों की सेना तीतरों के समूह के समान है और हनुमान् बहरी (शिकारी) है। हे नाथ ! भला यह है कि राम से मिलो। राक्षसों की सेना हृदय में काँप रही है।

शब्दार्थ—तोम = समूह। तमीचर = राक्षस। समीर को सूनु = हनुमान्। बहरी = शिकारी पक्षी विशेष। हहरी = घबड़ा रही है।

घनाक्षरी

[११४]

रोष्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग समाज की।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचर-राज की॥
तुलसी बिलोकि कपि भालु किलकत,
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।
राम रुख निरखि हरषे हिय हनुमान,
मानो खेलवार खोली सीस ताज बाज की॥*

* हरिहरप्रसाद कृत कवितावली में इस प्रकार है—
राम रुख निरखि हरष्यो हिय हनूमान,
मानो खेलवार खोल सीस ताज बाज की॥

अर्थ—रावण रथ के लिए गुस्सा हुआ। उसने बाने-वाले वीरों को बुलाया जो युद्ध के सब समाज को संयुक्त करने की रीति को जानते हैं (अर्थात् व्यूह इत्यादि रचकर लड़ना जानते हैं)। चतुरङ्ग सेना बढ़ चली और जल्दी से निशान बजने लगे, रावण की सेना सराहने योग्य थी। उसे देखकर बन्दर और भालु किलकारी मारने लगे और ऐसे आगे बढ़े जैसे कंगाल अच्छे भोजनों की थाली को देखकर बढ़ता है। रामचन्द्र के रुख़ को देखकर हनुमान्‌जी प्रसन्न होकर इस भाँति झपटे जैसे शिकार के लिए बाज़ का सिर खोल दिया गया हो (बाज़ का सिर और आँखें कपड़े से ढकी रहती हैं और जब शिकार होता है तो खोलकर उसे दिखा देते हैं तो वह उस पर झपटता है)।

[११५]

साजि कै सनाह गजगाह स उछाह* दल,
महाबली धाये बीर यातुधान धीर के।
इहाँ भालु बंदर बिसाल मेरु मंदर से,
लिये सैल साल तोरि नीरनिधि तीर के॥
तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहैं निज निज भट भीर के।
रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं,
समर सुमार सूर मारे रघुबीर के॥

अर्थ—बख़्तर अङ्ग में पहनकर और घोड़ों को साजकर बड़े उत्साह के साथ बड़े बलवान् धीर रावण के वीर धाये। दूसरी ओर मेरु और मन्दर से भालु और बन्दरों ने समुद्र के किनारे के पहाड़ और साल वृक्ष उखाड़ लिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि युद्ध में क्रोधित होकर दोनों तमककर और एक दूसरे को देखकर भिड़ गये। दोनों ओर के सेनापति अपनी-अपनी फ़ौज के योधाओं को सराहते थे। रुण्ड के झुण्ड झूम-झूमकर क्रोधित से अथवा अधजले से नाचते थे। रामचन्द्र के मारे वह शूर भी, जिनकी लड़ाई में बड़ी गिनती थी अर्थात् जो प्रख्यात योधा थे, नाच रहे थे।

शब्दार्थ—झुकरे = क्रोधित वा झुलसे।

* पाठान्तर—से उछाह।

सवैया

[११६]

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले ।
भारी गुमान जिन्हें मन में कबहूँ न भये रन में तनु ढीले ॥
तुलसी गज से लखि केहरि लौं*, झपटे पटके सब सूर सलीले ।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले ॥

अर्थ—छबीले छैल जिनको बड़ा गर्व था कि रण में कभी भी उनकी देह ढीली नहीं पड़ी है, छटक कर (तेज़ी से) मृग के समान तेज़ सुन्दर रंगवाले घोड़ों पर चढ़े। तुलसीदास कहते हैं कि जैसे हाथी को देखकर शेर झपटता है इसी तरह पानीवाले शूर पटके। भूमि पर पड़े-पड़े योधा कराह रहे थे जिनको हठीले हनुमान् ने भगाकर मारा था।

शब्दार्थ—तुरंग = घोड़े। कुरंग = मृग। केहरि = शेर। सलीले = पानीवाले अथवा लीला (खेल) ही में।

[११७]

सूर सजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं ॥
तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धौरा† धकानि सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं ॥

अर्थ—सजोइल अर्थात् होशियार होकर अथवा हथियार सजकर पल भर में अच्छे-अच्छे घोड़ों को सजाकर अच्छे-अच्छे सेल (बर्छी) धारण करके शूर बगमेल चले। वे भारी भुजावाले और भारी शरीरवाले बलवान्, विजयी और सब भाँति अच्छे थे। तुलसीदास कहते हैं कि जिनके चलने से पृथ्वी हिलती थी और सफ़ेद (बर्फ़वाले, ऊँचे) पहाड़ जिनके चलने के धक्के से हिलते थे उनमें से लाखों तीखे वीरों को लक्ष्मण ने दबाकर मार डाला जैसे दरिद्र को दानी नाश कर देता है।

---

* पाठान्तर—तुलसी लखि के हरि केहरि अथवा तुलसी लखि के करि केहरि।

† पाठान्तर—घोर।

[११८]

गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं* भट जे सुरदावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के॥

अर्थ—पहाड़ों को लेकर बन्दर और भालु चले सो ऐसा मालूम होता था कि मानों सावन के बादल घिरे हैं। हे तुलसी! उधर भारी-भारी झुण्ड इकट्ठा हुए और बड़े-बड़े भट सुरों को डरानेवाले (रावण के) झपटे यानी आगे बढ़े। बड़े विरदवाले एक दूसरे से उलझ गये (भिड़ गये) और बैर बढ़ानेवाले योधा हठ से न टले। अथवा हठि-बैर-बढ़ावन (ज़बरदस्ती बैर बढ़ानेवाले रावण) के जो विरदवाले वीर थे वह खेत में अड़ गए और न हटे। चढ़ा उपरी रण में मार-मार मची, रामचन्द्र और रावण दोनों के वीर भले थे अथवा रण में चढ़ा ऊपरी अर्थात् बारी-बारी से राम और रावण के भले (अच्छे) वीरों में मार-मार मची।

[११९]

सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इततेँ तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के॥
तुलसी करि केहरि नाद भिरे, भट खग्ग† खगे खपुवा खरके।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंड सों मुंड परे झरके॥

अर्थ—वीर राक्षस लोग बाण तोमर सेल (साँग) फेंककर मारते थे। इधर से (रामचन्द्र की ओर से) पेड़ तमाल और बड़े-बड़े पहाड़ों के टुकड़े फेंके जाते थे। हरि का नाम लेकर अथवा केहरि (सिंह) कैसा नाद (गरज) करके वीरों के झुण्ड भिड़े अथवा भट खग्ग (खड्ग, तलवार) से खगे (मारे गये) और कायर लोग भागे। (राक्षस हरि को वैरी मानकर मारने के लिए नाम लेते थे और बंदर अपना मालिक जान कर) नख और दाँतों से भुजाओं को काट डालते थे और धड़ से सिर अलग हो होकर गिर रहे थे।

शब्दार्थ—खग्ग = तलवार। खगे = खँग गये, अड़ गये अथवा मारे गये। खपुवा = कायर। खरके = खिसके।

---

* पाठान्तर—झपटे।

† पाठान्तर—खड्ग।

[१२०]

रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै, मृगराज के साज लरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै?।
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै॥

अर्थ—(हनुमान्) राक्षसों की मस्त-हाथी-रूपी घटा को नाश कर रहे थे और शेर की तरह लड़ते थे। झपटते थे और करोड़ों वीर राक्षसों को पृथ्वी पर दे मारते थे। रामचन्द्र की सौगन्द खा-खाकर गरजते थे। तुलसीदास कहते हैं कि दूसरी ओर से रावण बढ़ाता था। (यह देख) वीरों को होश न रहा। कोई किसी को न सँभालता था। बिरुदैत (बिरुदवाले) हनुमान्जी रण में बिरुझे अर्थात् बिगड़े और काल को भी काल से दिखाई देने लगे।

[१२१]

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाये।
ते रनरोर कपीस-किसोर, बड़े बरजोर परे फंग* पाये॥
लूम लपेटि अकास निहारिकै, हाँकि हठी हनुमान चलाये।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आये॥

अर्थ—जो राक्षस बड़े बली देखने में कराल (डरावने) थे, जिनके देखते ही मानो काल ग्रस लेता था या जिनको काल भी न खाता था, अथवा जिनको काल भी विकराल देखता था कि खा न जाय, उन लड़ाके तेज़ बलवानों को हनुमान् ने फँसाया अथवा अपने बस में पड़ा पाया। उनको पूँछ में लपेटकर आकाश की ओर देखकर हठी हनुमान् ने फेंक दिया। उनके बदन सूख गये, वह आकाश की ओर चले गये और हवा के चक्कर में फँसकर फिर पृथ्वी पर न आये।

शब्दार्थ—फंग = फंदा।

[१२२]

जो दससीस महीधर-ईस को बीस भुज
लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं

* पाठान्तर—फल।

वीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत* जासु पँवारो।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो॥

अर्थ—जिस रावण ने कैलास पर्वत को बीस भुजाओं पर रखकर खेल समझा, जिसका भारी साहस सुनकर लोकपाल और दिक्पाल, देव और दानव सबही सहम (डर) जाते थे, जो बड़ा बाँका वीर और बली था, जिसका नाम अब तक जग गाता है, सो हनुमान् की मुष्टिका मारने से ऐसा गिर गया जैसे पर्वतों का राजा वज्र का मारा हुआ।

शब्दार्थ—पँवारो = लम्बी कहानी।

[१२३]

दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम देखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं॥

अर्थ—पहाड़ी क़िलों से भी ज़्यादह कठिन अथवा क़िलों से कठिन और पहाड़ों से भी भारी जिसकी भुजाएँ हैं, जो लाखों को कवच-स्वरूप हैं, जिनका तेज तीक्ष्ण है, शूर-समाज जिन्हें गाज (वज्र) समान जानता है, उन बाँके वीरों को हठी हनुमान् ने भगा-भगाकर मारा। नाम लेकर श्रीरामजी लक्ष्मणजी को दिखाते हैं कि हनुमान् के मारे बहुत से घाय (घाव) लगे हुए घायल घूम रहे हैं।

घनाक्षरी

[१२४]

हाथिन सों हाथी मारे, घोरे घोरे सों सँहारे,
रथनि सों रथ, बिदरनि बलवान की।
[illegible] चोट चरन चकोट चाहैं,
[illegible]नी फौजें भहरानी जातुधान की॥
[illegible]क-सराहना करत राम,
[illegible]नी सराहैं रीति साहेब सुजान की।

लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ लखन ! लरनि हनुमान की ॥

अर्थ—हाथियों से हाथी और घोड़ों से घोड़े, रथों से रथ लड़ाकर नष्ट किये, बलवान् (हनुमान्) की ऐसी विदरन (नाश करने की क्रिया) है। तेज चपेटों की चोट से और लातों के प्रहार से घबड़ाई हुई राक्षसों की फ़ौजें भागने लगीं। रामजी बारम्बार अपने सेवक की सराहना करते हैं। तुलसीदास अपने सुजान साहब (रामचन्द्रजी) की रीति की सराहना करते हैं। लम्बी पूँछ से लपेट-लपेटकर वीरों को पटक रहा है, हे लक्ष्मण ! हनुमान् की लड़ाई को देखो।

[१२५]

दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे, एक
मगन मही में, एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं ॥
तुलसी लखत राम, रावन बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बानइत, बीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बातजात हैं ॥

अर्थ—झपटकर किसी को दाब देता है, किसी को समुद्र में डुबो देता है, एक पृथ्वी ही पर पड़ा है, दूसरा आसमान में उड़ रहा है। किसी को हाथ पकड़कर दे मारता है। किसी का पैर उखाड़ डालता है। किसी का कपड़ा फाड़ डालता है अथवा किसी को चीड़ फाड़ डालता है। किसी के कसकर लात मारता है वा लात से मींज डालता है। तुलसीदास कहते हैं कि (हनुमान् की) लक्ष्मण, राम, रावण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चण्डी सबके सब सराहना करते हैं। बड़े-बड़े बाँके बानेवाले बलवान् वीर राक्षसों के सेनापतियों को हनुमान् ने मार डाला।

[१२६]

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाये जातुधान हनुमान लियो घेरि कै

महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट
जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै ॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
'कहैं तुलसीस राखि राम की सौं' टेरि कै ।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥

अर्थ—बड़े तेजवाले बली (बलवान्) भुजावाले वीरों ने (राक्षसों ने) हनुमान् को दौड़ कर घेर लिया । बड़े बल के ढेर हनुमान् ने भुजाओं से और पूँछ घुमा-घुमा-कर योधाओं को जहाँ-तहाँ पटक दिया और वह शेर की तरह गरजने लगा । लात मारता था, देह तोड़ डालता था जिससे राक्षस हाहा खाते हुए भागे जाते थे और पुकार-पुकार कर कहते थे कि हे तुलसीस, (हनुमान्) तुझे राम की क़सम है, हमें रख ले । ठहर-ठहर की पुकार पड़ी थी परन्तु कहर सा पड़ गया था अथवा ठौर-ठौर पर (कहीं कहीं) कराह उठते थे । हर और सिद्ध लोग देख-देखकर हहर-हहर अर्थात् ठट्ठा मारकर हँसते थे ।

[१२७]

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अजहूँ* लसत लंक लाहसी ।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाहसी ॥
कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुम्भऊकरन आइ रह्यो पाइ आहसी ।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो
बीर रघुबीर को समीर-सूनु साहसी ॥

अर्थ—जिसकी बाँकी वीरता को सुनकर शूर सहम जाते हैं, जिसकी आँच से जली आज भी लंका को लाह सी लगी दिखाई पड़ती है, वही बलवान् बाँके हनुमान् राक्षसों की सेना की थाह सी लेते हुए फिर रहे हैं । अकम्पन काँप

* पाठान्तर—अबहूँ ।

रहा है। अतिकाय का शरीर सूख गया। कुम्भकर्ण भी आकर आह भी करके रह गया। गजराज को देख जैसे शेर गरजकर दौड़ता है वैसे ही कुम्भकर्ण को देखकर रामचन्द्र का साहसी वीर हनुमान् दौड़ा।

झूलना

[१२८]

मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल-
स्रृंग-बिद्दरनि जनु बज्रटाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठ
सेष संकुचित, संकित पिनाकी॥
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर* सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥

अर्थ—मस्त योधाओं के मुकुट, रावण, के साहस रूपी पहाड़ की चोटी को तोड़ने के लिए हनुमान् ऐसे हैं जैसे वज्र की टाँकी (कुल्हाड़ी)। उनकी ललकार सुनकर पृथ्वी को दाँतों से दबाकर दिग्गज चिंघाड़ने लगे, कमठ और शेष सकुच गये और महादेव भी शंका करने लगे। पृथ्वी के मेरु हिलने लगे, सब समुद्र उछलने लगे। ब्रह्मा बहिरे होकर चारों ओर झाँकने लगे। राक्षसों के घर औरतों के गर्भपात हो गये जैसे ही बाँके हनुमान् की हाँक (आवाज़) अथवा उनकी बाँकी ललकार उन्होंने सुनी।

[१२९]

कौन की हाँक पर चौंक चंडीस बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरँग† हाँके।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से,
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥

---

* पाठान्तर—सागर।

† पाठान्तर—तुरग।

दास तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत
किन कहाँ हनुमान से बीर बाँके॥

अर्थ—किसकी आवाज़ पर चण्डीश (शिव) विधि (ब्रह्मा) चौंक पड़े थे और चण्डकर (सूर्य) ने थककर फिर घोड़ों को चलाया था? किसके बल को देखकर भीम से योधाओं ने आँखें बन्द कर ली थीं? वह कौन तुलसीदास के प्रभु (रामचन्द्र) का सेवक है जिसका विरुद (यश) पण्डित लोग वर्णन करते हैं? किस विरद रखनेवाले वीर की बड़े बड़े वैरियों पर धाँक (रौब) है? पृथ्वी, आकाश और पाताल में हनुमान् से वीर कहाँ हैं? कोई कहता क्यों नहीं।

[१३०]

जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा निरखि
मृगराज* जनु गिरि तें टूट्यौ।
बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि,
निघटि गये सुभट, सत सब को छूट्यौ॥
दास तुलसी परत धरनि, धरकत, झुकत
हाट सी उठति जम्बुकनि लूट्यौ।
धीर रघुवीर को बीर रन-बाँकुरो
हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यौ॥

अर्थ—राक्षसों के समूह को मस्त-हाथी-रूपी घटा सी (आती) देखकर हनुमान् शेर की तरह पर्वत से (उसपर) झपटा। बेढब चपेटों की चोट से और पैर पकड़-पकड़कर ज़मीन पर पटक देने से सुभट (योधा) निघटि गये (निःशेष हो गए अथवा बेदिल हो गये, हिम्मत हार गये)। और सबका सत्त छूट गया। तुलसीदास कहते हैं कि (हनुमान् के डर से योधा) ज़मीन पर गिर पड़ते थे अथवा (हनुमान् के मारे) पृथ्वी पर गिर रहे थे और धड़कते थे अथवा वीर गिर रहे थे और उनके गिरने से पृथ्वी धड़क (हिल) रही थी। (हनुमान् के) झुकत

* पाठान्तर—गजराज।

कूदत कबंध के कदंब बंबसी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के।
तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के॥

अर्थ—जिनके अंग अंग दले हुए हैं, जो किंशुक (पलास) के फूल कैसे लाल लाल खिले हैं वह रावण के लाखों योधा लक्ष्मण के मारे हुए हैं। जो मारे और पछाड़े हुए हैं, जिनकी भुजाएँ उखड़ी हुई हैं और जो टुकड़े-टुकड़े करके नष्ट किये हुए हैं वे हनुमान के बिदारे हुए हैं। जो धड़ों के समूह उछल रहे हैं, बम्ब सी कर रहे हैं, वे रामचन्द्र जी के बाणों की तेज़ी को दिखा रहे हैं अर्थात् श्री रामचंद्र जी के मारे हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्मा, लोकपाल, महादेव, देवता लोग विमानों पर चढ़े श्मशान के तमाशे को (लड़ाई में) देख रहे हैं।

[१३३]

लोथिन से लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन्ह गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित सरित* घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीर चारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक-बालक† कोलाहल करत हैं॥

अर्थ—लोथों से जहाँ तहाँ लोहू की नदियाँ बह चलीं, मानों पहाड़ों से गेरू के झरना झर रहे हैं। इस लोहू की घोर नदी के भारी-भारी हाथी करारे हैं, और घोड़ा मानो किनारे के पेड़ हैं जो समूल उखड़कर गिर रहे हैं। बड़े बड़े योधाओं के शरीर मानों भारी भारी जलजन्तु हैं। शूरों के मन में उत्साह है और कायर डर रहे हैं। फेरु (सियार) पेट फाड़-फाड़ कर खा रहे हैं, कौआ और कंक (गिद्ध) के बालक शोर मचा रहे हैं।

---

* पाठान्तर—सहित, भरत।

† पाठान्तर—बकुल।

[१३४]

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही* बाँधे,
मूँड़† के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनीं तापसी सी
तीर-तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा‡ खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ जोरि जोरि कै॥

अर्थ—आँतों की थैली की झोरी कन्धे पर डाले, आँतों की सेल्ही बाँधे, सिरों का कमण्डल लिये, खोदकर खोपड़ी का बना खप्पर लिये योगिनियाँ इकट्ठी होकर, झुण्ड बाँधकर, तपसी की भाँति उस युद्धरूपी नदी में नहाकर किनारे किनारे बैठी हैं। गूदे को लोहू से सान-सानकर सतुआ की तरह खाती हैं। कोई-कोई प्रेत (झुटंग) (एक प्रकार की योगिनी) घोर-घोर कर पीती है। तुलसीदास कहते हैं कि भूतनाथ (भैरव) बैताल और भूतों को साथ लिये हाथ मिला-मिलाकर अथवा रामचन्द्र की ओर देख-देखकर हाथ जोड़ जोड़कर हँसते थे।

सवैया

[१३५]

राम सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींटि-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछवि छूटी।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चली बर बीर-बहूटी॥

---

* पाठान्तर—थैली।
† पाठान्तर—मुंड।
‡ पाठान्तर—गुदा।

अर्थ—श्रीराम के धनुष से तीर चले जो हाड़ों में से निकल-निकल गये, शरीर में न रहे। धीर रावण ने पीर को कुछ न गिना। रुधिर देखकर योगिनियाँ खप्पर ले लेकर इकट्ठा हो गईं। रुधिर के छींटे प्रभु के ख़ूबसूरत बदन पर पड़े हुए महाछवि दे रहे थे, मानो मरकत मणि के पर्वत पर चारों ओर से अच्छी बीरबहूटियाँ फैल रही हैं।

घनाक्षरी

[१३६]

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने अपने पुरुषारथ न ढील की।
घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास दील* की॥
भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस
कहैं "मैं बिभीषन की कछु न सबील की।"
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील† की॥

अर्थ—मानी मेघनाद से बड़े-बड़े वीरों को साथ लेकर (लक्ष्मण भिड़े) अथवा ललकारके बड़े-बड़े वीर मेघनाद से भिड़ गये। और किसी ने भी अपने-अपने बल में कमी नहीं की। लक्ष्मणजी को घायल सुनकर रामचन्द्र को शोक हुआ और उनके डील (शरीर) वा दील (दिल) की आशा जाती रही। भाई का कुछ मोह न था, न सीता का शोच। वह यही कहते थे कि मैंने विभीषण का कुछ प्रबंध न किया। जो वचन दिया है और विभीषण की बाँह पकड़ी है उसी का शोच था—अपने विरद की सँभाल में पड़े थे। राम से कहाँ साहब हैं, उनके शील की बलाय लूँ।

नोट—कहीं कहीं इस कवित्त को सवैया नं० १३७ अर्थात् कानन वास इत्यादि के पीछे लिखा है। और उसको १३५ के बाद।

* पाठान्तर—डील की।

† पाठान्तर—भील की।

सवैया

[१३७]

कानन बास, दसानन सो रिपु, आनन-श्री ससि जीति लियो है ।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है ॥
तीय हरी, रन बंधु पर्यो, पै भर्यो सरनागत-सोच हियो है ।
बाँह पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है ? ॥

अर्थ—वन के रहते हुए और रावण का सा वैरी होते भी जिसके मुख की श्री (कान्ति) ने चन्द्रमा को भी जीत लिया है; महाबली बालि को मारकर सुग्रीव को और विभीषण को जिसने राजा किया है; स्त्री हरी गई, भाई भी मूर्च्छित हुआ परन्तु शरणागत का सोच जिसके मन में भरा है; ऐसा रामचन्द्र सा बाँह की आड़ देनेवाला, दया करनेवाला, उदार वीर पृथ्वी पर और कौन उत्पन्न हुआ अथवा दूसरा है ?

[१३८]

लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि* काल, बिलंब न लायो ।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो ॥
तीखी† तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो ।
मानो प्रतच्छ‡ परब्बत की§ नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥

अर्थ—हनुमान् ने बड़े पर्वत को उखाड़ लिया और उसी क्षण चल दिया, कुछ देर न की। हनुमान् ने (उस समय) वायु का, मन का और गरुड़ का भी वेग जीत लिया। तुलसीदास कहते हैं कि वे उस समय की अच्छी शीघ्रता की उपमा कहते परन्तु उपमा कोई भी ध्यान में न आई, मानो पहाड़ों की प्रत्यक्ष लीक सी आकाश में दिखाई पड़ी, हनुमान् ऐसे वेग दौड़े ।

---

* पाठान्तर—त्यहि ।

† पाठान्तर—तीखो ।

‡ पाठान्तर—प्रतक्षण पर्वत की नभ ।

§ कीन्ह भलीक ।

घनाक्षरी

[१३९]

चल्यो हनुमान सुनि जातुधान कालनेमि
पठयो सो मुनि भयो, पायो फल छलि के।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥
बेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु*
सील सिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥

अर्थ—हनुमान् चला (संजीवनी लेकर) यह ख़बर सुनकर रावण ने कालनेमि को भेजा। वह (कपटी) मुनि बन गया। परन्तु उसने छल करने का फल पाया। सहज ही बहुत योजन का पहाड़ उखाड़कर सब रखवालों और योधाओं को हनुमान् ने मार डाला (नष्ट कर दिया)। हनुमान् के वेग, बल और साहस की प्रशंसा श्री रामचन्द्रजी करने लगे कि भरत की कुशल को और पहाड़ को जाकर ले आये। शील के समुद्र रामजी मानो हनुमान् के हाथ बिक गये और उन्होंने भले प्रकार हनुमान् का बहुत कुछ भला माना।

[१४०]

बापु दियो कानन भो आनन सुभानन सो,
बैरि भो दसानन सो तीय को हरन भो।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,
बिभीषन नेवाजि†, सेत सागर तरन भो॥
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिये,
घायल लखन बीर बानर बरन भो।

---

* पाठान्तर—जन।
† पाठान्तर—निवाजि।

ऐसे सोक में तिलोक* कै बिसोक पलही में,
सबही को तुलसी को साहिब सरन भो ॥

अर्थ—आप ने बनवास दिया परन्तु मुख शुभानन (चन्द्र) का सा रहा, यद्यपि रावण सा वैरी हुआ और स्त्री हरी गई। बली बालि के बल को नष्ट करके, सुग्रीव की रक्षा करके और विभीषण पर कृपा करके सेतु (पुल) द्वारा सागर को पार किया। बड़े घोर संग्राम को देखकर शिव और ब्रह्मा मन में हारे और वीर लक्ष्मण घायल होकर बन्दरों के से (रुधिर से सनकर लाल) वर्णवाला हो गया। ऐसे शोक में तीनों लोकों को शोक-रहित करके (लक्ष्मण को जिलाकर) पल ही में सबके और तुलसीदास के साहब (मालिक रामचंद्र) के शरण (हनुमान्) गये। अथवा सब त्रिलोक के ही (हृदय) को पल में शोक से रहित करके रामचन्द्र सरन (रणसहित) हुए अर्थात् स्वयं लड़ने चले। अथवा रामचंद्रजी रावण को मारकर सबको शरण देनेवाले हुए।

सवैया

[१४१]

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूषन-बंस-बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे ॥
देव निसान बजावत गावत, सावँत गो†, मन भावत भो रे!
नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि "हारे! हहा भइया! हो रे‡" ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी ने कुम्भकर्ण को लड़ाई में मारा और रावण के सिर तोड़-तोड़कर मारा। पूषण (सूर्य्य) वंश के अलंकार श्रीराम के सूर्य्य कैसे प्रताप के तेज के आगे अरिरूपी ओले गल गये। देवता लोग निशान बजाते गाते हैं कि हमारा सामन्तपन गया (हम स्वतंत्र हुए) अथवा धावत गो (बन्दीख़ाने) से छूटकर भागे और कहने लगे कि मन भावत हुआ (मन का चाहा हो गया)। बन्दर और भालु सभी नाचते थे। तुलसीदास कहते हैं कि सब 'वाह भाई!' कहते-कहते हार गये अर्थात् थक गये अथवा एक दूसरे को "हो रे हो रे" कहकर बुलाय और हाहा-हाहा हँसकर आहा रे-आहा रे कह-कहकर सब वानर भालु नाचने लगे।

---

* पाठान्तर—त्रिलोक।

† पाठान्तर—धावत गो।

‡ पाठान्तर—हहा, भय होरे।

घनाक्षरी

[१४२]

मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं।
नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि,
पुलक सरीर, हिये हेतु, हरषतु हैं॥
बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराजैं,
देखत बिषाद मिटै मोद करषतु हैं।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
तुलसी निहाल कै कै दिये सरषतु हैं॥

अर्थ—रण में राक्षस मारे, और रावण को कुल समेत और सेना सहित नष्ट किया। देवता लोग अनुकूल होकर फूल बरसाते हैं। नाग, मनुष्य, किन्नर, ब्रह्मा, महादेव, विष्णु सब देखकर पुलकायमान शरीर होकर मन में कारण सोचकर हँसते हैं। सीताजी कृपानिधान रामचन्द्र के बाईं ओर विराज रही हैं जिनके देखते ही दुःख नाश होकर हर्ष उमगने लगता है। लोकपालों को आज्ञा मिली और सब अपने-अपने लोक को गये। तुलसीदास कहते हैं कि सबको निहाल करके सर्टी-फ़िकट राम ने दिये।

इति लंकाकाण्ड

सवैया

[१४३]

बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे॥
राम सुभाव सुने तुलसी हुलसै अलसी, हमसे गल गाजे।
कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीब-नेवाज नेवाजे॥

अर्थ—बालि से वीर को मारकर सुग्रीव को जिसने राज पर बिठाया कि सब देवताओं ने प्रसन्न होकर बाजे बजायें। पल में रावण को रामचन्द्र ने मार डाला और लङ्का के राज पर विभीषण को बिठा दिया। रामचन्द्र के स्वभाव को तुलसीदास सुनकर प्रसन्न होता है कि हमसे आलसियों को गले लगाया अथवा ऐसे आलसी भी प्रसन्न होने पर बड़े बल (ज़ोर) से गाजे (गरजने लगे) अथवा तुलसीदास कहते हैं कि राम का स्वभाव सुनकर आलसी प्रसन्न हुए कि बिना परिश्रम ही तर जावेंगे। कायर कूर कपूतों की जो हद थे उन ग़रीबों को भी गरीबनिवाज ने निवाजा (अनुगृहीत किया)।

[१४४]

बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहिं तें सिर नावैं॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोबिद गावैं।
राम से बाम* भये तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं॥

अर्थ—जिस रावण के यहाँ डर से ब्रह्मा रोज़ वेद पढ़ते थे और महादेव नित्य पूजा कराने आते थे। सब दानव-देव दीन और दुखी होकर रोज़ दूर ही से सिर नवाते

---

* पाठान्तर—सबाम।

थे। ऐसे भी रावण का भाग्य भाग गया (उसे छोड़ गया) कि जिसकी प्रभुता को कवि और पण्डित सदा गाते रहते थे। सीता सहित रामचन्द्र के बाये' (टेढ़े) होने से उसका सब सुख और सम्पत्ति वाम हो गई। अथवा रामचन्द्र के वाम (ख़िलाफ़) होने से उस वाम (टेढ़े) को सब सम्पदा उलटी हो गई।

[१४५]

बेद-बिरुद्ध, मही, मुनि, साधु ससोक किये, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो॥
सेवक-छोह ते छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लात न मारो॥

अर्थ—जिसने वेद के विरुद्ध किया, पृथ्वी, मुनि और साधु को शोक-सहित किया और सुरलोक को उजाड़ दिया। और का क्या कहना है, जब रामचन्द्र की स्त्री को भी हर ले गया तब भी कृपा करनेवाले श्रीरामचन्द्र ने क्रोध न किया। परन्तु दास के कारण क्षमा को छोड़ दिया। तुलसीदास कहते हैं कि हे राम! आपका स्वभाव खूब पहचाना है। तब तक रावण के अहङ्कार को नष्ट न किया जब तक उसने विभीषण को लात नहीं मारी।

[१४६]

सोकसमुद्र निमज्जत काढ़ि कपीश कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो॥॥
नाम लिये अपनाइ लियो, तुलसी सों कहै जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीब-नेवाज न दूसर ऐसो॥

अर्थ—शोक-समुद्र में डूबते सुग्रीव को निकालकर जैसा किया वैसा संसार जानता है। नीच निशाचर और वैरी के भाई विभीषण को कैसा इन्द्र का सा कर दिया। तुलसीदास सा और अनैसा (ख़राब) संसार में कौन है, नाम लेने से उसे भी अपना लिया। आरत के दुःख को हरनेवाले राम हैं, उनसा गरीबनेवाज दूसरा नहीं है।

॥ पाठान्तर—सैसो, ऐसो।

[१४७]

मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो*, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो ॥
कोसलपाल बिना तुलसी सरनागत पाल कृपालु न दूजो।
कूर कुजाति कुपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो ॥

अर्थ—कपि और भालु को पवित्र और मित्र बनाया और ऐसा पाला जैसे कोई अपने पुत्र को भी नहीं पालता है। विभीषण सज्जनों की मर्य्यादा हो गया जो आज तक अपने भाई की स्त्री से विलास करता है। तुलसीदास कहते हैं कि बिना कोसल के राजा रामचन्द्र के और दूसरा शरणागत का पालनेवाला नहीं है। जो मनुष्य पूजा करै वह चाहे जैसा क्रूर कुजाति कपूत और पापी क्यों न हो, उसकी भी सब सँभल जाती है।

शब्दार्थ—तनूजो = तन से उत्पन्न, पुत्र।

[१४८]

तीय-सिरोमनि सीय तजी ज्यहि पावक की कलुषाई दही है
धर्म-धुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है ॥
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है ॥

अर्थ—स्त्रियों में श्रेष्ठ सीताजी को त्याग दिया, जिसके पाप को अग्नि ने जला दिया था अर्थात् जिसको अग्नि ने पवित्र कर दिया था, अथवा जिसने अग्नि की कालौंच को हर लिया था अर्थात् अग्नि सबके पाप हरती है उसकी कालौंच को भी सीताजी ने प्रवेश करके हर लिया था। धर्म-धुरन्धर भाई को छोड़ दिया। नगर-वासियों को बुलाकर विधि ने कही अर्थात् सीख दी अथवा पुरलोगन (अयोध्यावासियों) को छोड़ दिया और विधि को बुलाकर कहा अर्थात् वर्णन किया (रामचरितमानस का उत्तरकांड देखो—यह आचरन बस्य मैं भाई), कपि (सुग्रीव) और निसाचर (विभीषण) की करनी को न सुना न देखा न विचारा। राम ने सदा शरणागत की अनख देनेवाली बातों और बुराइयों को भी सहा है।

---

* पाठान्तर—भो।

[१४९]

अपराध अगाध भये* जन तें अपने उर आनत नाहिंन जू।
गनिका-गज-गीध-अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न† जू॥
लिये बारक नाम सुधाम‡ दियो जेहि धाम महामुनि जाहिं न जू।
तुलसी भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू॥

अर्थ—सेवक से भारी अपराध पड़ने पर भी मन में नहीं लाते हैं। गणिका, गज, गीध और अजामिल के पापों के ढेर को गिनकर भी उनकी सराहना की अथवा उनके ऐसे पाप जो गिनते नहीं सिराते (समाप्त) होते अर्थात् अनगिनतिन पापों को देखकर भी एक बेर नाम लेने से उनको वह धाम दिया जहाँ मुनि भी नहीं पहुँचते। तुलसीदास कहते हैं कि दीनदयालु रघुनाथ का भजन कर, जो अनाथ को सदा दाहिने रहते हैं।

[१५०]

प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ॥
सुर-साखी दै राखी है पांडुवधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
तुलसी भजु सोच-विमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ ?॥

अर्थ—प्रभु ने प्रह्लाद की बात को सच्चा किया, खम्भ में से नृसिंहरूप प्रगट हुए। जब मगर ने गजराज को ग्रसा तो क्षण भर की भी देर न की, तत्काल (फ़ौरन्) कृपा की। जब द्रौपदी का वस्त्र लूटा जाता था, जहाँ करोड़ों राजा थे, तो आपने उसकी लज्जा रक्खी, जिसके देवता साक्षी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शोच के छुड़ानेवाले राम की शरण जा, उन्होंने सेवक की बात को कहाँ नहीं रक्खा।

[१५१]

नरनारि उघारि सभा महँ होत दियो पट, सोच हर्‌यो मन को।
प्रहलाद-बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारन को॥

---

* पाठान्तर—परें।

† पाठान्तर—सिराहि न।

‡ पाठान्तर—सो धाम।

जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि* भार सदा अपने पन को।
तुलसी तजि आन भरोस भजे भगवान भलो करिहैं जन को॥

अर्थ—द्रौपदी को सभा में नङ्गा होते देख बचा लिया और मन का सोच हरा। वह प्रह्लाद के दुःख को हरनेवाले, हाथी के तारनेवाले, अकारण (बिना कारण) ही जो सबके मीत (मित्र) हैं, जो दीन-दयाल कहाते हैं वह सही है, वह अपने प्रण का सदा निर्वाह करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जो दूसरे की आस छोड़कर ऐसे भगवान् का भजन करता है उस अपने सेवक का भगवान् भला करेंगे।

[१५२]

ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट† मीत, पुनीत सुकीर्ति लही।
निज लोक दियो सबरी खग को, कपि थाप्यो सो मालुम है सबही॥
दससीस बिरोध सभीत बिभीषन भूप कियो जग लीक रही।
करुणानिधि को भजु रे तुलसी, रघुनाथ अनाथ के नाथ सही॥

अर्थ—अहल्या, गौतम-ऋषि की स्त्री, का उद्धार करके, शठ केवट को मित्र बनाया और अच्छा यश पाया। शवरी और जटायु (गीध) को अपना लोक दिया, सुग्रीव को राज्य दिया; सो सभी को मालूम है। रावण के वैर से डरे हुए विभीषण को राजा किया जिसका ज़िक्र संसार भर में है। तुलसीदास कहते हैं कि दया के समुद्र रामचन्द्र को भजो जो अनाथों के सच्चे नाथ हैं।

[१५३]

कौसिक बिप्रबधू मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माहैं।
बालि-दसानन-बन्धु कथा सुनि सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं॥
ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन-गाहैं।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं॥

अर्थ—कौशिक मुनि (विश्वामित्र), विप्रबधू (अहल्या) और जनक के सब शोचों को पल में नाश किया। बालि और रावण के भाइयों की कथा सुनकर वैरी भी साहिब (रामचन्द्र) के शील की सराहना करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि राम-

---

* पाठान्तर—त्यहि।

† पाठान्तर—केशव।

चन्द्र की कथा अनुपम है कि अगुणी भी गुण ग्रहण कर लेते हैं अथवा राम निर्गुणियों में भी गुण देखते हैं यह उनकी अनुपम बात है। आरत (दुखी), दीन और अनाथों पर राम अपने हाथों की छाया करते हैं अर्थात् उनकी रक्षा करते हैं।

[१५४]

तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहिकै बेंचनहारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहिब सेँतिहुँ खारे।
तुलसी तेहि सेवत कौन मरे ? रज तें लघु को करै मेरु तें भारे?।
स्वामी सुसील समर्थ सुजान सो तोसों तुही दसरत्थ दुलारे ॥

अर्थ—तेरे मोल लिये और मोल लेते हैं अथवा जिसे तुम मोल ले लेते हो वह औरों को ख़रीद सकता है, और सब मोल लेकर बेचनेवाले हैं। आकाश, पृथ्वी और पाताल में बहुत से राजा भरे हैं परन्तु क्रूर हैं और मुफ़्त में भी कड़ुवे हैं अथवा कुसाहिब हैं तिहुँ (वृथा) खार रखनेवाले हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनकी सेवा में कौन मर सकता है अर्थात् कोई नहीं। कौन कण से भी छोटे को मेरु से भी भारी करनेवाला है ? दशरथ के दुलारे ! तुझसा सुशील स्वामी समर्थ और सुजान तू ही है।

घनाक्षरी

[१५५]

जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो,
पाल्यो नाथ सद्य सो सो* भयो कामकाज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आये,
राखे अपनाइ†, सो सुभाव महाराज को॥
नाम तुलसी पै भोंड़े भाग‡, सो§ कहायो दास,
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
साहेब समर्थ दशरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तोसों तुही आपने की लाज को॥

---

* पाठान्तर—मद्य सो भयो।

† पाठान्तर—सनमानि।

‡ पाठान्तर—भाँग।

§ पाठान्तर—तें।

अर्थ—राक्षस (विभीषण), भालु (जाम्बवान), बन्दर (सुग्रीव), केवट, पक्षी (जटायु) को जो नाथ ! आपने पाला है सो मालूम होता है कि यह काम-काज (पालना) का आप को नशा सा हो गया है अथवा आपने जिसे पाला वह तुरन्त लायक़ हो गया। दुखी अनाथ दीन और पापी जो आपके शरण आये उनको आदर अथवा अपना करके रक्खा, यह महाराज का स्वभाव ही है। नाम तुलसी है और भाग्य का भोंड़ा हूँ परन्तु दास कहलाया हूँ, आपने ऐसे बड़े दग़ाबाज़ को भी (सेवा में) स्वीकार किया है। हे दशरथ के दयालु लाल ! आप सा समर्थ मालिक दूसरा नहीं है जो अपने दास की लाज रखता हो।

[१५६]

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि
सखा किये, महाराज हौं न काहू काम को।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आये,
कियो अंगीकार नाथ एते* बड़े बाम को॥
राय दसरत्थ के समर्थ तेरे नाम लिये,
तुलसी से कूर को कहत जग राम को।
आपने नेवाजे की तौ लाज महाराज को,
सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को॥

अर्थ—बड़े बलवान् बालि को मारकर कायर सुग्रीव को, जो किसी काम का नहीं था, महाराज ने अपना सखा बनाया अथवा जिस सुग्रीव को आपने सखा बनाया था वह भी किसी काम का नहीं था और मैं भी किसी काम का नहीं हूँ। भाई का घात करानेवाले पापी राक्षस को, ऐसे बड़े पापी को, भी शरण में आने पर नाथ ने अङ्गीकार किया। हे दशरथ के समर्थ लाल ! तेरा नाम लेने से तुलसी से क्रूर को जगत् (संसार भर) राम का बताता है। अपने निवाजे की अर्थात् जिस पर एक बार कृपा की उसकी महाराज को लाज है। आपका स्वभाव समझकर गुलाम का मन प्रसन्न है।

[१५७]

रूप-सील-सिंधु, गुनसिंधु, बंधु दीन को,
दयानिधान, जान-मनि, बीर बाहु-बोल को।

* पाठान्तर—ऐसे।

श्राद्ध कियो गीध को, सराहे फल सबरी के,
सिला-साप-समन, निबाह्यो नेह कोल को ॥
तुलसी उराउ होत राम को सुभाव सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिन मोल को?
ऐसेहू सुसाहेब सों जाको अनुराग न, सो
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को ॥

अर्थ—आप रूप, शील और गुण के समुद्र हो, दीन के बन्धु हो, दयानिधान हो, जाननेवालों में श्रेष्ठ हो, वीर हो और शरणागत-पाल हो। गीध (जटायु) का आपने श्राद्ध किया, शबरी के फल की प्रशंसा की, शिला (अहिल्या) के शाप की शान्ति की और कोल (निषाद) के प्रेम को निबाहा। तुलसीदास ! राम के स्वभाव को सुनकर रोमाञ्च होता है। उस पर कौन न बलि जावे और कौन बिना मोल न बिकावै। ऐसे साहेब से भी जिसका प्रेम नहीं है वह बड़ा अभागा है। उसका मन लोभ के वश से चञ्चल हो रहा है और उसका भाग उसे छोड़कर भाग गया है।

[१५८]

सूर सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो ॥
केवट, पषान, जातुधान, कपि, भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धम-धूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ? ॥

अर्थ—आप बलवानों के सिरताज और महाराजों के महाराज हैं, आपका नाम लेते ही ऊसर भी अच्छा खेत हो जाता है। दुनिया में रामचन्द्र सा सुजान साहिब कहाँ है कि जिस कृपालु के सुमिरन से खूसट भी हंस हो जाता है। केवट, पत्थर, राक्षस, बन्दर, रीछ सब तारे और तुलसी से धमधूसर धींग (ऊटपटाँग मनुष्य) को भी

अपनाया। बोल का अटल, बाँह का अचल, दीन का बन्धु, दुबले (दरिद्री) को देनेवाला, हे दयानिधान! तुम सा दूसरा कौन है?

[१५९]

कीबे को बिसोक लोक लोकपालहू तें सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।
पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम,
बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बाल को॥
नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को?।
तुलसी की बार बड़ी* ढील होति, सीलसिन्धु!
बिगरी सुधारिबे† को दूसरो दयालु को?॥

अर्थ—सब संसार को शोक-रहित करने को लोकपालों में से भी कोई बन्दरों भालुओं का चरवाहा न हुआ अथवा लोकपालों से लोक को शोकरहित करने के लिए कोई बंदर भालुओं को बचानेवाला कहीं नहीं हुआ। ख़याल करते ही अर्थात् स्मरण मात्र से रामचन्द्र ने पवि (वज्र) का पहाड़ उस बेचारे विभीषण को किया जो बालू का सा घरौंधा था यानी क्षण में उस बालू की दीवार की तरह नष्ट हो जाता जो लड़के खेलने के लिए बनाते हैं और बिगाड़ डालते हैं। राम की आड़ लेते ही खोटे खल भी निखोटे (बिना ऐब) मनुष्य हो जाते हैं। ऐसा कौन है जो बिना चोट (डर वा श्रम) के नाम लेते ही मोट (बहुत सा धन) पाकर निहाल न हो? तुलसीदास की बेर बड़ी ढील हो रही है, हे शील के समुद्र! बिगड़ी की सुधारनेवाला तुम्हारे बिना कौन है?

[१६०]

नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
छलिन की छोंड़ी सी निगोड़ी छोटी जाति पाँति,
कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील‡ की॥

---

* पाठान्तर—बलि।

† पाठान्तर—सम्हारिबे को।

‡ पाठान्तर—भाल की।

तुलसीओ तारिबो बिसारिबो न, अन्त मोहिं,
नीके हैं प्रतीति रावरे सुभाव सील की।
देव तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन की,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की॥

अर्थ—पूत का पवित्र नाम लेने से पातकी अजामिल को पापरहित किया और हाथी का कष्ट "प्रभु पाहि" कहते ही नष्ट कर दिया। जाति-पाँति की छोटी, निगोड़ी, छलियों की लड़की भील की स्त्री (शवरी) को अपने में लीन कर लिया। "तुलसी को भी तारना है" यह भूलिए मत। अन्त में मुझे भी अच्छी तरह आपके स्वभाव और शील पर भरोसा है। देव ! आप तो दया के घर हैं। दीनों की दादि (फ़रियाद) देते हैं (इन्साफ़ कर देते हैं)। यह मेरा ही दुर्भाग्य है कि मेरी बार ढील डाल दी है।

[१६१]

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाये नाये माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराव,
रिनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू॥
तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी* माटी मगहू की मृग मद साथ जू।
बात चले बात को न मानियो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझिकै नेवाजो रघुनाथ जू ?॥

अर्थ—आगे पड़े पत्थर (अहिल्या) को, किरात को, कोलनी (शवरी) को, कपीश (सुग्रीव) को, राक्षस (विभीषण) को, कृपा करके माथ नाय (सिर नीचा करके अर्थात् सकुच सहित) अपनाया; अथवा ऊपर बताये हुए सबको अपनाया जिन्होंने माथा नवाया था अर्थात् जो आपकी शरण आये थे। सच्ची सेवकाई हनुमान की देखकर, हे सुजानों के श्रेष्ठ ! आप उनके क़र्ज़ी कहाये, उनके हाथ बिक गये। नाम की ओट लेते ही तुलसीदास से ऐबी भी भले हो जाते हैं; जैसे कस्तूरी के साथ में रास्ते की मिट्टी भी महँगी बिक जाती है। बात चलने पर कहता हूँ, बुरा न मानना; पर किसकी सेवा

* पाठान्तर—महँगी।

पर रीझि (प्रसन्न होकर) रघुनाथजी आपने किसको निवाजा (सब कुछ दिया) ?—अर्थात् खोटे और नीचों ही को न ? अथवा किसकी सेवा पर रीझि आपने अपनाया ?—अर्थात् आप बिना सेवा ही अपनाते हैं।

[१६२]

कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की।
कोल पसु* सबरी बिहंग भालु रातिचर,
रतिन के लालचिन प्रापति मनक की॥
कोटि-कला-कुसल कृपालु! नतपाल! बलि†,
बातहू कितिक तिन तुलसी तनक की।
राय दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि!
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधि हू गनक की॥

अर्थ—विश्वामित्र की गति चलते ही अर्थात् राम के सङ्ग होते ही, पत्थर की अहिल्या पैरों के परस से, अर्थात् पैर के छू जाने मात्र से, और धनुष के टूटने से जनक की बात बन गई। कोल, पशु (मरीच), शबरी, पक्षी (जटायु), भालू (रीछ), राक्षस जो सदा काम के लोभी होते हैं उनको भी स्वर्ग प्राप्त हुआ अथवा रत्ती भर चाहनेवालों को मन भर मिल गया। हे कोटि कला में कुशल, हे कृपा की मूर्ति, हे शरणागत को पालनेवाले! तुलसीदास को क्यों नहीं पालते? ऐसे छोटे तिनके की क्या बात है अर्थात् यह क्या भारी काम है? हे राजा दशरथ के समर्थ सपूत राजमणि रामचन्द्र! तेरे देखने ही से ब्रह्मा जैसे गणित जाननेवाले की भी लिपि (लेख) अर्थात् प्रारब्ध मिट जाती है अर्थात् ब्रह्मा जो एक-एक कर्म गिनकर प्रारब्ध बनाता है ऐसे गणितज्ञ की करनी भी नष्ट हो जाती है।

[१६३]

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास‡ आप चलि गये हो सो सुनी मैं।

---

* पाठान्तर—भील।

† पाठान्तर—तन पालतन।

‡ पाठान्तर—बाप।

सेवक सराहे कपिनायक बिभीषन,
भरत सभा सादर सनेह सुर·धुनी में ॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल,
साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी में ।
दोष दुख दारिद दलैया दीनबंधु राम,
तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में ॥

अर्थ—मैंने तो सुना है कि आपने शिला (अहिल्या) को शाप से निवृत्त किया। गुह-गीध से मिले। शवरी के यहाँ आप स्वयं ही गये। सुग्रीव, बिभीषण और भरत, अपने दासों को सभा में आदर सहित आपने जो सराहा और जिसपर आकाश में देवध्वनि हुई वह भी मैंने सुना है। मैंने भली भाँति मन में विचार किया है कि आलसी, अभागे, पापी, दीन और अनाथ के पालक आप एक ही समर्थ साहब हैं। तुलसीदास कहते हैं, कि दोष दुःख और दारिद्र का नाश करनेवाला दीनबन्धु राम सा दयानिधान दुनिया में दूसरा नहीं है।

[१६४]

मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु
सचिव, सराध कियो* सबरी जटाइ को।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को ? ॥
बड़े एक एक† तें अनेक लोक लोकपाल‡,
अपने अपने को तौ कहैंगो घटाइ को ? ।
साँकरे के सेइबे§, सराहिबे, सुमिरिबे को,
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइ को ॥

---

* पाठान्तर—साध ।

† पाठान्तर—थकायक ।

‡ पाठान्तर—लोकनाथ ।

§ पाठान्तर—सोइबो ।

अर्थ—बालि (अर्थात् वैरी) के भाई को तो मित्र और उसके पुत्र को दूत, तथा रावण (से वैरी) के भाई को मन्त्री बनाया, शबरी और जटायु का सराध साधा (किया), लङ्का जो जली तो विभीषण का सोच हुआ। कहो ऐसे साहब की सेवा की कौन इच्छा न करे? (यों तो) एक एक से बड़ा है और अनेक लोकों के अनेक लोकनाथ हैं और अपने-अपने की बात को कौन कम करके कहेगा, परन्तु छोटे की सेवा को सराहनेवाला, याद करनेवाला और कुमति को काटनेवाला राम सा दूसरा साहब नहीं है।

[१६५]

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल,
कारन-कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली।
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली॥
तुलसी सुभाय कहैं नाहीं कछु पच्छपात,
कौने ईस किये कीस भालु खास माहली।
राम ही के द्वारे पै बुलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली॥

अर्थ—भूमिपाल (राजा), ब्यालपाल (शेष आदि), स्वर्ग के पालक (देवता), लोकपाल, पाताल के पालक (दानव), मैंने सबके जी की थाह ली है। यह सब कारण-वश कृपा करनेवाले हैं। कादर का आदर कोई नहीं करता दिखाई देता। सबको अच्छी सेवा-टहल भाती है। तुलसी सुभाय से कहता है, कोई पक्षपात नहीं है। (भला) बन्दर भालु को किसने खास माहलो (महलवाला) किया है? मुझसे दीन कपूत काहिल राम ही के द्वारे पर बुलाकर आदृत होते हैं।

[१६६]

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूनेगुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के॥

गीध मानो गुरु, कपि भालु माने मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ* के।
और भूप परखि सुलखि तोलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के॥

अर्थ—सेवा के अनुकूल सब राजा लोग, कुएँ की तरह, फल देते हैं। जो गुण-विहीन होते हैं वे रास्ते चलनेवालों की भाँति प्यासे जाते हैं अर्थात् जैसे कुआँ बिना गुण(रस्सी)वालों को जल नहीं देता और वे प्यासे ही चले जाते हैं वैसे ही गुण-विहीनों का राजा लोग भी आदर नहीं करते। तुलसीदास ने सब लेखे मन में देख लिये। स्वार्थ ही के लिए देवता लोग भी बहुत से धन के देनेवाले होते हैं। गीध को किसने गुरु माना? कपि और रीछ को किसने मित्र माना? यह पवित्र साके (कहावतें) सब समर्थ साहब राम ही के हैं। और सब राजा देख-भालकर तौलकर लखकर ताइकर सेवक बनाते हैं, परन्तु लटे (बहुत कमज़ोर) के रखनेवाले हे दशरथ के लाल! तुम्हीं हो।

[१६७]

रीति महाराज की निवाजिए जो माँगनो सो,
दोष दुख-दारिद दरिद्र कैकै छोड़िए।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि ताहि,
तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िए॥
जाँचै को नरेस, देस देस को कलेस करै?
देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िए।
कृपा-पाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िए?॥

अर्थ—महाराज की यह रीति है कि जिस माँगनेवाले पर कृपा की उसके दोष, दु:ख और दारिद्र्य को दरिद्र करके छोड़ा अर्थात् नष्ट कर दिया। जिसका नाम ही कल्पतरु है और जो चारों फलों को देनेवाला है क्या उसे छोड़कर तुलसी बबूर और रेंड़ को पाले? राजाओं से कौन माँगे? देश-देश के कलेश करनेवाले हैं अथवा

* पाठान्तर—समर्थ।

देश-देश में कौन फिरने का कष्ट करे ? प्रसन्न होकर राजाओं ने दिया भी तो सारे जगत् की बड़ाई बढ़ावेंगे अथवा बड़ी बड़ाई से दमड़ी की कौड़ियाँ ही देंगे। कृपा के समुद्र, लोकों के नाथ, सीतानाथ, रघुनाथ के हाथ को छोड़कर और किसकी आड़ ली जावे ?

शब्दार्थ—गोड़िए=गोड़ना, ज़मीन को नरम करने के लिए ऊपरी भाग को पलटना। बौंड़िए=बौंड़ी, कली (छोटी चीज़), अथवा दमड़ी की कौड़ी, अथवा बौड़ना या बकना।

सवैया

[१६८]

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक, लहैं सुरलोग* सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि।
जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि॥

अर्थ—जिसके देखने मात्र से लोकपाल विशोक होते हैं और सुरलोक में, अथवा देवताओं को, अच्छी ठौर मिलती है, जिस देवताओं के प्रभु (रामचन्द्र) को कमला (लक्ष्मी) चंचलता छोड़ और कोटि कला करके रिझाती है, तुलसीदास कहते हैं कि उसका कहलाकर तू और जगह कुत्ते की तरह टुकड़े माँगता हुआ शरमाता नहीं है ? जानकीनाथ का सेवक होकर वह जीभ जल जावे जो और से याचना करती है।

[१६९]

जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर† की।
जन की कहु क्यों करिहैं न सँभार, जो सार करैं सचराचर की॥
तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की।
जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की॥

अर्थ—पाँच जड़ पदार्थ मिलाकर देह बनाई, इस धरनीधर (राजा रामचन्द्र) की करतूत को देख। जो सब चराचर की सँभाल करते हैं, सो अपने दास की क्यों न करेंगे ? तुलसीदास ! कहो, राम के बराबर और कौन है जिसके घर की दासी लक्ष्मी है। जिसे जगत्पति की गति है उसे मनुष्य की क्या परवाह है ?

---

* पाठान्तर—सुरलोक।

† पाठान्तर—लघुधा धरणीधर।

[१७०]

जग जाँचिए कोउ न; जाँचिए जौ*, जिय जाँचिए जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति† जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

अर्थ—जग में किसी से न माँगना चाहिए। जो माँगना ही है तो हृदय में जानकीनाथ से माँगो, जिससे माँगने पर माँग स्वयं नष्ट हो जाती है और जो दुनिया को ज़ोर से जलाती है· अथवा दुनिया का सब सामान इकट्ठा करते हैं अथवा जो जहान के ज़ोर को जला देते हैं अर्थात् भव-फन्द काट देते हैं। विभीषण की गति को विचार कर देखो और हनुमान को हृदय में लाओ अर्थात् उनका ध्यान धरो। हे तुलसी! दारिद्र्य-दोष को अग्नि-रूप और संकट को कोटि तलवार के समान अथवा करोड़ों संकटों को काटने के लिए तलवार के समान रामचन्द्र का भजन कर।

[१७१]

सुनु कान दिये नित नेम लिये रघुनाथहि के गुनगाथहिँ रे।
सुख-मंदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनुभाथहिँ रे॥
रसना निसि बासर सादर सों तुलसी जपु जानकीनाथहिँ रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों तजि कूर कुपंथ कुसाथहिँ रे॥

अर्थ—सदा राम के गुणों की कथा को नेम से कान देकर सुना कर। सदा धनुष और तरकश लिये, सुख के मन्दिर (राम) के सुन्दर स्वरूप को हृदय में ला। हे तुलसी, जिह्वा से दिन-रात आदर सहित जानकीनाथ का नाम जप। कूर (बुरे जन), बुरी राह और बुरे संग को छोड़कर सुशील और संतों का संग कर।

[१७२]

सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजिकै, समता सजि संतसभा न बिराजहि रे॥

---

* पाठान्तर—तो।

† पाठान्तर—जोरत।

नरदेह कहा, करि देखु विचार, बिगारु* गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकुर ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे॥

अर्थ—पुत्र, स्त्री, महल, सखा, कुटुम्ब को कुसमाज जानकर, सबकी प्रीति छोड़कर, समता (एकाग्रता) को सज (ग्रहण कर)। संत-सभा में क्यों नहीं विराजता? मनुष्य देह क्या है, विचारकर देख। हे गँवार! अपने काम को मत बिगाड़, कुत्ते के समान लालची मत बन। तुलसीदास कहते हैं कि कोशलराज (राम) को भज।

[१७३]

विषया परनारि निसा-तरुनाई, सु पाइ पर्यो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग, बिलोकत हू न बिरागहि रे॥
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे।
जरठाई दिसा, रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥

अर्थ—विषय-रूपी परनारि और तरुणाई-रूपी रात को पाकर मोह में पड़ गया है; यमराज के दूत, जो रोग, दुःख और वियोग हैं, उनको देखकर भी तुझे वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ। मोह-वश सब भूल गया, सबेरा होते अब डर से भागने लगा; अथवा भारी भय आ रहा है अर्थात् मौत आ रही है, अब भाग। वृद्धावस्था-रूपी दिशा में काल-रूपी सूर्य्य उदय हुआ, अब भी हे जड़ जीव! तू नहीं जागता है।

[१७४]

जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि† भई उर की जरनी॥
तुलसी अब राम को दास कहाइ, हिये धरु चातक की‡ धरनी।
करि हंस को बेष बड़ो सब सों§, तजि दे बक बायस की करनी॥

---

* पाठान्तर—गँवार बिगार न।

† पाठान्तर—बहार।

‡ पाठान्तर—सी।

§ पाठान्तर—तें।

अर्थ—जिस योनि से उत्पन्न हुआ है उसी में सुख-प्राप्ति के लिए अनेक क्रियाएँ करता है, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। माता-पिता आदि अनेक हितू हो गये; फिर भी हृदय को जलानेवाली जलन रही। हे तुलसी! अब राम का दास कहाकर चातक ने जो हृदय में धारण किया है तू भी वही धारण कर अर्थात् अनन्य भाव से सेवा कर। सबसे बड़ा जो वेष हंस का है उसे धारण करके बगुले और कौए की बातों को छोड़ दे अर्थात् बगुले की सी मकारी और कौए की सी चालाकी को छोड़ दे।

[१७५]

भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भला लहिकै।
करषा तजिकै, परुषा बरषा, हिम मारुत घाम सदा सहिकै॥
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहिकै।
न तो और सबै विष-बीज बये हर-हाटक काम-दुहा नहि कै॥

अर्थ—भारत की अच्छी भूमि में, अच्छे कुल में जन्म पाकर, समाज और शरीर भी भले पाकर, क्रोध छोड़कर, वर्षा, बर्फ़, हवा और घाम सदा सहकर जो चातक की तरह हठ करके भगवान् को गहै—अर्थात् जैसे चातक स्वाती का ही पानी पीता है नहीं तो प्यासा ही रहता है—और उनका भजन करे वही हे तुलसी! सयाना है अन्यथा और सब तो सोने के हल में कामधेनु जोतकर विष का बीज बोना है॥

[१७६]

सो सुकृती, सुचि-मंत, सुसंत, सुजान, सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन* होत हैं ता तनछ्वै॥
गुन गेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सों उठाय कहौं भुज द्वै।
सतिभाव सदा छल छाँड़ि सबै तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै॥

अर्थ—वही धर्मात्मा है, वही पवित्र है, वही भला सन्त है, सुजान है, सुशील है और वही शिरोमणि अथवा सुशीलों में शिरोमणि है; देवता और तीर्थ उसके बुलाते ही आते हैं और उसके शरीर के स्पर्श मात्र से तीर्थादिक पवित्र हो जाते हैं; 'गुण का वही घर है, वही प्रेम का पात्र है' यह मैं दोनों भुजा उठाकर कहता हूँ, जो 'सति (सच्चे) भाव' से छल छोड़कर सदा रघुवीर का होकर रहे।

---

* पाठान्तर—पाप न, अर्थः— न पाप उसे लगता है, न ताप (अहित) उसे छू जाता है।

[१७७]

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु,सो सुर, साहिब, चेरो ॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सो राम को होइ सबेरो ॥

अर्थ—वही माता है, वही भाई है, वही स्त्री है, वही पुत्र है, वही मित्र है, वही सगा है, वही सखा है, वही दास है, वही गुरु है, वही देवता है जो साहब (राम) का दास है अथवा वही देवता है, वही साहिब है, वही चेरा (नौकर) है। कहाँ तक बहुत बनाकर कहूँ, तुलसी को वह प्राण के तुल्य है, जो घर और देह का मोह छोड़कर जल्दी राम का होवै।

[१७८]

राम हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु औ संगी, सखा, सुत, स्वामि, सनेही।
राम की सौंह भरोसो है राम को, रामरंग्यो रुचि राच्यो न केही ॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जिये जग में तुलसी, न तु डोलत और मुये धरि देही ॥

अर्थ—जिसके राम ही माता, पिता, सुत और बन्धु हैं; वही सङ्गी हैं, वही सखा हैं, वही गुरु, स्वामी और सनेही हैं; जो राम के सन्मुख है, जिसे उन्हीं का भरोसा है, जो राम के रङ्ग में रँगा है और जिसे किसी और की रुचि, (अथवा राम की शपथ खाता हूँ) बिल्कुल नहीं है; जीते राम, मरते राम, जिसे सदा राम ही की गति है; वही हे तुलसी! जगत् में जीवित है और सब मुर्दे देह धारण किये घूमते हैं।

[१७९]

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहिं को थलु है ॥
मति रामहिं सो; गति रामहिं सों, रति राम सों, रामहिं को बलु है।
सबकी न कहैं तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है ॥

अर्थ—सीता-राम का अनूप स्वरूप नेत्र-रूपी मछलियों के लिए अगाध जल-रूप है; राम की कथा श्रवण करने को और मुँह में राम नाम का जप और हृदय में राम ही का स्थान है। राम ही से बुद्धि लगी है, राम ही की गति है, राम ही से प्रीति है, राम ही का बल है। सबके बदले तुलसी यही क्यों न कहे कि जीवन का इतना ही फल है अथवा सबकी नहीं कहता अथवा और सब चाहे जो कहा करें परंतु तुलसी के मत में तो जीवन का यही फल है।

[१८०]

दशरत्थ के दानि, सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुमसों मन भावत पायो न कै* ॥
तुलसी कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइके जाय जियैं ॥

अर्थ—दशरथ के पुत्र, दानियों में श्रेष्ठ, राम का यश पुराणों में प्रसिद्ध है और मैंने भी सुना है। नर और नाग, सुर और असुर, और जाचक कौन ऐसा है जिसने आपसे अपना मन-चाहा नहीं पाया। तुलसी हाथ जोड़कर विनती करते हैं जो दीनदयालु उसे कृपा करके सुनैं—जिस देह को आपसे प्रीति नहीं है ऐसी देह धारण करके ही क्या करैं अर्थात् उससे अच्छा कि जी जाता रहे, मर जावें।

[१८१]

'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है ॥
जान-पनी को गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी-जीवन-जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है ॥

अर्थ—यह जग झूठा है, सदा झूठा है, ऐसा वह सन्त कहते हैं जिनको इसका अन्त (भेद) मिला है, उसके लिए तू हे शठ! करोड़ों सङ्कट सहता है और सदा हा-हा करता दाँत निकालता है। (अथवा संसार के लिए करोड़ों सङ्कट सहते हैं और हाहा खाते दाँत निकालते फिरते हैं परंतु मुँह से संसार को झूठा बताते हैं।)

---

* पाठान्तर—पावन मैं।

जिसको यह बड़ा गुमान है कि मैं बड़ा जाननेवाला हूँ, तुलसी की समझ में, वह बड़ा गवाँर है। जानकीनाथ को अगर नहीं जाना तो जाननेवाला कहलाते हुए भी क्या जाना है ?

[१८२]

तिन्ह तेँ खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिखान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै*।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ! जियै† जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

अर्थ—उनसे गधे, सुअर और कुत्ते अच्छे हैं; क्योंकि जड़ होने के कारण वे कुछ कहते तो नहीं हैं। तुलसी कहते हैं कि जिसे राम से प्रीति नहीं है वह अवश्य पशु है यद्यपि उसके पूँछ और सींग नहीं। उसको पैदा करनेवाली माँ दस मास तक बोझा लादकर क्यों (व्यर्थ) मरी। अच्छा होता कि वह बाँझ होती या गर्भपात हो जाता। उसका जीवन हो जल जावे जो हे जानकीनाथ! जग में बिना तुम्हारा होकर रहता है।

[१८३]

गज-बाजि-घटा भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकै सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै‡ सुख स्वै॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जिये जग में तुम्हरो बिन ह्वै॥

अर्थ—हाथी-घोड़ों की घटा (समूह) है, बड़े वीर हैं, स्त्री-पुत्र सब कोई मुँह देखता है, पृथ्वी, धन, घर, शरीर सब अच्छा है, जो सुख स्वर्ग में है वह यहीं विद्यमान है परंतु तुलसीदास कहते हैं कि यह सब फोकट साटक (फ़िज़ूल और असार) है। यह जीवन दो दिन का सपना है। उसका जीवन जल जावे जो जग में बिना तुम्हारा होकर रहता है।

---

* पाठान्तर—स्वै।

† पाठान्तर—रहे।

‡ पाठान्तर—चाहिय है।

[१८४]

सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि, बिरंचि, धनाधिप सो धन भो
पवमान* सो, पावक सो, जस सोम सो, पूषन सो, भवभूषन भो ॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो ।
सब जाय, सुभाय कहै तुलसी, जो न जानकीजीवन को जन भो ॥

अर्थ—इन्द्र का सा राज-समाज और ब्रह्मा की सी सम्पत्ति और कुबेर सा धन हुआ ते क्या ? भव (जगत्) में मानी अथवा पवमान (पवन) सा और अग्नि, यम, चन्द्र, सूर्य्य का सा या सबमें भूषण (सिरमौर) हुआ ते क्या ? योग-समाधि करके, प्राण साधकर, बड़ा धीर हो गया या मन वश में हो गया ते क्या ? तुलसी स्वभाव ही से कहते हैं कि यदि राम का दास न हुआ ते सब व्यर्थ हैं ।

[१८५]

काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेश से माने ।
हरिचंद से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै सुखसाने ॥
सुक से मुनि सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तेँ अधिकाने ।
ऐसे भये ते कहा तुलसी जु पै राजिव-लोचन राम न जाने ॥

अर्थ—काम सा रूप, सूर्य्य सा प्रताप, चन्द्र सा शील और गणेश जैसी प्रतिष्ठा (सब से पहिले पूजा) होती है । हरिश्चन्द्र से सत्यवक्ता, ब्रह्मा से बड़े, इन्द्र से राजा और सुख पानेवाले, शुक से मुनि, शारदा से सेवक और लोमश से दीर्घायु हुए ते क्या ? हे तुलसी ! यदि कमल-नयन राम को न भजा ।

[१८६]

झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जड़े मदअंबु चुचाते ।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पैान के गैानहु तेँ बढ़ि जाते ॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भये ते कहा तुलसी जो पै जानकीनाथ के रंग न राते ॥

---

* पाठान्तर—भवमान ।

अर्थ—द्वार पर बहुत से हाथी झूमें जिनके बड़ी बड़ी जंजीरें पड़ी हों और मद चूता हो, तो क्या ? अच्छे तेज़ घोड़े, बड़े चञ्चल और पवनगामी हों, (तो क्या ?) घर के भीतर चन्द्र के से मुखवाली स्त्री हुई और बाहर बड़े बड़े राजा हुए, तो क्या ? ऐसे हुए भी तो क्या, हे तुलसी ! जो रामचन्द्र के रङ्ग में न रँगे गये।

[१८७]

राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाये।
पूत सपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मद नाये॥
सम्पति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाये।
जानकी-जीवन जाने बिना जन ऐसेऊ जीवन जीव कहाये॥

अर्थ—पचासों इन्द्र के राज का यदि ब्रह्मा के हाथ का लिखा पट्टा पा गये तो क्या ? सपूत पुत्र और (पतिव्रता) स्त्री, जिसकी सुन्दरता के आगे रति का गर्व भी जाता रहा हो, पाने से क्या ? सब सम्पदा और सिद्धि मन की इच्छा (चित्त) लगाये राह देखती हो (कि कब बुलावा हो कब जाऊँ) तो क्या ? रामचन्द्र के जाने बिना, उत्पन्न होकर और जीते हुए भी ऐसे पुरुष नहीं जीते।

[१८८]

कृसगात ललात जो रोटिन को, घर बात घरे* खुरपा खरिया।
तिन सोने के मेरु से ढेर लहे, मन तौ न भरो घर पै भरिया॥
तुलसी दुख दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरत्थ के दानि दया-दरिया॥

अर्थ—दुर्बलशरीर जिन्हें रोटियों के भी लालच थे, जिसके घर की पूँजी खुरपा और खरिया (जाला) ही थे, उनको यदि सोने का मेरु भी मिल गया तो घर तो भरा, पर मन न भरा। हे तुलसी ! दोनों दशा देख, दूना दुःख हुआ। दरिद्र का मुँह काला किया, अर्थात् सन्तोष तभी हुआ जब आशा छोड़ दशरथ-कुमार, दया के दरिया (नदी) का दास हुआ।

शब्दार्थ—खरिया—जाली।

* पाठान्तर—रवा।

[१८९]

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै, थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ?॥
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहुँ तेँ डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकीनाथ मया* करिहै॥

अर्थ—हरि के देने पर कौन (ख़ज़ाना) ख़ाली कर सकता है और हरि के रीते करने पर कौन भर सकता है ? उसे कौन उखाड़ सकता है जिसे राम जमावें, उसे कौन जमा सकता है जिसे राम उखाड़ें। तुलसी यह मन में जानकर काल से स्वप्न में भी नहीं डरेगा। जो रामचन्द्र कृपा करेंगे तो औरों के किये कुछ भी हानि नहीं हो सकती।

[१९०]

ब्याल कराल, महाबिष, पावक मत्त गयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपै हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे॥
नेकु बिषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि के बल हो रे।
कौन की त्रास करै तुलसी, जो पै राखिहैं राम तो मारिहै को रे ?॥

अर्थ—बड़े विषवाले विकराल साँप, भीषण विष, अग्नि और मस्त हाथियों के दाँत तोड़े। साँसत (ताड़ना) भी शङ्का करती (स्वयं डरती हुई) चली, डरे हुए नौकरों ने भी बुरी करनी (कर्म) से मुँह मोड़े। अर्थात् राम के दास से विमुख होने से उन्हें भी शङ्का हुई और उसके साथ बुरी करनी करना उन्होंने छोड़ दिया। लेकिन प्रह्लाद को ज़रा भी विषाद (अफ़सोस) न हुआ, क्योंकि वह नृसिंह के बल हो रहे थे। तुलसी किसको डरे ? यदि राम राखेंगे तो उसे कौन मारेगा ?

[१९१]

कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करैँ तिनकी परिवाहि ते जो बिनु पूँछ बिषान फिरैँ दिन दौरे॥
तुलसी जेहि के रघुबीर से नाथ, समर्थ सु सेवत रीझत थोरे।
कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सो तिन तोरे॥

* पाठान्तर—कृपा।

अर्थ—जिनकी कृपा से कुछ काम नहीं निकलता, और जिनके मुँह मोड़ने से कुछ अकाज नहीं होता उनकी कौन परवाह करे ? वही जिसके न सींग है न पूँछ, और दौड़ा दौड़ा फिरता है। हे तुलसी ! जिसके राम से नाथ हैं, जो थोड़े ही में प्रसन्न हो जाते हैं, उस पर क्या संसार की भीर पड़ी है ? इससे पृथ्वी पर उनसे, जिनका वर्णन ऊपर है, नाता तोड़े हुए क्यों न फिरें अर्थात् स्वतंत्र क्यों न रहे ?

[१९२]

कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाबिष, व्याधि, दवा, अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मात पिता हित बंधु न नेरे* ॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ॥

अर्थ—वन, पहाड़, पानी और हवा में और जहाँ विष, व्याधि, अग्नि और वैरी घेरते हैं, जहाँ सैकड़ों सङ्कट हैं, हे तुलसी! और न भाई, न माता, न पिता, न हितू हैं, वहाँ रामचन्द्र ही रक्षा करेंगे, जिनके हनुमान् से सेवक हैं। आकाश, पाताल, पृथ्वी सब में एक रघुनाथ ही मेरे सहायक हैं।

[१९३]

जबै जमराज रजायसु तें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया ॥
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुने चहुँ ओर डटैया।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरत्थ के नंदन बंदि कटैया ॥

अर्थ—जब यमराज के दूत उनकी आज्ञा से मुझे गला बाँधकर ले चलेंगे तब भाई, माता, स्वामी, सखा कोई विपत्ति का बाँटनेवाला न मिलेगा। जब घोर सज़ा मिलेगी और मैं दीन होकर पुकारूँगा तब कोई सुननेवाला न होगा, चारों ओर तो डाँटनेवाले ही होंगे। वहाँ एक रामचन्द्र ही कृपालु, दशरथ-नन्दन बेड़ों के काटनेवाले होंगे।

---

* पाठान्तर—मेरे।

[१९४]

जहाँ जम जातना घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव न मीत* खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥

अर्थ—जहाँ यम की यातना है, घोर वैतरणी नदी है और करोड़ों योद्धा (बलवान्) जलचर दाँत तेज़ करते हैं, जिसकी भयङ्कर धार का कोई पार नहीं है, न कोई नाव है, न उसका खेनेवाला है, हे तुलसी! जहाँ न माता, न पिता, न सखा, न और कोई सहारा देनेवाला है, वहाँ बिना कारण ही कृपालु राम बड़ी बाहों से हाथ पकड़कर निकालनेवाले हैं।

[१९५]

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा,
बनिता, सुत, बंधु न, बाप, न मैया।
काय गिरा मन के जन के,
अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया॥
तुलसी तेहि काल कृपालु बिना,
दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच,
तहाँ मेरो साहब राखै रमैया॥

अर्थ—जहाँ न हितू है, न स्वामी, न सङ्गी, न सखा, न बन्धु, न पिता, न माता, वहाँ शरीर-वचन-मन के अपराधों को, छल छोड़कर, माफ़ करनेवाला, दारुण दुःख का नाश करनेवाला, हे तुलसी! कृपालु रामचन्द्र के सिवा दूसरा कौन है? जहाँ सब कठिन सङ्कट और शोच आते हैं वहाँ मेरा साहब, राम, ही रखने (बचाने) वाला है।

[१९६]

तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप, कृपा पुनि थोरेहि, बैठि के जोरत तोरत ठाढ़े॥

---

* पाठान्तर—नीक।

ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े !।
आरत के हित, नाथ अनाथ के, राम सहाय सही दिन गाढ़े ॥

अर्थ—अपने तपस्वी भक्तों को वर देनेवाले सब देव हैं, फिर बढ़ने पर (उन्नति होने पर) वैर बढ़ाते हैं। वह थोड़े ही में कृपा करनेवाले और थोड़े ही में क्रोध करनेवाले हैं, थोड़े ही में बैठकर मित्रता जोड़ते हैं और थोड़े ही में खड़े खड़े तोड़ते हैं। गजराज ने यह बात जाँच परताल ली थी, कहाँ तक कहूँ, किससे कहूँ और किसके सामने दाँत निकालूँ अर्थात् किसकी ख़ुशामद करूँ ? आरत के मित्र, अनाथ के नाथ, राम ही मुसीबत में सहायक होते हैं।

[१८७]

जप, जोग, बिराग, महा मख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस से सेवत जन्म अनेक मरै ॥
निगमागम, ज्ञान पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरै ? ॥

अर्थ—जप, योग, वैराग्य, यज्ञ-साधन, दान, दया, दम करोड़ों करे; मुनि, सिद्ध, इन्द्र, महेश, गणेश की सेवा करते अनेक जन्म तक मरा करे; वेद, शास्त्र, ज्ञान, पुराण पढ़े और तप की अग्नि में युगों तक जला करे। मन से तुलसी प्रण करके कहता है कि राम के बिना दुख का हरनेवाला कोई नहीं है।

[१८८]

पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरै कथरी करवा है।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो, सपनेहू नहीं अपने बरवा है ॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिनु बानर के चरवाहे ॥

अर्थ—तुलसीदास महापापी और दरिद्री, दुखी, फटे मैले कपड़े पहने और करवा (मिट्टी का लोटा) लिये था। लोग कहते थे कि ब्रह्मा ने स्वप्न में भी (भूलकर भी) कुछ इसके भाग्य में नहीं लिखा है अथवा ब्रह्मा ने भी भाग्य में कुछ नहीं लिखा और स्वप्न में भी अपने सिर का बाल तक अपना नहीं है अथवा न ब्रह्मा ने ही भाग्य में लिखा न अपने बाहुओं ही का बल है। ऐसा तुलसी भी राम का

दास हो यह बात समझने ही योग्य है, उसे कहना व्यर्थ है। राम का दास होकर ऐसे को ऐसा हुआ अर्थात् इनका बड़ा नाम हो गया; क्या ऐसा कभी बंदरों के रक्षक (राम) को बिना भजे हो सकता है ?

[१९९]

मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई ॥
राम-सुभाउ सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई ॥

अर्थ—माता पिता ने संसार में उत्पन्न करके त्याग दिया और ब्रह्मा ने भी भाग्य में कुछ भलाई नहीं लिखी। नीच और अनादर का पात्र, कायर, कुत्ते की तरह टूक पर लालच करनेवाला तुलसी था। उसने राम का सुभाव सुना और प्रभु से एक बार पेट खलाकर (देखाकर) कहा सो स्वारथ और परमारथ के देने में रघुनाथ ने कुछ कसर न रक्खी।

[२००]

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंस कियो बक ते बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई ॥
काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई ॥

अर्थ—पाप हरे गये और दुख मिट गया, मेरी देह की पूजा हुई और हृदय ठण्डा हो गया। मैं कहाँ तक दया की अधिकता को कहूँ कि आपने बगुले से मुझे हंस किया, अपना समय देखकर अथवा अन्त काल समझकर तुलसी मन में प्रभु पर पूर्ण विश्वास रखकर कहता है कि जहाँ कहीं भी जन्म हो वहाँ आप ही से सदा सनेह निबाहनेवाली देह मिलै।

[२०१]

लोग* कहैं अरु हौं हूँ कहौं, 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को'।
रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को ॥

* पाठान्तर—लोक

कै यह हानि सहौ बलि जाउँ, कि मोहुँ करो निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करो ज्यों, हौं* ध्यान धरों धनुसायक ही को॥

अर्थ—दुनिया कहती है और मैं भी कहता हूँ कि चाहे खोटा हूँ चाहे खरा, रामचन्द्र ही का हूँ। आपका तो छोटा पन है (आपके लिए मुझ-से नीच की सहायता करना छोटापन है अथवा आपका दास बुरा हो इसमें आपका छोटापन है)। परन्तु मेरा यश मुझे सुखदायक है अर्थात् उतने बड़े साहब का दास हूँ अथवा मेरा यश तो आपको सुखदायक है अर्थात् अपने दास के यश से आप प्रसन्न होते हैं परन्तु उसे अपने लायक तो कीजिए। यह हानि सहो या मुझे भी अपने लायक करो। यह मन में समझकर और मेरा हित जानकर ऐसा करो कि जिसमें मैं धनुषपाणि रामचन्द्रजी का ध्यान धरूँ।

[२०२]

आपुहौं† आपको नीके कै जानत, रावरो राम! बढ़ायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो॥
सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥

अर्थ—मैं ख़ुद ही अपने को अच्छी तरह समझता हूँ कि हे राम! आप ही का बढ़ाया गढ़ाया हुआ हूँ। तुलसी तोते की तरह राम राम रटता है, उसे दुनिया कहती है कि जग में राम ने पढ़ाया है। यही खेद है (कि आपका नाम तोते की भाँति रटता हूँ, मन में भक्ति नहीं है)। वेद भी कहता है कि जिस मनुष्य को राम ने बढ़ाया है वह नहीं घट सकता। मैं वैसे तो गदहे पर सवार होने लायक था परन्तु आपके नाम ने हाथी पर चढ़ाया है (इसलिए मुझे केवल नाम के वास्ते नहीं बल्कि सचमुच भक्त हो जाना चाहिए)।

घनाक्षरी

[२०३]

छार तेँ सँवारि कै पहार हू तेँ भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।

---

* पाठान्तर—चाहो।

† पाठान्तर—आपुहि

हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै ॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज !
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै ।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारियै
औ काटियै न, नाथ ! बिषहू को रूख लाइकै ॥

अर्थ—आपने मुझे ख़ाक से ऐसा सँभाला (उठाया) कि पहाड़ से भी भारी कर दिया, फिर मैं आपका पवित्र पक्ष पाकर पंचों में भारी हुआ अथवा नये पंख पाकर पाँचों इन्द्रियों में फँसकर गारे की तरह वहीं फँस गया। मैं तो जैसा अधम तब था वैसा ही अब भी हूँ। परन्तु हे राम ! आप ही का गुन गाकर पेट भरता हूँ। जो आपने कृपा की है, हे महाराज! उसकी लाज रक्खो और मेरी ओर से ख़फ़ा होकर न बैठ रहो। हे कृपालु, साँप के बच्चे को भी पालकर न मारिए और विष के वृक्ष को भी अपने आप लगाकर न उखाड़िए।

[२०४]

बेद न पुरान गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन प्रबीनता।
नाहिंन बिराग, जोग, जाग भाग* तुलसी के,
दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता ॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष कोष मोसो कौन ?
कलि हू जो सीख लई मेरियै मलीनता ।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीन-बन्धु, मेरी दीनता ॥

---

* भोग।

राम को कहाइ, नाम बेंचि बेंचि खाइ,
सेवा संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है ॥
तेहू तुलसी को लोग भलो भलो* कहैं,
ताको दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है ।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामि के सनेह स्वान हूँ को सनमानु है ॥

अर्थ—मेरा वचन विकार-युक्त (कड़ा) है, बहुत खुवार (बुराई) करनेवाला है अथवा करतब भी बुरा है, और मन विचारहीन तथा कलियुग के मैल (पाप) का घर है। राम का कहाता हूँ और नाम बेंच बेंच खाता हूँ। सज्जनों की सेवा-संगति में नहीं जाता हूँ, वही पिछली कहानी चली आती है अर्थात् अपनी टेव नहीं छोड़ता हूँ। उस तुलसी को भी लोग भला कहते हैं। उसका सिवाय इसके और दूसरा कारण नहीं है कि उसे एक अच्छे का सहारा है। जगत् की यह रीति ज़ाहिर है और जगह जगह दिखाई भी पड़ता है कि जहाँ स्वामी का प्रेम होता है वहाँ उसके कुत्ते का भी सन्मान होता है।

[२०७]

स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मोसों दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों, करौं, न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है ॥
रावरी सपथ, राम! नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
तुलसी को भलो पै तुम्हारे ही किये, कृपालु!
कीजे न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है ॥

अर्थ—न तो स्वार्थ की सामग्री है और न परमार्थ की। मुझसा इस जग-जाल में दूसरा दग़ाबाज़ कोई न होगा। न मैंने नेकी की है, न करता हूँ और न करूँगा। ब्रह्मा ने ही भूलकर भी भलाई मेरे भाग्य में नहीं लिखी है। आपकी क़सम मेरे राम-

* पाठान्तर—भलीभला

नाम ही की गति है अन्यथा जो यहाँ झूठा है वह तीनों लोक और तीनों काल में सदा झूठा है। अर्थात् राम की शरण मुँह से कहता हूँ परन्तु हृदय में नहीं लाता। तुलसी का भला आपही के कहने से होगा। हे कृपालु नाथ! अब देर न कीजिए, यह देह पानी भरी मशक के समान है (न मालूम कब फट जावे)।

[२०८]

राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनो-राज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को॥
भयो करतार बड़े क्रूर को कृपालु, पायो
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाये, ना तौ,
धोबी कैसो कूकुर, न घर को न घाट को॥

अर्थ—न राग की ही सामग्री है; न मन में वैराग्य, न योग, न यज्ञ है। यह शरीर बुरे कामों का प्रबन्ध करना नहीं छोड़ता। आज तक मन की भावनाएँ करते अकाज हो गया। सुन्दर वस्त्र की इच्छा करता है परन्तु पाता टाट का टुकड़ा भी नहीं। ब्रह्मा बड़े क्रूर, पर कृपालु हुए कि मुझसे बड़े लालची को पारस नाम (राम) मिल गया। अथवा ब्रह्मा ने मुझ से बड़े क्रूर पर कृपा की कि मुझ से कौड़ी के लालची को नाम-रूपी पारस मिल गया। हे राम! तुलसी की तुम्हारे बनाये बनी है। नहीं तो धोबी का कुत्ता है न घर का न घाट का।

[२०९]

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही*,
लोक-रीति-लायक न, लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जबारु है॥

* पाठान्तर—निपटहि

चाकरी न आँकरी, न खेती, न बनिज भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु हैं।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम,
न तु भेंट पितरन कोँ न मूड़ हू में बारु है॥

अर्थ—मन तो ऊँचा है और रुचि बढ़ी हुई है परन्तु भाग छोटा है। दुनिया की रीति के लायक़ नहीं, खोटा है और झूठा है। स्वार्थ ही कठिन है, परमार्थ की क्या चर्चा; पेट ही के लाले हैं। संसार भी प्राणों का जञ्जाल हो रहा है। न नौकरी किसी की है, न खेती है, न व्यापार, न भीख ही माँगना जानता हूँ और न कोई अन्य उद्यम है। तुलसी की बात राम-नाम ही ने रक्खी है, नहीं तो जल्दी पितरों से भेंट होती अर्थात् मर जाता और सिर में एक बाल न रहता (इतना मारा जाता) अथवा न पितृकर्म ही कर सकता, न देवकर्म ही के लिये सिर में बाल (धन) है।

[२१०]

अपत, उतार, अपकार को अगार जग,
जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको।
पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट के, पयोधि अपराध को॥
तुलसी से बाम को भो दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको।
राम नाम ललित ललाम किये लाखनि को
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को॥

अर्थ—बड़ा पतित है, जग में अपकार का घर है, जिसकी छाँह छू जाने से ब्याध और बधिक (कसाई) भी संकोच करते हैं। पृथ्वी में पाप की रक्षा करने को शेष का सा है। कपट का वन और अपराध का समुद्र है। तुलसी ऐसे क्रूर को दया-निधि दहिने हुए। [यह ख़बर पाकर] सब सिद्ध "साधु" "साधु" कहकर अर्थात् "भला" कहकर उसकी सराहना करते हैं; अथवा सब सिद्ध, साधु (संन्यासी) और साधक (योगी जन) सराहना करते हैं अथवा सब उसकी साधु, सिद्ध वा साधक (योगी) कहकर तारीफ़ करते हैं। राम-नाम लाखों को बड़ा करता है, वे चाहे जैसे

क्रूर कायर कपूत क्यों न हों, चाहे आधी कौड़ी काम के भी न हों अथवा रामनाम ने तुलसी ऐसे मनुष्य को ललित और ललाम सा कर दिया, जो कौड़ी काम का न था उसे लाखों के मोल का कर दिया।

[२११]

सब-अंग-हीन, सब-साधन-बिहीन, मन
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं* ।
बुद्धि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, दीन,
गुन-ज्ञान-हीन, हीन-भाग हू विभूति हौं ॥
तुलसी गरीब की गई-बहोर राम नाम,
जाहि जपि जीहँ राम हू को बैठो धूति हौं।
प्रीति राम नाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूति हौं† ॥

अर्थ—सब अङ्गों से हीन हूँ और साधन से रहित हूँ, मन और वचन दोनों मैले हैं और अपने कुल के कर्तव्यों अथवा कुल और कर्त्तव्य (कर्मादिक) से भी हीन हूँ। बुद्धि और बल दोनों से रहित हूँ, न मुझमें भाव है न भक्ति, दीन हूँ, न गुण है न ज्ञान, न भाग्य ही अच्छा है न विभूति ही है। हे तुलसी! गरीब की गई बहोरने (लौटाने) वाला रामनाम है कि जिसे जीभ से जपकर पवित्र हो बैठा हूँ अथवा राम को भी धूति छलने बैठा हूँ। मेरी प्रीति रामनाम से है, राम ही का भरोसा है। रामनाम के प्रसाद से पैर पसारकर सोता हूँ। अथवा उसके एवज़ में केवल प्रसाद रूप पैर दबाना चाहता हूँ।

[२१२]

मेरे जानि जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यों जग,
तब तें बिसाह्यो दाम लोह कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलाम राम को' ॥

* पाठान्तर—धूति हों, अर्थ—धोता हूँ, छलता हूँ।
† पाठान्तर—सूति हों, अर्थ—सोता हूँ, दबाता हूँ।

नाथ हू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हूँ तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै तो भलोई, न तो
तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को॥

अर्थ—मेरी समझ में जब से मैं उत्पन्न हुआ हूँ तब से लोभ काम और क्रोध ही को बिसाहा (मोल लिया)। उन्हीं में मन लगा है, उन्हीं की सेवा की है, उन्हीं का भाव है, बात बना-बनाकर कहता हूँ कि राम ही का गुलाम हूँ। नाथ ने भी न अपनाया और संसार भी झूठा हो गया अथवा राम का कहलाता था यह बात भी संसार में झूठी हो गई। परंतु प्रभु से भी प्रभु के नाम का प्रताप अधिक है, अपनी भलाई से भला कीजिए तो अच्छा है, नहीं तो तुलसी का खजाना खुलेगा जो खोटे दामों ही का है अर्थात् पाप से भरा है।

[२१३]

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग ब्रत,
तीरथ न धर्म जानों बेद बिधि किमि है।
तुलसी सो पोच न भयो है, नहिं ह्वैहै कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै॥
मेरे तो न डरु रघुबीर सुनो साँची कहों,
खल अनखैहैं, तुम्हैं सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहिँ तुला तैालिए तैा,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै॥

अर्थ—न मुझे योग आता है, न मेरे वैराग्य है, न जप न तप न त्याग है, न व्रत है, न मैंने तीर्थ किया है, न मैं धर्म जानता हूँ, न यह जानता हूँ कि वेद की क्या रीति है। तुलसी सा कमीना न है, न हुआ है, न होगा। सब इसके लिए सोच करते हैं कि इसके पापों को प्रभु कैसे क्षमा करेंगे। हे रघुवीर! सुनो, सच कहता हूँ, मुझे तो कुछ डर नहीं है, क्योंकि खल अनखायँगे और सज्जन लोग भी

न छोड़ेंगे परंतु चाहे जैसे पुण्यात्मा के साथ मुझे तौल देखिए नाम की बदौलत मेरा ही पल्ला भारी होगा।

[२१४]

जाति के, सुजाति* के, कुजाति† के, पेटागि बस,
खाए टूँक सब के बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किए पाप सति‡ भाय,
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो॥
राम नाम को प्रभाउ पाउ§, महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि|| सुनी सो॥

अर्थ—जाति, कुजाति, अच्छी जाति, सब के टुकड़े पेट की अग्नि के वश खाये, सो बात दुनिया जानती है। मन, वचन, शरीर से पाप सहज ही (अनेक) किये, फिर राम का कहाकर भी दग़ाबाज़ रहा। रामनाम का प्रभाव ऐसी महिमा और प्रताप रखता है कि जिससे तुलसी सा मनुष्य बड़ा मुनि सा गिना जाता है, ऐसा मैंने सुना है। वह बड़ा अभागा है जो राम के पद में प्रीति नहीं लगाता और इतना बड़ा मूढ़ है कि जिसके सुनने से अचरज होता है, अथवा हे मूढ़! इतना बड़ा अचरज देख सुनकर भी जो रामपद में प्रीति नहीं करता वह बड़ा अभागा है।

[२१५]

जायो कुल मंगन, बधावनो¶ बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

---

* पाठान्तर—कुजाति।

† पाठान्तर—अजाति।

‡ पाठान्तर—सत्य।

§ पाठान्तर—बाउ।

|| पाठान्तर—देखी।

¶ पाठान्तर—बधायो न।

बारे तेँ ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हैं चारि फल चारि ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को ।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तेँ गरु तृन तेँ तनक को ॥

अर्थ—मँगतों के कुल में जनमा हूँ। जन्म का बधावा न बजा, जन्म सुनकर माता-पिता दोनों को पाप का परिताप हुआ। छोटे से, द्वार द्वार ललचाता रोता फिरता हूँ, दीन हूँ और चार चनों ही को चारों फल जानता हूँ अर्थात् चार चने मिल जाने से जानता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फल मिल गये। सो तुलसी समर्थ साहब का अच्छा सेवक है, जिससे की हुई सेवक की प्रशंसा को सुनकर ब्रह्मा से गणितज्ञ को भी शोच होता है अथवा जिसे सुनकर ब्रह्मा सराहना करते हैं और शोच करने लगते हैं कि यह इतना बड़ा कैसे हो गया। हे राम ! आपका नाम सयाना है या बावला है जो तिनके से भी हलके को पहाड़ सा भारी करता है।

[२१६]

बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
रामनाम ही सौं रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है ॥
छाछी को ललात जे ते रामनाम के प्रसाद
खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम राम ! रावरे तौ चाम की चलाई है ॥

अर्थ—वेद और पुराण में भी लिखा है और संसार में देखने में भी आता है कि सब भलाई रामनाम पर रीझती है अथवा रामनाम के रीझने पर सब भलाई होती है। काशी मरने के समय भी शिवजी यही उपदेश करते हैं और अनेक

साधनों को उन्होंने न तो देखा न उनको चित्त में लाया। मट्ठे का लालच करता हूँ जब कि रामनाम के प्रसाद से सब (खुनसें) एंव (सोधे) दूर होकर दूध की मलाई खाने को मिलती है अथवा जो छाछ का लालच करते थे वे तुलसीदास रामनाम के प्रसाद से दूध की सोंधी मलाई खाने में खुनसाते हैं (ख़फ़ा होते हैं)। राम के राज्य में राजनीति की हद सुनी जाती है, परन्तु हे राम! आपके नाम ने तो चाम की (नौका पानी पर) चलाई है, अथवा चाम (का सिक्का) चलाया है अथवा चाम (की धौंकनी, शरीर) को चलाया (सञ्जीवित कर दिया) है।

[२१७]

सोच संकटनि सोच संकट परत,
जर जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाव बिधि बाम को॥
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग
जागत, आलसि तुलसी हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥

अर्थ—शोच और सङ्कट भी शोच और सङ्कट में पड़ते हैं। जर (ज्वर अथवा जरा, बुढ़ापा) जल जाता (नष्ट हो जाता) है अथवा जर्जर (नष्ट) हो जाता है। यह प्रभाव ललित (सुन्दर) ललाम (माथेवाले) मुकुटमणि रामचन्द्र के नाम का है। डूबी हुई नाव भी तैरने लगती है और बिगड़ी हुई बात भी सुधर जाती है। रामनाम की बात होते ही देखकर क्रूर विधि (ब्रह्मा) का स्वभाव भी दाहिना हो जाता है। अभाग्य भाग जाता है, वैराग्य में भी प्रेम आ जाता है और तुलसी से बेकाम आलसी का भी भाग्य जाग जाता है। रामनाम के जपने से आई हुई मृत्यु भी लौट जाती है, धावा करने अर्थात् चढ़कर आई हुई धारि (फ़ौज) भी लौट जाती है, गोहारि हितकारी होती है।

[२१८]

आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में।

गिरो हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय हाय करत परी गो कालफँग में ॥
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो
नाम के प्रताप, बात बिदित है जग में ।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमै ॥

अर्थ—अन्धा, नीच, मूर्ख और जरा (बुढ़ापे) से जर्जर (टूटे हुए) (बुड्ढे) यवन (मुसलमान) को शूकर के बच्चे ने रास्ते में ढकेल दिया। वह हृदय में घबरा-कर गिरा, हाय हाय करने लगा कि हराम, हराम (सुअर के बच्चे) ने मारा। ऐसी ही दशा में काल के फन्दे में पड़ गया। हे तुलसी ! सो शोक-रहित होकर त्रिलोक-पति के लोक को गया, सो केवल नाम (राम) ही के प्रताप से, यह बात जगत् में विदित है। वही रामनाम है जिसे दास बड़े प्रेम से जपते हैं और जिसकी अथवा जो दास उसी रामनाम को प्रेम-पूर्वक जपते हैं उनकी महिमा वेद से भी नहीं गाई जाती।

[२१९]

जाप की न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तनको ।
भाई को भरोसो न, खरोसो बैर बैरी हू सों,
बल अपनो न, हितू जननी न जन कौ ॥
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देव सेवा न सहाय, गर्ब धाम को न धन को ।
राम ही के नाम तें जो होइ सोइ नीको लागै,
ऐसोई सुभाव कछु तुलसी के मन को ॥

अर्थ—मैंने न जप किया है, न तप सहन किया, न योग किया, न यज्ञ, न वैराग्य, न त्याग, न तनिक (ज़रा भी) तीर्थ ही किया। न भाई से भरोसा है, न बैरी से बड़ा बैर, और न अपना बल है। न माता पिता का प्रेम है, न दुनिया का डर है, न परलोक का शोच, न देवता की सेवा की है जिससे उनकी सहायता होती, न धाम का

गरूर है न धन का। राम ही के नाम से जो होता है वह मुझे अच्छा लगता है। तुलसी के मन का कुछ ऐसा ही स्वभाव हो गया है।

शब्दार्थ—न तमाइ जोग = न योग की तमअ (लालच) है अथवा न तमअ (लालच करने) के योग्य है।

[२२०]

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरी गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तरिबे को,
बैठे उठे जागत बागत सोये* सपने॥
तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय कीजिए जु अपने।
जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे,
ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने॥

अर्थ—न ईश, न गणेश, न सूर्य्य, न कुबेर, न इन्द्र, न देवता, न पार्वती और न शिव को जपता हूँ। दुनिया से तरने के लिए तुम्हारे ही नाम का भरोसा है। बैठते-उठते, जागते-फिरते, सोते और सपने में यदि तुलसी बावला है तो भी तुम्हारा है। आपकी क़सम यह जानकर अपने मन में आप भी उसे (उसका स्थान) कीजिए, अथवा यह अपने मन में जानकर (अपने दासों) में कीजिए अर्थात् अपनाइए। हे मेरे जानकी-नाथ! आपके मुँह फेर लेने से ऐसे निपट अकेले का न कहीं ठिकाना है, न कोई सँभालनेवाला है। सब निरपने अर्थात् बिराने हैं।

[२२१]

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिए बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥

* पाठान्तर—सुख।

तुलसी तिहारो मन वचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥

अर्थ—यह बात संसार में ज़ाहिर है कि ज़माना ऐसा बुरा हो गया है कि कामधेनु बेचकर लोग गधी मोल लेते हैं। हे दयालु! ऐसे कराल कलियुग में भी तेरे नाम के प्रताप से तीनों ताप देह को नहीं जलाते हैं। हे राम! तुलसी तुम्हारा मनसा, वाचा, कर्मणा दास है, इस नाते से भी अपनी ओर से प्रीति निबाहिए। हे दरिद्रों पर कृपा करनेवाले रघुराज! हे राजाओं के राजा! हे महाराज! तुम्हारी उमर बड़ी चाहिए।

[२२२]

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है।
नाम के प्रताप, बाप! आज लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है॥
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव!*
पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु है।
तुलसी की, बलि, बार बार ही सँभार कीबी
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है॥

अर्थ—स्वार्थ में बुद्धिमत्ता और प्रपञ्च में परमार्थ है, परन्तु मैं आपका कहाता हूँ—यह दुनिया में ज़ाहिर है। हे बाप! आपके नाम के प्रताप से आज तक तो अच्छी रही और आगे के लिए स्वामी बुद्धिमान् और बलवान् है। कलियुग की कुचाल को देखकर प्रतिदिन दूना पहरा दूँगा, क्योंकि चोरों को देखकर मन डरता है अथवा हे देव! काल की कुचाल को दिन-दिन दूनी देखकर और चौकीदार को ही चोर जानकर हृदय में भय होता है। हे महाराज! तुलसी की बार-बार सँभाल करना, यद्यपि आप सदा ही सावधान हैं (तथापि याद दिलाता हूँ)।

---

* पाठान्तर—देब।

[२२३]

दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड
काल की करालता भले को* होत पोचु है॥
आपने तौ एक अवलंब अंब डिंभ ज्यों†,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है।
तुलसी की साहसी सराहिए कृपालु, राम!
नाम‡ के भरोसे परिनाम को निसोचु है॥

अर्थ—यह देखकर कि दिन-दिन दुनिया में (दूना) दारिद्र्य बढ़ता है, अकाल पड़ता है, दुःख और पाप जल्दी-जल्दी बढ़ता है, सुख और पुण्य घटता है, पापीजन काल की करालता से माँगे पैंत (दाँव) पाते हैं और भले को पोच (बुरा) होता है; जैसे बच्चे को एकमात्र सहारा माँ का होता है वैसे ही मुझे तो एक ही अवलम्ब समर्थ सीतानाथ का है जो सङ्कट से छुड़ानेवाले हैं। हे कृपालु राम! तुलसी के साहस को सराहिए कि उसे नाम के भरोसे पर परिणाम का कुछ सोच नहीं है।

[२२४]

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सों,
बिसारि बेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत कछु,
काहू की सहत नाहिँ, सरकस हेतु है॥
तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिल तेँ
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।

* पाठान्तर—पै।

† पाठान्तर—अम्बई भज्यौ।

‡ पाठान्तर—राम।

जैबे की अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की,
जो पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है ॥

अर्थ—मोह के मद से मस्त और कुबुद्धि होकर कुलटा स्त्री रूपी कुमति से—वेद और लोक-लाज को छोड़कर—प्रीति लगाई है, सो आकरा (गहरा, निपट) अचेत है, जो जी चाहता है सो करता है, जो मुँह में आता है सो बकता है, किसी की कुछ नहीं सहता, बड़ा सरकस है। तुलसी अजामिल से भी अधिक नीच है और उस पर भी कलियुग, जो कपट का घर है, सहाय है। जाने की हज़ार बात है, होने की एक, जो पेट-रूपी प्रिय पुत्र के प्रेम से रामनाम लेता है।

[२२५]

जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय,
दुख रोग रोइए कलेस कोह काम को।
राजा रङ्क, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को॥
तुलसी कबंध कैसो धाइबो बिचारु, अंध!*
धंध देखियत जग सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,
जागिबो जो जी जपै नीके रामनाम को।

अर्थ—सचेत रहिए, सोइए नहीं, जन्म को न बिगाड़िए, नहीं तो क्रोध और काम के दुःख से दिन भर रोया कीजिएगा। राजा दरिद्री है, वैरागी रागी (भोग करनेवाले) हैं, बड़े भाग्यशाली भी अभागे हैं, इन सबसे जी जलता है, अथवा राजा, दरिद्री, वैरागी, रागी, भाग्यवान्, अभागे सब जीव कलि के प्रभाव से जलते रहते हैं। यह सब कुटिल कलि का प्रभाव है। विचारकर देखने से ज्ञात होता है कि सिर कटे धड़ के समान बेसुध जगत् दौड़ता है, अँधाधुन्ध जगत् में दिखाई देता है अथवा हे अन्धे! (झूठे) जग के धन्धे को देख। (उसमें मन लगाते हैं) यह देखकर तुलसी को परिनाम का सोच है। सोना वही है जिससे राम के प्रेम की समाधि हो और जागना वही अच्छा है जो रामनाम को जीभ जपती रहे।

---

* पाठान्तर—अंध-।

[२२६]

बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है ।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान
बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है ॥
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है ।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है ॥

अर्थ—वर्ण धर्म गया, और सब आश्रम के लोगों ने अपना स्थान (पद) छोड़ दिया, उ से चकित होकर परावना (भगी) सी पड़ी है । काम, उपासना (भक्ति) और ज्ञान की बुरी इच्छाओं ने कर्म आदि का नाश किया। वचन (बातों में) वैराग्य है, और वेश ने मानो जगत् को हर लिया है । गोरख ने योग जगाया, सो राम की भक्ति, वेद की आज्ञा से, लोगों को भगाया, सो मानो खेलही में छला है । शरीर-मन-वचन से सहज ही से, हे तुलसी ! जिसे रामनाम का भरोसा है, उसी का भरोसा (सच्चा) है।

सवैया

[२२७]

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है ।
काल कराल नृपाल कृपालन राज-समाज बड़ोई छली है ॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है ।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है ॥

अर्थ—वेद और पुराण के सन्मार्ग को छोड़कर करोड़ों कुमार्ग चले हैं, कराल काल है, राजा दयालु नहीं है और राजसमाज बड़ा छली है । वर्ण-विभाग नहीं रहा, न अब आश्रम धर्म है । दुःख, दोष और दरिद्र ने दुनिया को नष्ट कर डाला । स्वार्थ और परमार्थ के लिए रामनाम बड़ा बलवान् है ।

[२२८]

न मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ सब लागत फोकट झूँठ जटो॥
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिय तो रसना निसि-बासर राम रटो॥

अर्थ—संसार का सङ्कट बड़ा कठिन है, मिटता नहीं, चाहे कितना ही तप क्यों न करो और तीर्थ में अनेकों जन्म तक क्यों न फिरो। कलियुग में न कहीं वैराग्य है, न ज्ञान, सब फिज़ूल झूठ से जड़ा हुआ देखने मात्र ही को है। नट की भाँति पेट के पिटारे के लिए करोड़ों चेटक और तमाशों का ठाट मत रचो। तुलसी कहते हैं जो सदा सुख चाहिए तो जीभ से दिन-रात रामनाम रटो।

[२२९]

दम दुर्गम, दान दया मखकर्म सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तन को॥
कलिकाल कराल में, राम कृपालु! यहै अवलंब बड़ो मन को।
तुलसी सब संजम-हीन सबै, एक नाम अधार सदा जन को॥

अर्थ—दम, दान, दया, यज्ञ—ये सब काम मुश्किल हैं, सब सत्-धर्म धन के अधीन हैं। तप, तीर्थ, साधन, योग, वैराग्य बनता नहीं है। देह में इतनी दृढ़ता नहीं है। परन्तु कराल कलियुग में यही मन को बड़ा भरोसा है कि राम दयालु हैं। तुलसी के कोई संयम नहीं है। इस दास को सदा नाम ही का आधार है।

[२३०]

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी लही, करनी न कछू की।
राम-कथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ी उर आखर दू की॥

अर्थ—सुन्दर देह पाकर बेख़बर रहा, नदी में तरने को नौका न पाई, अथवा मोह की नदी में सुन्दर देह-रूपी नौका पाई, परंतु कुछ करनी न की, न कुछ

सुन्दर करनी की। राम-कथा को भी रचकर वर्णन न किया, न प्रह्लाद या ध्रुव की कथा को ही सुना। अब बुढ़ापा आया और गात जल गये, परन्तु मन ने ग्लानि मानकर अपनी कुबानि को न छोड़ा। तुलसी ने भलाई के लिए ठीक किया कि दो अक्षर (राम नाम) के अवलम्ब को उर में धारण किया।

[२३१]

राम विहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की।
नामहिं ते गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चलचूकी॥
नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु-बधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की॥

अर्थ—राम को छोड़कर 'मरा' जपने से कवि-कोकिल (वाल्मीकि) की बिगड़ी भी बन गई। नाम ही से गज, गणिका, अजामिल की भूल-चूक चली गई (माफ़ हो गई)। नाम के प्रताप से बुरी सभा में द्रौपदी की जाती हुई लाज रह गई अथवा कुसमाज में बजाय (डंके की चोट) रही। तुलसी ! जिसे दो अक्षर पर प्रेम और उनपर भरोसा है उसका आज भी भला है।

[२३२]

नाम अजामिल से खल तारन, तारन बारन बार बधू को।
नाम हरे प्रहलाद विषाद, पिता भय साँसति सागर सूको॥
नाम सों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को॥

अर्थ—नाम ने अजामिल से खल को भी तार दिया और वारण (हाथी) तथा गणिका का भी तारनेवाला नाम ही है। नाम ने प्रह्लाद के दुःख को हरा, जिससे पिता की साँसति (ताड़ना) और भय का सागर सूख गया। रामनाम के प्रेम और विश्वास से जो विहीन है उससे गिलो (झगड़ा) करने में कलिकाल नहीं चूकता अथवा कलिकाल रामनाम से विहीन को गिलो (लील लो), मत चूको। हे तुलसी ! राम उसे रखेंगे जिसका हृदय दो अक्षरों (राम) के नाम के बल पर प्रसन्न होता है।

[२३३]

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है ।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख-लेस लहो है ॥
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोऊ हिये, रसना ही कहो है ।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोई रहो है ॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि संसार में जहाँ जीव पैदा होता है वहीं तीनों दाह (ताप) से जला करता है, इसमें किसी का दोष नहीं है क्योंकि सब अपना ही किया हुआ है (पहले जन्मों के किये कर्मों का फल है) । मैंने तो सपने में भी लेश-मात्र भी सुख नहीं पाया। एक राम का नाम लेता हूँ जो हो सो हो, परन्तु राम-नाम भी मुँह से ही लेता हूँ, मन में वह भी नहीं लाता हूँ, न कुछ मैंने किया है, न कुछ करना है, न कुछ कहना है, बस मरना ही बाक़ी रह गया है ।

[२३४]

जीजै न ठाँउ, न आपन गाँउ, सुरालयहू को न संबल मेरे ।
नाम रटौं, जम-बास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे?॥
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौ मोकों ठाहरु हेरे।
बैरष बाँह बसाइए पै, तुलसी-घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥

अर्थ—जीने के लिए मेरे पास कोई जगह नहीं है, न अपना कोई गाँव है, स्वर्ग में जाने के लिए भी कोई साधन नहीं है । परंतु नाम रटता हूँ इसलिए यमलोक में क्यों जाऊँ, यम के नौकर मेरे पास क्यों आवेंगे । सब तरह तुम्हारा ही हूँ, तुम्हारी सौगन्ध है, तुम्ही मेरे लिए ठहरने (शान्ति पाने) के स्थान हो । अपनी शरण लेकर मुझे अपने ही झण्डे में बसाइए, तुलसी का घर ब्याध और अजामिल के खेड़े पर बसे ।

[२३५]

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई ?
ब्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि में ही जनाई ॥
करुनाकर की करुना करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई ।
काहे को खीजिय? रीझिय पै, तुलसीहु सों है, बलि, सोइ सगाई ॥

अर्थ—अजामिल ने क्या योग किया था और गणिका ने कब अपनी बुद्धि को प्रेम में पागा था? व्याध की सज्जनता का वर्णन कीजिए, वह तो उसके अगाध अपराधों में ही दिखाई देती है। रामचन्द्रजी दया ही के लिए दया करते हैं, जो दग़ा देते हैं (जो दग़ाबाज़ हैं) उनके लिए नाम ही अच्छा हित है। क्यों रूठते हो, प्रसन्न हूजिए, तुलसीदास से भी वही नाता है जो अजामिल आदि से था।

[२३६]

जे मद-मार-बिकार भरे ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में 'जन भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं'?
जो कछु बात बनाइ कहौं तुलसी तुम में तुम हूँ उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुम में, सक नाहीं॥

अर्थ—जो मद और कामदेव के विकारों से भरे हैं, आचार और विचार उनके पास भी नहीं जाते। फिर भी मन में अभिमान है क्या आपका दास दूसरे के सामने दीन वचन बोलेगा? तुलसीदास कहते हैं कि यदि तुमसे कोई बात बनाकर झूठी बात कहता हूँ तो तुलसी तो आप में है और आप तो हृदय ही में मौजूद हैं। हे रामचन्द्रजी! आप जानते हैं कि मैं तो आप ही का हूँ, आपमें कुछ सन्देह नहीं रखता हूँ, अर्थात् मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे अपनायेंगे; अथवा हम आप में हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

[२३७]

दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी।
जग जाचक दानि दुतीय नहीं तुमहीं सबकी सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भये हौ गरीबनेवाज गरीबनेवाजी॥

अर्थ—दानव, देवता, नाग, राजा, बड़े मुनि तपस्वी, सिद्ध और सामाजिक लोग संसार के भिखारी हैं। देनेवाला तुम्हारे सिवा कोई नहीं है। तुम्हीं सबकी लाज सब प्रकार से रखनेवाले हो। आप इतने बड़े हैं, हे रामचन्द्रजी, तब भी सबरी के दिये हुए फलों के बिना आपकी भूख नहीं मिटी। गरीबनिवाज रामचन्द्र! आप गरीबों पर दया करके ही ग़रीबनिवाज हुए हो।

घनाक्षरी

[२३८]

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल, नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेट की॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़बागि तें बड़ी है आगि पेट की॥

अर्थ—मज़दूर, किसान, बनिये, भिखारी, भाट, नौकर, नट, चोर, चार (हलकारे) बाज़ीगर, पेट ही के लिए लोग विद्या सीखते हैं और गुणों को गढ़ते हैं (पैदा करते हैं), पहाड़ों पर चढ़ते हैं, घने जंगलों में शिकारी शिकार की तलाश में फिरते हैं, भले बुरे कर्म, धर्म और अधर्म करते हैं और लड़के-लड़कियों को बेचते हैं। यह सब पेट के लिए करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि एक घनश्याम रामचन्द्रजी से बुझती है, पेट की आग तो बड़वानल से भी बड़ी है।

[२३९]

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,
बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान* सोच बस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी"?॥
बेद हूँ पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबैं† पै राम रावरे कृपा करी।

---

* पाठान्तर—विद्यमान।

† पाठान्तर—समै।

दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु !
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥

अर्थ—किसान को खेती नहीं है, न भिखारी को भीख मिलती है, न बनिये का व्यापार है और न नौकर की नौकरी है। जीविका से हीन लोग पीड़ित होकर शोच में पड़े रहते हैं और परस्पर यही कहते हैं कि क्या करें? कहाँ जायँ? वेद और पुराण में भी कहा है और संसार में भी दिखाई देता है कि संकट में, हे राम! आप ही कृपा करते हैं। अब दुनिया को दरिद्र-रूपी रावण ने दबा लिया है, हे दीनबन्धु! आपको पापों से बचानेवाला देखकर तुलसी ख़ुशामद करता है (जल्द बचाओ)।

[२४०]

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन,
जोबन जरत जुर,❀ परै न कल कहीं।
राज काज कुपथ कुसाज, भोग रोग ही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबश बलकहीं ॥
गति तुलसीस की लखै न कोउ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ। पलकहीं।
कासों कीजै रोष? दोष दीजै काहि? पाहि राम!
कियो कलिकाल कुलि खलल खलकहीं ॥

अर्थ—कुल, काम, ऐश्वर्य्य, कीर्ति, स्वरूप, गुण और यौवन के मद-रूपी ज्वर में (संसार के सब जीव) जल रहे हैं, कहीं कल नहीं पड़ती। राज-काज ही कुपथ्य और कुसाज है, भोग रोग (ज्वर) के बढ़ाने के लिए ही होता है। वेद पढ़कर और विद्या पाकर पण्डित व्यर्थ ही वाद करते हैं। तुलसीश (राम) की गति को कोई नहीं देखता, जो क्षण में वज्र से क्षार और क्षार से वज्र करते हैं। किस पर क्रोध किया जावे और किसे दोष दिया जावे, हे राम! आप ही बचाइए, कलियुग ने सब संसार ही में गड़बड़ी मचा दी है।

❀ पाठान्तर—परत न कछू कहीं।

पाठान्तर— । तुरत पविसो करत छार पवि सो।

[२४१]

बबुर बहेरे को बनाइ बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है।
गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हूँ को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है॥
आप महापातकी हँसत हरि हरहू को,
आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत है।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत*,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है॥

अर्थ—बबूल और बहेरे का बाग़ बना-बनाकर लगाया जाता है और उसके रूँधने के लिए (काँटों की जगह) कल्पवृक्ष काटा जाता है। हरिश्चन्द्र और दधीचि को भी नीच गाली देते हैं, यद्यपि अपने चना चबाकर हाथ चाटते हैं (चना भी पेट भर नहीं पाते हैं)। ख़ुद महापापी हैं, किन्तु विष्णु और महादेव की भी हँसी उड़ाते हैं। स्वयं अभागे हैं, परन्तु भाग्यवानों को डाटते हैं। कलियुग पापी ने मन ऐसे मैले किये हैं कि मच्छड़ की पसुरियों से समुद्र पाटते हैं।

[२४२]

सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम!
जाहि घालो चाहिए कहो धौं राखै ताहि को।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारों ढारों रावरो न,
मैं हूँ तैं हूँ ताहि को सकल जग जाहि को॥
काम कोह लाइ कै† देखाइयत आँखि मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को ?।
साहिब सुजान जिन स्वान हूँ को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को॥

---

* पाठान्तर—कहत।

† पाठान्तर—को हलाइ।

अर्थ—हे कठिन राजा कलि ! सुनो, जिसे तुम मारना चाहो उसे कौन रख सकता है ? मैं तो दीन और दुर्बल हूँ। आपका न कुछ बिगाड़ता हूँ, न ढारता हूँ (गिराता हूँ या बनाता हूँ)। मैं और तुम दोनों उसी के हैं जिसका सकल जग है। काम को हलाकर (झण्डी की तरह दिखाकर) अथवा काम और क्रोध मन में लाकर मुझे आँख क्यों दिखाते हो ? मेरे मान को उलटा करनेवाले अथवा इतना विरोध करनेवाले आप कौन हैं ? मैं तो "रामबोला" नाम रामचन्द्र राजा का नौकर हूँ, जो सुजान मालिक अपने कुत्ते का भी पक्ष करते हैं।

सवैया

[२४३]

साँची कहौं कलिकाल कराल मैं, डारो बिगारो तिहारो कहा है ?।
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहि सों आनि प्रपंच रहा है॥
हौं जगनायक लायक आजु पै मेरियौ टेव कुटेव* महा है।
जानकीनाथ बिना, तुलसी, जग दूसरे सों करिहौं न हहा है॥

अर्थ—सच कहो, हे कराल कलियुग ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो काम, क्रोध, मोह और लोभ को लाकर मुझसे ही प्रपंच रचा है ? आप आज जगनायक (राजा) के लायक़ हैं। परन्तु तुलसीदास कहते हैं कि मेरी भी तो यह बड़ी बुरी टेव है कि सिवा जानकीनाथ के दूसरे से याचना न करूँगा।

[२४४]

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।
मोको न लेनो न देनो कछू, कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं॥
जानि कै जोर करौं परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्योंहीं तिहारे हिये न हितैहौं॥

अर्थ—गङ्गा का जल पीता हूँ और श्री राम का नाम दो बार लेता हूँ। मुझे किसी से न लेना है, न देना। हे कलि ! आपकी ओर मैं भूलकर न देखूँगा। ऐसा जानकर भी प्रणाम करता हूँ अथवा ऐसा जानकर चाहे जितना जोर करो अन्त में तुम्हीं

---

* पाठान्तर—देव।

पछताओगे; अथवा चाहे जितना पछताऊँ परन्तु मैं तुमसे डरूँगा नहीं। जैसे ब्राह्मण को गरुड़ ने उगल दिया था वैसे मैं भी तुम्हारे पेट में कभी न ठहरूँगा।

[२४५]

राज मराल के बालक पेलिकै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को॥
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को॥

अर्थ—राजहंस के बच्चे को हटाकर खूसट को पालते हैं, अच्छे पवित्र चावल को छोड़कर ऊसर का बीज बटोरते हैं, गुण और ज्ञान का बड़ा भड़हल है अथवा ज्ञान और गुण का बड़ा अहंकार है कि मूसर के लिए कल्पद्रुम को काटते हैं। कलियुग में आचार-विचार सब नष्ट हो गया, बड़ा कौन है यह दिखाई नहीं देता अथवा बेवकूफ़ को कुछ नहीं दिखाई देता।

[२४६]

कीबे कहा, पढ़िबे को कहा फल ? बूझि न बेद को भेद बिचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलिकामद राम को नाम बिसारै॥
बाद-बिबाद बिषाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै।
चारिहू को छहु को नव को दश आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै॥

अर्थ—क्या किया जावे, पढ़ने ही का क्या फल है, यदि वेद का भेद समझ-बूझकर न विचारा और स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों देने के लिए कामधेनु समान रामनाम को यदि छोड़ दिया, वाद-विवाद और द्वेष बढ़ाकर अपनी और पराई छाती को जलाया, चारों वेद, छहों शास्त्र, नव व्याकरण और अठारहों पुराण का पाठ सूखे काठ की तरह फाड़ा अर्थात् बेकार इधर-उधर खींच तानकर कुछ न कुछ मतलब निकाला ?

[२४७]

आगम बेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईस कहावत सिद्ध सयाने॥

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥

अर्थ—वेद, शास्त्र, और पुराण करोड़ों धर्म के मार्गों का वर्णन करते हैं जिनका कुछ पता नहीं चलता; जो मुनियों के समूह हैं वे अपने आप को ईश्वर, सिद्ध और सयाने कहलवाते हैं। जितने धर्म हैं उन सबको कलियुग ने पकड़ रक्खा है, और जप और योग सब अपने-अपने प्राण लेकर भाग गये हैं। तुलसी कहते हैं कि शोच करके कौन मरै, हम तो श्रीरामचन्द्रजी के हाथ बिक चुके।

[२४८]

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
का की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ*।
माँगिके खैबो मसीत† को सोइबो लैबे को एक न देवे को दोऊ॥

अर्थ—चाहे कोई धूर्त बतावे या अवधूत (फ़क़ीर) कहै या रजपूत कहै, किसी की लड़की से मुझे लड़का ब्याहकर उसकी जात नहीं बिगाड़ना है। तुलसी तो राम का ग़ुलाम प्रसिद्ध है, जिसका जो जी चाहे सो कहै; माँगकर खाता है, मज़े से सोता है। उसे न लेना एक है न देना दो। (अन्य पाठ मजीत को सोइबो अर्थात् मसजिद जहाँ सब की गम्य है ऐसे स्थान पर सोना।)

घनाक्षरी

[२४९]

मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
साहही कौ गोत गोत होत है गुलाम को।

---

* पाठान्तर—सोऊ।

† पाठान्तर—मजीत।

साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
काहूके द्वार परौं जो हौं सो हौं राम को ॥

अर्थ—मेरी कोई जाति-पाँति नहीं है, और न मैं किसी की जाति-पाँति चाहता हूँ; न कोई मेरे काम का है, न मैं किसी के काम का; लोक-परलोक सब रामचन्द्र के हाथ है। तुलसी को एक राम नाम ही का भारी भरोसा है। लोग बड़े बेशऊर हैं जो इस कथा को नहीं जानते हैं कि साह (मालिक) का गोत ही ग़ुलाम का गोत होता है। साधु हूँ तौ, असाधु हूँ तौ, भला हूँ या बुरा, किसी को क्या मतलब? क्या मैं किसी के दरवाज़े पर पड़ा हूँ? जो हूँ, राम का हूँ।

[२५०]

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल,
बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब है॥
चाहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सबकी सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति* दूब है॥

अर्थ—बाज़ लोग कहते हैं कि मैं बड़ा दग़ाबाज़ हूँ, कुसाज अर्थात् धोखा देने की बुरी सामग्री इकट्ठा करता हूँ, और बाज़ लोग कहते हैं कि ख़ूब रामचन्द्र का भक्त हूँ; मुझे साधु भला जानते हैं, खल महाखल, करोड़ों तरह की झूठी-सच्ची बातें मेरे लिए पानी कैसे बुदबुदे की तरह उठती हैं (कही जाती हैं)। न मैं किसी से कुछ चाहता हूँ, और न किसी से कुछ कहता हूँ, सब की सहता हूँ। मेरे मन में कुछ ऊब नहीं है यानी सहते-सहते थका नहीं हूँ। तुलसी का भला और बुरा रघुनाथ के हाथ है, राम की भक्ति रूपी दूब मेरी देह रूपी भूमि में सब जगह विद्यमान है।

---

* पाठान्तर—सब

[२५१]

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥
जागैं बुध बिद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोगही बियोगी रोगी सोगबस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के॥

अर्थ—योगी जन, जंगम (शिव-उपासक), और यतियों की जमाति जो सदा ईश्वर का ध्यान करते हैं और जो लोभ, मोह, क्रोध, काम से डरते हैं सदा जागा करते हैं। राजा लोग राज-काज के लिए और उनके सेवकगण वैरी के समाचार सुनकर सोच में पड़कर जागा करते हैं। विद्या के लिए पण्डित लोग चकित चित्त होकर जागते हैं और लोभी जन धन और धरती की लालच में जागा करते हैं; भोगी भोग के लिए, वियोगी विरह में, रोगी रोग के वश जागते हैं; तुलसीदास राम के भरोसे सुख से सोता है।

छप्पै

[२५२]

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति-पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति* ॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तेँ सकल फल।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक राम तेँ मोर भल॥

---

* पाठान्तर—मति

अर्थ—राम मेरे माता, पिता, बंधु, सुजन, गुरु, पूज्य और परमहितैषी हैं, मालिक सखा और सहायक हैं, उन्हीं से पवित्र चित्त का नाता है। देश, ख़ज़ाना, कुल, कर्म, धर्म, धन, धाम, धरती, गति, जाति-पाँति सब उन्हीं की है और उन्हीं में सब तरह हमारी बुद्धि लगी है अथवा उन्हीं को हमारी लाज है। परमार्थ, स्वार्थ, यश और सब फल राम से सुलभ हैं। तुलसीदास कहता है कि अब और तब (भूतकाल) में और जब (भविष्यत्) में एक राम ही से मेरा भला है।

[२५३]

महाराज बलि जाउँ रामसेवक सुखदायक।
महाराज बलि जाउँ राम सुन्दर सब लायक॥
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन।
महाराज बलि जाउँ रामराजीव-बिलोचन॥
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल तुलसिदास राखिय सरन॥

अर्थ—हे महाराज! आपकी बलि जाऊँ, हे राम, सेवक को सुख देनेवाले! हे महाराज, आपकी बलि जाऊँ, हे राम! आप सुंदर और सब लायक हैं, हे राम! हे कमल-लोचन! हे महाराज! आपकी बलैया लूँ, हे राम, संकट से छुड़ानेवाले! हे राम! आपकी बलायें लूँ, हे दया के घर! हे शरणागत के पाप को हरनेवाले! हे राम! आपकी बलैया लूँ; कलि के भय से विकल तुलसीदास को अपनी शरण रखिए।

[२५४]

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मान-हर।
मुनि-मख-रच्छन-दच्छ, सिला-तारन करुनाकर॥
नृप-गन-बल-मदसहित संभु-कोदंड-बिहंडन।
जय कुठार-धर-दर्प-दलन, दिनकर-कुल-मंडन॥
जय जनक-नगर-आनंद-प्रद सुखसागर सुखमा-भवन।
कह तुलसिदास-सुर-मुकुट-मनि जय जय जय जानकि-रवन॥

अर्थ—जय ताड़ुका और सुबाहु के मथनेवाले, जय मारीच के मान को हरनेवाले, मुनि के यज्ञ की रक्षा करनेवाले, शिला-रूप अहिल्या को तारनेवाले, करुणा के करनेवाले जय। जय राजाओं के बल और मद को शंभु के धनुष के साथ तोड़नेवाले, आनंद देनेवाले, जय परशुराम के दर्प (ग़ुरूर) को नाश करनेवाले, जय-जय सूर्यकुल के आभूषण, जय मिथिला को सुख के समुद्र, सुंदरता के घर, तुलसीदास कहते हैं जय! देवताओं में मुकुट-मणि (श्रेष्ठ) जय! जय, जानकी-रमण जय।

[२५५]

जय जयंत-जय-कर, अनंत, सज्जन-जन-रंजन।
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भय-भंजन॥
जय निसिचरी बिरूप - करन रघुबंस - बिभूषन।
सुभट-चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर-दूषन॥
जय दंडकबन-पावन-करन तुलसिदास संसय-समन।
जग बिदित जगत-मनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन॥

अर्थ—जयन्त को जीतनेवाले, तुम्हारी जय। हे अनन्त! हे सज्जनों को प्रसन्न करनेवाले! जय, विराध के मारने की रीति को जाननेवाले, जय। देवता और मुनियों के भय को नष्ट करनेवाले, जय। राक्षसी (शूर्पनखा) को कुरूप करनेवाले, जय! हे रघुवंशियों में अलंकार जय! चौदह हज़ार योधाओं सहित खर-दूषण और त्रिशिरा को मारनेवाले जय! दण्डक वन को पवित्र करनेवाले और तुलसीदास के सन्देहों को दूर करनेवाले, जय। जग में प्रसिद्ध जगत् के मणि, जय! हे जानकी-रमण जय।

[२५६]

जय माया-मृग-मथन गीध - सबरी - उद्धारन।
जय कबंध-सूदन बिसाल - तरु - ताल - बिदारन॥
दवन-बालि-बल-सालि, थपन सुग्रीव संत हित।
कपि-कराल-भट-भालु कटक-पालन, कृपालु-चित॥
जय सिय-बियोग-दुख-हेतु-कृत-सेतु-बंध बारिधि-दमन।
दससीस बिभीषन-अभय-प्रद जय जय जय जानकि-रमन॥

अर्थ—माया-मृग के मारनेवाले ! जय। गीध और शबरी का उद्धार करनेवाले ! जय। कबन्ध को मारनेवाले और बड़े ताल वृक्षों को वेधनेवाले ! जय। बली बालि को नष्ट करनेवाले और संतों के हित करनेवाले, सुग्रीव को स्थापन करनेवाले ! जय। विकराल बन्दरों और रीछों की सेना के पालक, हे कृपाल चित्त ! जय। सीताजी के वियोग के दुःख को दूर करने के लिए समुद्र में सेतु (पुल) बाँधनेवाले ! जय। हे दशशीश का नाश करनेवाले, हे विभीषण को अभय करनेवाले अथवा रावण के भय से डरे हुए विभीषण को अभय करनेवाले, हे जानकी-रमण ! जय, जय।

[२५७]

कनक कुधर-केदार, बीज सुंदर सुर-मनिवर।
सींचि काम-धुक-धेनु सुधामय पय बिसुद्ध तर॥
तीरथ-पति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकत मय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि॥
कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तव कर सरिस॥

अर्थ—सोने के पहाड़ (सुमेरु) का केदार (थाल्हा) हो, सुंदर सुरमनिवर (चिंतामणि) का बीज हो और उसे देवता और श्रेष्ठ मुनि कामधेनु के अति पवित्र अमृतमय दूध से सींचें, और तीर्थपति अंकुर स्वरूप उससे उत्पन्न हों, यक्षेश (कुबेर) उसकी रक्षा करें, मानिक और मुक्तादिक मणि उस वृक्ष के शाखा और पल्लव हों और लक्ष्मी मञ्जरी हों, ऐसा कैवल्य और संपूर्ण फलों का देनेवाला कल्पतरु सुंदर स्वभाव से सब सुख का बरसानेवाला हो तब भी, तुलसीदास कहते हैं, क्या वह रामचन्द्र के हाथ के समान हो सकता है ?

[२५८]

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाइ बिषय-बासना न छंडै॥
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महिं।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं॥

सुत जाय मात-पितु-भक्ति बिन, तिय सो जाय जेहि पति न हित।
सब जाय दास तुलसी कहै जो न रामपद नेह नित॥

अर्थ—वह सुभट गया जिसने रण में समर्थ योधा पाकर लड़ाई न की। वह भी जाय (नष्ट होवे) जो यति कहाकर विषय-वासना को नहीं छोड़ता। वह धनी जाय जो दान नहीं करता और वह निर्धनी जाय जो धर्म नहीं करता। वह पंडित जाय जो पुराण पढ़कर सुकर्म नहीं करता, वह लड़का जाय जो माता पिता का भक्त नहीं है, और वह स्त्री जाय जो पति का हित नहीं करती, और वह सब जायँ, तुलसीदास कहते हैं, जो रामचन्द्र के चरणों में नित प्रेम नहीं करते।

[२५९]

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हों?॥
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि नयन सर।
लोचन जुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कौन नर?॥
सुर-नाग-लोक महि-मण्डलहु को जु मोह कीन्हों जय न।
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राखि राम राजिवनयन॥

अर्थ—किसको क्रोध ने नहीं जलाया और काम ने किसको बस में नहीं किया? किसको गहरे फन्दे में बाँधकर लोभ ने त्रास नहीं दिया? किस हृदय में स्त्री के नयनों का कड़ा तीर नहीं लगा, कौन मनुष्य ममता पाकर आँख रखते भी अंधा नहीं हो गया? सुरलोक और नागलोक में तथा पृथ्वी पर कौन है जिसको मोह ने नहीं जीता? तुलसीदास कहते हैं कि वही मनुष्य बचता है जिसे कमल-नयन श्री राम रक्खें।

सवैया

[२६०]

भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाँचे।
नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुवीर के सेवक साँचे॥

अर्थ—कौन ऐसे हैं जो स्त्री की भौंह रूपी कमान के ठने हुए चितवन रूपी बाण-संधान से बचे, कोप रूपी अग्नि और गुमान के अँवा से जिसके मन रूपी घड़ा में आँच न लगे, जैसे नर बंदर को नचाता है वैसे लोभ के वश जो जग में बहुत नाच न नाचे हों ? हे तुलसी, सभी साधु भले हैं परंतु उनमें भी वही अच्छे हैं जो रघुवीर के सच्चे सेवक हैं।

घनाक्षरी

[२६१]

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ*,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाइ करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की॥
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनाहिं
मानस निवास-भूमि लोभ मोह काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की!॥

अर्थ—अच्छा वेश बनाकर और धीरे-धीरे अमृत से मीठा वचन बोलकर भी धन, पद और भूमि की इच्छा से उत्पन्न जलन नहीं जाती। करोड़ों उपाय करके देह को पाला जाता है और मुँह से यह कहा जाता है कि रामनाम ही की गति है। दिखाने को तो उपासना (भक्ति) करते हैं और बुरी बुरी इच्छाओं को उस मन में छिपाते हैं जो कि लोभ, मोह और काम के रहने की भूमि है; राग, रोष, ईर्ष्या और छल-कपट से भरे हुए तुलसी से भक्त, राम की भक्ति को इच्छा करते हैं सो कहाँ मिल सकतो है ?

[२६२]

"काल्हि ही तरुन तन, काल्हि ही धरनि धन,
काल्हि ही जितौंगो रन कहत कुचालि है।

---

* पाठान्तर—चुपाइ।

कालिहही साधेंगो काज, कालिहही राजा समाज,
मसक ह्वै कहै "भार मेरे मेरु हालि है ॥"
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई
घने घर घालति है, घने घर घालि है।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न "कालहू को काल कालिह है ॥"

अर्थ—कल ही युवावस्था हो, कल ही पृथ्वी और धन मिल जावे, कल ही रण जीत लूँ, ऐसी बुरी बुरी चाल सदा मन में रहा करती है। कल ही काम करूँगा, कल ही राजा का सा सामान इकट्ठा करूँगा, मच्छड़ का सा होकर भी कहता है कि मेरे बोझ से मेरु हिलेगा। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी ही कुभाँति (दुर्वासना) ने बड़े-बड़े घरों को नष्ट किया है, बड़े घरों को नष्ट कर रही है और बड़े घरों को नष्ट करेगी। सो देखते, सुनते, जानते भी नहीं सुझाई देता और यह (किसी ने) कभी नहीं कहा कि मरने का भी समय कल होगा।

[२६३]

भयो न तिकाल तिहूँलोक तुलसी सो मंद,
निंदै सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोग, हिय हानि मानौं, जानकीस !
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं ॥
पेट भरिबे के काज महाराज को कहायों,
महाराज हू कह्यो है प्रनत-बिमोचु हौं।
निज अघ-जाल, कलिकाल की करालता
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥

अर्थ—तीनों काल और तीनों लोक में तुलसी सा मन्द न हुआ, न है, न होगा, जिसकी सब साधु निन्दा करते हैं। वह निन्दा सुनकर भी कुछ संकोच नहीं करता है। मैं योग नहीं जानता हूँ। हे जानकीश! अथवा रामचन्द्र अपनी सेवा योग्य मुझे नहीं जानते, इसलिए मन घबराता है। मुझे क्यों परखा है अर्थात् मुँह लगाया है ?

अथवा इसका क्या उलहना है ? मैं तो पापी और प्रपञ्ची, पोच हूँ। पेट भरने के लिए हे महाराज ! मैं महाराज का कहाता हूँ, क्योंकि आपने स्वयं कहा है कि आप प्रणत (शरणागतों) को (भवबंधन से) छुड़ानेवाले हैं। अपने पापों के जाल और कलियुग की करालता को देखकर व्याकुल होता हूँ, यही सोच करता हूँ कि मेरा कैसे उबार होगा।

[२६४]

धरम के सेतु जग मंगल के हेतु,
भूमि-भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को॥
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
तुलसी तिहारो घर जायउ है घर को॥

अर्थ—धर्म के सेतु ने संसार का भला करने को और भूमि का भार हरने के लिए मनुष्य का अवतार लिया है। नीति, विश्वास और प्रीति को पालना आपका काम है, और हे रघुवर ! लोक और वेद का मान रखने का आपका प्रण है। सुग्रीव और विभीषण के कौन ऋणी हैं, जिसकी कथा सुनकर मेरा अंग जलता है कि मुझ पर क्यों नहीं प्रसन्न होते। अपनी रीति रखिए, जो हो सो कीजिए परन्तु तुलसी आपका है। क्या अपने घर फिर जाय ? अथवा भगा देने से घर चले जाने पर भी आपही के घर का है, अथवा आपही के घर का घर जाया (दास) है।

[२६५]

नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर,
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं॥

तुलसी बिलोकि कलिकाल की करालता,
कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हैां ।
लोक एक भाँति को, त्रिलोकनाथ लोकबस,
आपनो न सोच, स्वामी-सोच ही सुखात हैां ॥

अर्थ—भला मन में समझ तो देखो कि महाराज के नाम ने भलो निबाही, सबको अच्छा लगता है परन्तु मैं लोगों को अच्छा नहीं लगता, अथवा हे राम! महाराज के नाम ने जो नीकी निबाही सो मन में सबको भली लगती है, परन्तु मैं अच्छा नहीं लगता। हे राम! इसी बेर मेरी तरफ आँख फेरिए कि जिसके लिए मैं दरिद्रों की भाँति ललचा रहा हूँ। तुलसी कलिकाल की करालता को देखकर और महाराज से दयालु का स्वभाव समुझकर सकुचाता है कि लोक इस तरह का है, और महाराज, त्रिलोकीनाथ होने के कारण, लोक के वश में हैं। हे स्वामी, मुझे अपना सोच नहीं है। स्वामी के सोच से मैं तो सूखता जाता हूँ।

[२६६]

तौलौं लोभ, लोलुप ललात लालची लबार
बार बार, लालच धरनि धन धाम को ।
तबलौं बियोग रोग सोग भोग जातना को,
जुग सम लगत जीवन जाम-जाम को ॥
तौलौं दुख दारिद दहत अति नित तनु,
तुलसी है किंकर बिमोह कोह काम को ।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौलौं जन भयो न बजाइ राजा राम को ॥

अर्थ—तब तक लोभ और लालच, लालची और लबार (झूठे) को बार बार ललचाता है और धरती, धन और धाम का लालच दिखाता है, तब तक वियोग, रोग, शोक और दुःख के भोग से एक-एक पहर का जीना एक युग सा लगता है, तब तक दुःख और दरिद्र नित्य शरीर को अति ही जलाया करता है, और क्रोध, मोह और काम का चाकर बना रहता है, तब तक सब दुःख अपने होते हैं और सब सुख पराये, कि जब तक तुलसी राजाराम का सेवक ताल ठोक्कर नहीं हो जाता।

[२६७]

तबलौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।
तबलौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को॥
तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को।
जबलौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,
राजन को राजा सो तो साहब महेस को॥

अर्थ—उस समय तक मनुष्य मैला, दीन, सब बात से गिरा हुआ, सुख जिसे सपने में नहीं है, दुःखी और क्लेश का भाजन रहता है, उस समय तक नंगे पैर पेट दिखाता फिरता है, भीख माँगा करता है और मुँह बाये देश-देश का निरादर सहता है, उस समय तक कड़ा दुःख सहता है, दरिद्र और दयाभाजन रहता है, चटाई का सोना और फटे खेस का ओढ़ना रहता है जब तक कि मनुष्य जीभ से जानकी-जीवन राम का भजन नहीं करता जो राजाओं का राजा और महादेव का भी मालिक है।

[२६८]

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव! प्रान हूँ के प्रान हौ।
कालहू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हूँ के कर्म, निदानहु* के निदान हौ॥
निगम को अगम, सुगम तुलसीहू से को,
एते मान सीलसिंधु-करुणानिधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोल को न बारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ॥

* पाठान्तर—निदान।

अर्थ—ईशों के ईश, महाराजों के महाराज, देवताओं के भी देव और प्राणों के प्राण आप हैं। काल के भी काल और महाभूतों के महाभूत, कर्मों के कर्म और कारणों के भी कारण हैं। निगम (वेदों) के आप अगम (दुर्लभ) हैं और तुलसी से आदमी को भी सुलभ हैं। इतने बड़े पर भी शील और मान के सिंधु और करुणा के निधान (घर) हैं। आपकी महिमा अपार है, किसी बात का पार नहीं है, इतनी बड़ी साहिबी पाकर भी आप बड़े सावधान हैं।

सवैया

[२६९]

आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नामप्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक तें एक अनेक भये तुलसी तिहुँ तापन डाढ़े*।
प्रेम बदौं† प्रहलादहिँ को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े॥

अर्थ—दुखियों के पालक कृपालु राम को जो जहाँ याद करे उसके लिए वे वहीं मौजूद हैं। उनके नाम का प्रताप बड़ा और महिमा बड़ी है जिससे खोटे भी मँहगे या खरे हो गये और छोटे भी बढ़ गये। एक से एक अच्छे, बहुत से, राम के दास हुए, परन्तु तुलसी तीनों तापों से तपाया जा रहा है अथवा तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे एक से एक बड़े अनेक दास हुए जिनको तीनों तापों ने नहीं सताया। प्रेम प्रह्लाद ही का कहा जा सकता है। अथवा प्रह्लाद ही की बड़ाई है जिसके वश पत्थर से परमेश्वर निकले।

[२७०]

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ' 'सब ठाउँ हैं' 'खंभ में' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि‡ जागे॥
बैरि बिदारि भये बिकराल, कहै प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तबतें सब पाहन पूजन लागे॥

* पाठान्तर—ठाड़े।
† पाठान्तर—बड़ौ, बढ़ौ।
‡ पाठान्तर—हाँकनि केहरि।

अर्थ—पिता को नग्न तलवार हाथ में लिये और कृपारहित देखकर प्रह्लाद न भागे। पिता ने जब पूछा कि राम कहाँ है, तो उत्तर दिया, कि सब कहीं। "क्या खम्भ में है ?" "हाँ" ! ऐसा शब्द सुनकर नृसिंह जगे, वैरी को मारकर विकराल रूप धारण किया। केवल प्रह्लाद के कहने से प्रसन्न हुए। उस समय से प्रीति और विश्वास दोनों बढ़ गये और सब लोग पत्थर पूजने लग गये।

[२७१]

अंतर्जामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात बिये तें।
पैजु परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें॥

अर्थ—बाहरजामी अर्थात् घट से बाहर प्रगट होनेवाले अंतर्यामी से बड़े हैं, जो नाम लेने ही से दौड़े, जैसे हाल की ब्याई गाय बच्चे की आवाज़ सुनकर कान लगाकर दौड़ती है। तुलसी अपनी समुझ कहता है, बावले ! यह बात और से कहने-वाली नहीं है अथवा बावली बात कहने योग्य नहीं, प्रह्लाद का पैज (प्रण) पूरा करने के लिए पत्थर से प्रभु प्रगट हुए, हृदय से नहीं अर्थात् पत्थर में प्रभु माननेवाले के कहने से पत्थर से निकले न कि निर्गुण उपासक के हृदय से अथवा प्रभु पत्थर से नहीं निकले बल्कि प्रह्लाद के हृदय से प्रकट हुए।

[२७२]

बालक बोलि दिये बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
पापी है बाप बड़े परिताप तेँ आपनी ओर तेँ खोरि न लाई॥
भूरि दई बिषमूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई।
राम कृपा तुलसी जन को जग होत भले को भलोई भलाई॥

अर्थ—हिरण्यकशिपु ने लड़के को बुलाकर काल को बलि कर दिया। कादर ने और करोड़ों कुचालें चलीं। बाप बड़ा पापी था कि जिसने पुत्र को दुःख देने में अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रक्खा। बहुत सा विष दिया, वह भी प्रह्लाद की सिधाई से अमृत की मलाई हो गई। राम की कृपा से 'तुलसी' से सेवक की जग में सदा भलाई ही होती है।

अर्थ—जब नेत्रों ने श्याम जैसे ठग से प्रीति की तो सखी सयानी ने मुझे मना किया था, पर मुझे नहीं मालूम था कि प्रीति में आगे चलकर वियोग का रोग है, इसलिए मैं उसका निरादर करके उस पर ख़फ़ा हुई। अब प्रीति के मारे देह पट (वस्त्र) के समान हो गई है जिसकी खोज बिरहा सा दरज़ी कर रहा है अथवा जैसे दरज़ी ब्योंतते समय वस्त्र फाड़ता है वैसे विरह इस देह को भी ब्योंतना (फाड़ना) चाहता है। हे भृंग ! सुनो, बिना कृष्ण के कामदेव जी का ग्राहक हो गया है अर्थात् प्राण निकाले लेता है।

[२७६]

जोगकथा पठई ब्रज को, सबसो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधोजू ! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नट नागर हेरि हलाकी ॥
जाहि लगै परि, जानै सोई, तुलसी सो सोहागिनि नंदलला की।
जानी हैं जानपनी हरि की, अब बाँधियैंगी कछु मोटि कला की ॥

अर्थ—चेरी (कुबरी) की चालाकी की सबसे की हुई चाल तो देखो जो कि ब्रज में योग की कथा कहला भेजी है। ऊधो जू ! जिन नटनागर (कृष्ण) ने ढूँढ़कर मारनेवाली कुबरी को बरा है, वह हमसे ऐसी बात क्यों न कहे अर्थात् उनकी होशियारी तो इसी से ज़ाहिर है कि कुबरी को ब्याहा है वह हमको यों क्यों न कहेंगे ? अथवा कौन कहे अब नट-नागर कृष्ण ने मारनेवाली कुबरी को हेर (ढूँढ़) कर बरा है अथवा ऊधोजी, उसे कुबरी कौन कहे जिसे नटनागर (कृष्ण) ने ढूँढ़कर बरा है। जिसके लगती है वही जानता है, हे तुलसी ! अब कुबरी नन्दलाल की सुहागिनी हो है। हरि की होशियारी देख ली, अब कला की कुछ गठरी और बाँधेगी अर्थात् कुछ और चालाकी की चाल चलेगी अथवा यदि कृष्ण कूबर ही पर रीझते हैं तो हम भी अब कला की गठरी बाँध कूबर बनावेंगी।

घनाक्षरी

[२७७]

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ
खोजि कै खवास खासो कूबरी सो बाल को।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार
खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को ॥

प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक,
नीति-निपुन त्रिबेक है निदेस देसकाल को।
तुलसी कहे न बनै, सहेही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को॥

अर्थ—छबीले कन्हैया ने कहाँ से खोजकर भला खवास, कूबरी का सा बालक, भौंरा भेजा है। वह ज्ञान का गढ़नेवाला, बिना बानी के पढ़नेवाला, बाल की खाल का निकालनेवाला और हृदय के दर्द का बढ़ानेवाला है। अथवा उर में साल (छिद्र) करने को बढ़ई सा है। वह प्रीति का नाश करनेवाला और रस की रीति में और भी बढ़कर है। नीति में निपुण, देश-काल का निदेश करने में ज्ञानवान है। तुलसी कहते हैं कि सहे ही बनेगी, कुछ कही नहीं जाती, नन्दलाल का वियोग सब योग का योग (मेल) हो गया अर्थात् योग ख़ूब मिला यदि नन्दलाल का वियोग हुआ अथवा नन्दलाल का वियोग क्या हुआ योग तो अपने आप ही मिल गया।

[२७८]

हनुमान है्ै कृपालु, लाड़िले लषन लाल,
भावते भरत कीजै* सेवक सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे ते आपही सुधारि लीजै भाय जू॥
मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति,
देवि ! क्यों न दास को देखाइयत पाय जू।
खीझहू में रीझिबे की बानि, राम रीझत† हैं,
रीझे ह्वैहैं राम की दुहाई रघुराय जू॥

अर्थ—हे कृपालु हनुमान्! लाड़िले लषन लाल! और भावते (मन को लुभानेवाले) भरत! दास के सहाय हूजिए। यह दीन दया का पात्र विनती करता है कि बिगड़े भाव को आप ही सुधार लीजिए। मेरी साहिबिनी (सीता) सदा सिर पर विलास करती हैं, हे देवि! मुझे पैर क्यों नहीं दिखातीं? रामचन्द्र

---

* पाठान्तर—हैजे।

† पाठान्तर—लगत।

का स्वभाव ही प्रसन्न रहने का है वह गुस्सा होने पर भी प्रसन्न हुए होगें। आपको राम ही की दुहाई है, प्रसन्न हूजिए।

सवैया

[२७९]

बेष बिराग को, राग भरो मनु, माय ! कहौं सति भाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों ॥
एते बड़े अपराधी अघी कहुँ, तैं कहु* अंब ! कि मेरो तू मोसों।
स्वारथ को, परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हो सों ॥

अर्थ—मैं तुमसे मन का भाव सत्य कहता हूँ कि मन राग से भरा है यद्यपि वेष वैरागियों का सा है। यद्यपि पापी और नीच हूँ परन्तु आपही (सीताजी) के नाथ का नाम बेचकर प्राणों को बचाता हूँ अर्थात् उसी से जीवन-निर्वाह होता है। इतने बड़े अपराधी और पापी को भो हे माँ ! तुम मुझसे कहो कि "तू मेरा है" तो परमार्थ और स्वार्थ से पूर्ण हो जाऊँ और कुछ घटी फिर कभी न हो ॥

घनाक्षरी

[२८०]

जहाँ बालमीकि भये व्याध ते मुनीन्द्र साधु,
'मरा मरा', जपे सुनि सिष रिषि सात की।
सीय को निवास लव-कुश को जनमथल,
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की ॥
बिटप महीप सुर सरित समीप सोहै,
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर† बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन-जलजात की ॥

---

* पाठान्तर—अधिक हूँ ते कहौ अब कि।

† काशी और प्रयाग के बीच में सीतामढ़ी के नाम से यह स्थान प्रसिद्ध बताया जाता है। बारिपुर और दिगपुर गाँव के नाम हैं।

अर्थ—जहाँ सप्त ऋषि की शिक्षा से वाल्मीकि मुनि 'मरा मरा' जपकर व्याध से ऋषि हो गये, जहाँ सीता का निवास था और जो लव-कुश का जन्म-स्थान है, और तुलसी कहते हैं, कि जहाँ की छाँह छूते ही अर्थात् जहाँ पहुँचते ही, शरीर का सब ताप नष्ट हो जाता है, जहाँ महावृक्ष गंगा के किनारे शोभायमान है जिसे सीता-वट कहते हैं कि जिसके देखते ही पापी भी पुनीत (पवित्र) हो जाता है। सो बारि-पुर और दिगपुर के बीच में श्री सीता के कमल-सदृश चरणों से अंकित भूमि अति रमणीक जान पड़ती है।

[२८१]

मरकत-बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जन रूख* बेष हरु है।
सुखमा को ढेरु कैधौं, सुकृत सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है।
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइए,
प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
राम-रमनी को† बट कलि-कामतरु है॥

अर्थ—मरकत के से जिसके पत्ते हैं और मानिक से लाल फल हैं, और जटा के जूट जो बट की दाढ़ी कहलाती है मानों वृक्ष के वेष में महादेव हैं। वह वृक्ष सुन्दरता का समूह है, पुण्य का पहाड़ और सब संपदा, मोद और मंगल का घर है। जो विश्वास और प्रीति से सेवा करता है उसे इच्छित फल देता है। तुलसी कहते हैं कि यह विचारकर कौन स्थिर रह सकता है अर्थात् सेवा के लिए किसका मन न चलेगा अथवा यह विचारकर कि यह किसका घर (स्थान) है (अर्थात् जानकी का), प्रतीति और विश्वास-सहित जो सेवा करते हैं उन्हें वह इच्छित फल देता है। सुरसरि के समीप सुन्दर भूमि है कि जहाँ सीताजी का बट कलि में कल्पद्रुम के समान विद्यमान है।

---

* पाठान्तर—रूप।
† पाठान्तर—राव नीके।

[२८२]

देवधुनी पास मुनिबास श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ.
रागनि पै सीठि, डीठि बाहरी निहारिहैं॥
'आयसु' 'आदेस' 'बाबा' 'भलो भलो' 'भाव सिद्ध',
तुलसी बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सीयबट सेए करतल फल चारि हैं॥

अर्थ—देव धुनी (गंगाजी) के पास जहाँ मुनियों का वास है और श्री (शोभा अथवा जानकी) का निवासस्थान है, जिस वट के वृक्ष में महादेव सहज ही निवास करते हैं, जो योग-जप-यज्ञ-वैराग्य का पवित्र स्थान है परन्तु रागियों को सीठा लगता है जो बाहरी दृष्टि से उसे देखते हैं। हे तुलसी! यहाँ आज्ञा को पूर्ण करनेवाले भले-भले बाबू बसते हैं, यह बात योगी पुकार-पुकारकर कहते हैं अथवा यहाँ के योगी सबसे 'आयसु' 'आदेश' आदि शब्दों को कहकर बात करते हैं। रामभक्तों को कामतरु से भी अधिक सीता-वट है जिसकी सेवा करने से चारों फल करतलगत होते अर्थात् मिलते हैं।

[२८३]

जहाँ बन पावनो सुहावनो बिहंग मृग,
देखि अति लागत आनंद खेत खूँट सो।
सीता-राम-लषन-निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटा-जूट सो।
तुलसी जौ राम सों सनेह साँचो चाहिए
तो सेइए सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो।

अर्थ—जहाँ पवित्र वन है और पशु-पक्षी सुन्दर हैं, औ देखने में बड़ा आनन्द देनेवाले खेत के खूँट (कोना, सीमा) सा जान पड़ता है, जहाँ सीता-राम, लक्ष्मण और मुनियों का निवास है, जहाँ सिद्ध साधु साधक मानों ज्ञान के वृक्ष से हैं अथवा जो साधुओं को ज्ञान के वृक्ष का सा है। जहाँ झरनों से ठण्ढा शीतल पवित्र जल निकलता है, जहाँ सुन्दर मन्दाकिनी महादेव के जटा-जूट से निकलकर बहती हैं, तुलसी कहते हैं कि यदि श्रीराम से सच्चा स्नेह चाहते हो तो प्रीति-पूर्वक ऐसे विचित्र चित्रकूट का सेवन करो।

[२८४]

मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय को निवारिहै।
दीन्हीं है रजाय राम पाइ सो सहाय लाल
लषन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ
बारि-धार, धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानो,
पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै॥

अर्थ—मोह के वन में कलि के मलरूपी मांस से अर्थात् पाप से मोटा हुआ हृदय में जानकर साधु, गौ और विप्रों के भय (डर) को नाश करेगा, राम ने जो आज्ञा दी है, उसे और समर्थ वीर लाल लक्ष्मण की सहायता पाकर पाप के समूह को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारेगा, सुन्दर मन्दाकिनी जहाँ कमान जैसी है और उसकी वारि-धारा मानो बाण है, उसे धीरज से अच्छे हाथों से सँभालेगा, ऐसा चित्रकूट मानों वधिक की तरह अचल बैठा है और पाप के समूह-रूपी जानवरों का नाश करेगा।

शब्दार्थ—पल = मांस। अहेरि = शिकारी। असि = ऐसी। ब्रात = समूह। सावज = जंगली जानवर।

सवैया

[२८५]

लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी।
चारु चवा चहुँ ओर चलैं लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी॥

क्यों कहि जाति महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कबि कौकी।
मानों लसी तुलसी हनुमान हिये जग जीति जराय की चौकी॥

अर्थ—वसन्त में पलास के फूलों का वर्णन है। पहाड़ को नष्ट करनेवाली आग अच्छी तरह से लगी जैसे हनुमान् ने लङ्का में लगाई थी। सुन्दर पशु चारों ओर भाग चले, जैसे लङ्का में राक्षस अग्नि की ज्वालाओं से भागते थे। बड़ी सुषमा क्योंकर वर्णन की जावे, उपमा के लिए कवि कब से ताक रहा है अथवा कवि-कोकिल ताक रहा है। तुलसी कहते हैं कि वह ऐसी थी मानों हनुमान् के गले में जगत् को जीतनेवाली जड़ाऊ चौकी शोभायमान थी।

शब्दार्थ—खरखौकी = खर (तृण) खानेवाली अग्नि। तौकी = तपी हुई। कौकी = कब से अथवा (कोकी पाठ होने से) कोकिल।

[२८६]

देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे॥
सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलो रे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरैं सुरधेनु के धौल कलोरे॥

अर्थ—देव तो अपनी-अपनी कहते हैं परन्तु तीर्थराज देखने को चलो, अथवा देवता अपनी-अपनी (आपस में) कहते हैं कि प्रयाग देखने चलो, जिसे देखकर अगाध पाप दूर हो जावेंगे। जहाँ अच्छा साधु-समाज नहाता है, जहाँ सफ़ेद और काले पानी (गङ्गा और यमुना) का मिलना ऐसा शोभा देता है कि तुलसी का हृदय प्रसन्न होकर हिलोरें लेता है मानों सफ़ेद सुरधेनु की कलोरें (ओसर गायें) फैली हुई सुन्दर हरी-हरी घास चर रही हैं।

[२८७]

देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजा को साज बिरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग-तरंग तिहारे॥

अर्थ—गङ्गा को जो सेवक जानते हैं, उनके मन में गङ्गा आते ही अर्थात् स्मरण करते ही अथवा जो जन गङ्गा जाने का मन में विचार करते हैं उनके करोड़ों कुल उद्धार पा जाते हैं और चलते देख इन्द्र विमान सँभालने लगते हैं और सुरवधू (उसे वरने को) भी झगड़ा करने लगती हैं। ब्रह्मा, जो माहात्म्य के जाननेवाले हैं, पूजा का ठाट रचने लगते हैं यानी समझते हैं कि नहानेवाला हमारे पास अब आता है, हरिलोक में ओक (घर) की नींव तभी पड़ जाती है जब कि हे गङ्गे! तुम्हारी तरङ्ग को देखा जाता है।

[२८८]

ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर साहिब*, साहब दीन दुनी को॥
सोई भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंच महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनी को?॥

अर्थ—जिसको वेद व्यापक ब्रह्म बतलाते हैं; जिसके गुण जानने और गिनने की गति गिरा (वाणी, सरस्वती) को भी नहीं है; जो कर्त्ता, भर्ता और हर्ता है, देवताओं का राजा और दीन-दुनिया का साहेब (मालिक) है, वह पानी के रूप में बहता है, जो ब्रह्मा, महेश और मुनियों का नाथ है, हे तुलसी! विश्वास करके क्यों नहीं उस गङ्गाजल का लोग सेवन करते।

[२८९]

बारि तिहारो निहारि मुरारि भये परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दुहौंगो॥
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥

अर्थ—तुम्हारे जल को देखकर यदि मुरारि हुआ तो पैर से छूने से मुझे पाप मिलेगा। भाव यह है कि तुम्हारे दर्शन-मात्र का यह फल है कि उत्तम पद मिलता है, यदि विष्णु पद मिला तो तुमको पैर से धारण करना पड़ेगा, क्योंकि गंगा की उत्पत्ति विष्णुपद से है, सो इसमें पाप है कि जिसके दर्शन से पद मिला उसे ही पैर

* पाठान्तर—जन।

से दबाऊँ। यदि ईश हुआ तो शीश पर रक्खूँगा परन्तु डर है कि प्रभु की बराबरी करके बड़े दोष से दहूँगा अर्थात् महादेव होकर तुमको सिर पर रखना पड़ेगा, इससे यह दोष है कि महादेव मेरे प्रभु हैं उनकी बराबरी होती है। चाहे जितनी बेर शरीर धारण करूँ, रघुवीर की सेवा करके तेरे किनारे रहूँगा। हे गङ्गा! हाथ जोड़ तेरी विनती करता हूँ फिर दोष न मिले सो कहूँगा।

[२६०]

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध कै बिबाह कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना॥
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहार न पहार दारि कूरना*।
सोक को अगार दुख-भार-भरौ तौ लौं जन
जौ लौं देवी द्रवै न भवानी† अन्नपूरना॥

अर्थ—लालचा मन ललचाता है और द्वार-द्वार पर दीन होकर मैला बदन करके पुकारता है परन्तु उसका भटकना नहीं जाता। श्राद्ध, विवाह या किसी उत्सव की इच्छा करता रहता है और ढोल और तुरई की आवाज़ को सुनकर पूछता, लोभी बना फिरता रहता है, प्यासा पानी नहीं पाता, न भूखा चार चना, जो अन्न के पहाड़ माँगता है उसे दाल का दाना भी नहीं मिलता। शोक का घर रहता है और दुःख का भार उस समय तक उठता रहता है जब तक भवानी अन्नपूर्णा देवी प्रसन्न नहीं होतीं।

छप्पै

[२६१]

भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंगहर।
सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगबर॥

---

* पठान्तर—चाहत अहार ते पहार डारि धूरना।

† पाठान्तर—जौलौं देवी देवी जी द्रवै नहीं।

मुंडमाल, बिधु-बाल भाल, डमरु-कपाल कर।
बिबुध-बृंद-नव-कुमुद-चंद, सुख-कंद सूलधर॥
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन बिष-भोजन भव-भय-हरन।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ सिव सिव सिवसंकर सरन॥

अर्थ—भस्म को अङ्ग में मलनेवाले और सदा कामदेव से असङ्ग (=दूर) रहनेवाले अथवा भस्म को अङ्ग में लगाये कामदेव का मर्दन (नाश) करनेवाले, सदा असङ्ग (अकेले), हर (महादेव), जिनके सिर पर गङ्गा है और पार्वती अर्द्धाङ्गिनी है, जिनका भूषण सुन्दर सर्प है, (जिनके गले में) मुंडों की माला है और ललाट में दूज का चन्द्रमा है, डमरू और कपाल हाथ में है, देवतागण-रूपी नये कुमुद के लिए जो चाँद के समान हैं, जो सुख के मूल और शूल धारण करनेवाले हैं, ऐसे त्रिपुरारि, तीन लोचनवाले, नग्न रहनेवाले और विष खानेवाले तथा संसार के भय को हरनेवाले (महादेव) हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सेवा करनेवाले को शिवजी सुलभ हैं और शरण आये को शङ्कर (कल्याण करनेवाले) हैं।

[२९२]

गरल-असन दिग्बसन, ब्यसन-भंजन, जनरंजन।
कुंद - इंदु - कर्पूर - गौर, सच्चिदानंद घन॥
बिकट बेष, उर सेष, सीस सुर-सरित सहज सुचि।
सिव अकाम, अभिराम धाम, नित राम नाम रुचि॥
कंदर्प-दर्प-दुर्गम-दमन, उमारवन गुन-भवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुरमथन जय त्रिदसवर॥

अर्थ—विष उनका भोजन है और दिशा ही वस्त्र है (नग्न रहते हैं), वे (दुःख या काम) को तोड़नेवाले और सेवक को पालन करनेवाले हैं, वे कुन्द से कोमल और चन्द्र के से वदनवाले हैं, कपूर के से गौरवर्ण हैं और सच्चिदानन्द के घन (समूह) हैं, बुरा वेष धारण किये हैं, शेषनाग को गले में पहने हैं, गङ्गा उनके सिर पर हैं और वे स्वभाव ही से पवित्र हैं, शिव सदा काम-रहित हैं और सुन्दरता के घर हैं, सदा राम के नाम से प्रेम रखनेवाले हैं। कामदेव के मद को चूर करनेवाले हैं, पार्वती के स्वामी और सब गुणों के घर महादेवजी हैं। महादेव तीन नेत्रवाले हैं,

और तीनों गुणों से परे हैं, त्रिपुर को मथन करनेवाले, देवताओं में श्रेष्ठ हैं, ऐसे महादेव की जय (हो) ।

[२६३]

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति ।
बिषम असन, दिग्वसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति ॥
कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिषभूति बिभूषन ।
नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन ॥
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीमनाम भव-भय-दमन ।
सब बिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसय समन ॥

अर्थ—जिनकी स्त्री आधे अङ्ग में है, जो महायोगीश, योगियों के पति हैं, जिनका भोजन विषम (धतूरा आदि) है, दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं, जो विश्वपति हैं और विश्व की गति हैं, हाथ में जिनके कपाल है, गले में साँपों की माला है और विष-विभूति (ख़ाक) ही जिनका आभूषण है, जो पवित्र नामवाले हैं और जिनका कोई वैरी नहीं है, जो अमर हैं, दुःख-रहित और दोष-रहित हैं जिसको विकराल भूत और वैताल-प्रिय हैं, भीम (डरानेवाला) जिनका नाम है, जो विश्व के भय को नष्ट करनेवाले हैं, सब भाँति जो समर्थ हैं और जिनकी महिमा अकथनीय है, वही तुलसीदास के संशय का नाश करनेवाले हैं ।

[२६४]

भूतनाथ भयहरन, भीम, भय भवन भूमिधर ।
भानुमंत भगवंत, भूति-भूषन* भुजंग वर ॥
भव्य-भाव बल्लभ, भवेस† भव-भार-बिभंजन ।
भूरिभाग, भैरव कुजोग-गंजन जन-रंजन ।
भारती-बदन, बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन ॥
कह तुलसिदास किन भजसि मन, भद्र-सदन मर्दनमयन ।

---

* पठान्तर—भूमि-भूषण ।

† पठान्तर—महेश ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन ! भूतों के नाथ, भय को दूर करनेवाले, भीष्म-रूप, डरानेवाले और भय के घर, दुष्टों को घोररूप प्रतीत होनेवाले और भूमि को धारण करनेवाले, प्रकाशमान्, भगवान् और खाक का आभूषण धारण करनेवाले, सुन्दर साँप को धारण करनेवाले, भव्य (कल्याण-स्वरूप) भाव को चाहनेवाले, संसार के ईश, संसार के नाश करनेवाले, बड़े भाग्यवाले, भैरव, कुयोग को मिटानेवाले (मृत्युञ्जय जप द्वारा), सेवक का पालन करनेवाले, भारतीवदन (सरस्वती जिनके मुख-स्वरूप हैं), विष खानेवाले, चन्द्रमा, सूर्य्य और अग्नि-रूप नेत्रवाले हैं, ऐसे भद्र-सदन (कल्याण के घर) काम को नाश करनेवाले का भजन क्यों नहीं करता ?

सवैया

[२९५]

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो" ।
राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
"नाक सवाँरत आयो हौं नाकहि, नाहिँ पिनाकिहि नेकु निहोरो" ।
ब्रह्म कहै "गिरिजा ! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ॥

अर्थ—नङ्गा तो फिरता है परन्तु भिखारी देखकर कहता है कि देने में हटूँगा नहीं, थोड़ा मत माँगो, रीझकर ग़रीबों को इन्द्र करता है, हे तुलसी ! जहाँ तक जोरे जुड़ते हैं माँगनेवालों को जोड़ता है (इकट्ठा करता है)। स्वर्ग ही सँभालता हुआ (बनाता हुआ) मना करने को आया हूँ अथवा नाक में दम आ गया है, पिनाकी (महादेव) कुछ निहोरा नहीं मानते हैं, ब्रह्मा पार्वती से कहते हैं कि अपने पति को समझाओ, वह तो दान देने में बावला और भोरा है ।

[२९६]

बिष-पावक, ब्याल कराल* गरे, सरनागत तौ तिहुँ तापन डाढ़े ।
भूत बैताल सखा, भव नाम, दलै पल में भव के भय गाढ़े ॥
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुख-दारिद होहिँ न ठाढ़े ।
भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े ॥

---

* पाठान्तर—कपाल ।

अर्थ—अति ज़हरीला विषवाला सर्प, अथवा अग्नि (नेत्र में) विष (कण्ठ में), भयानक सर्प (गले में) है, परन्तु शरणागत के तीनों तापों का खोता है। भूत-प्रेत सखा हैं, भयानक नाम है, परन्तु पल में संसार के गाढ़े दुःखों का नाश करता है, तुलसी का ईश दरिद्रियों का शिरोमणि है, परन्तु उसके सुमिरने से दुःख और दरिद्रता खड़ी नहीं रहती, घर में भाँग और आँगन में धतूरा ही है परन्तु नङ्गे के सामने माँगने-वाले बढ़ते जाते हैं।

[२६७]

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यौ बरदा है।
धाम धतूरो, बिभूति को कूरो, निवास तहाँ सब लै मरे दाहै॥
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है।
राँक-सिरोमनि काकिनिभाग* बिलोकत लोकप को करदा है॥

अर्थ—वर देनेवाले शिव के शीश (सिर) पर वर देनेवाली नदी है, बैल पर सवार है, और स्त्री भी जिसकी वर देनेवाली है, घर में जिसके धतूरा है और विभूति (सम्पदा) जिसकी कूड़ा है। निवास वहाँ है जहाँ सबको ले जाकर (मुरदा) जलाया जाता है अर्थात् श्मशान, साँप और कपाल धारण किये है और बड़ा खिलाड़ी है, जिसके घर का पर्दा भाँग की टट्टियों का है, दरिद्रियों का सिरताज है, कौड़ी का जिनका भाग है अर्थात् अति दरिद्री है परन्तु देखते ही (कर दाहै) दिक्पालों का हाथ जलाता है अर्थात् दान में जिसे दिक्पाल भी नहीं पाते अथवा देखते ही कौन दिक्पालों का करदा (करने देनेवाला) है अर्थात् देखते ही भक्त इतना बड़ा हो जाता है कि लोकपालों की भी कदर नहीं करता, अथवा दिक्पालों को (करदा—धूर्त) सा देखता है अथवा लोकपालों को दान में (करदा) खाक समझता है।

[२६८]

दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर टीको।
भारो† भलो भले भाव को भूखो, भलाई कियो सुमिरे तुलसी को॥

---

* पाठान्तर—काकिणि भाक।

† पाठान्तर—भोरो।

ता* बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु'लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तें जो पै राधो नहीं पति पारवती को ?

अर्थ—जो चारों पदारथ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देनेवाले महादेव हैं और जिनके सिर तीनों लोक में टीका है अर्थात् जो तीनों लोक में दानि-शिरोमणि हैं, बड़े भारी (धैर्यवान्) हैं, और अच्छे भाव के भूखे हैं, जिन्होंने याद करने पर तुलसी का भला किया है। बिना उनके सदा आशा का दास हो रहा, कभी मन का लालच न गया। साधन करके क्या बनेगा यदि पारवतीजी के पति (महादेव) की आराधना नहीं की।

[२९९]

जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोकि लियो है।
पान कियो बिष भूषन भो, करुना-बरुनालय साँई-हियो है॥
मेरोई फोरबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है†।
काहे न कान करौ बिनती, तुलसी कलिकाल बिहाल कियो है॥

अर्थ—तीनों लोकों को जले जाते देखकर महादेव ने विष को पी लिया था। वह पिया हुआ विष भी आभूषण हो गया। ऐसा महादेव का हृदय करुणा का समुद्र है। या तो मेरा ही भाग्य फोड़ने लायक़ है या किसी ने आपसे कुछ कह दिया है। क्यों नहीं विनती सुनते ! तुलसी को कलि ने घबड़ा दिया है।

कवित्त

[३००]

खायो कालकूट भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की।
डमरू कपाल कर, भूषन कराल ब्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की॥

---

* पाठान्तर—तो।
† पाठान्तर—कियो है।

तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानों हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
अर्थ धर्म काम मोक्ष बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जागति मरद की॥

अर्थ—जिसने विष को खाया और उससे जिसका शरीर अजर (जरा या बुढ़ापा से रहित) और अमर हो गया; जिसका घर श्मशान है; खाक की गठरी ही जिसका धन है; डमरू और मुण्ड जिसके हाथ में है; विकराल साँप जिसका आभूषण है; बड़े बावले को अपने वाहन बैल पर बड़ी रीझ है; गोरा बड़ा बदन है, जिस पर विभूति ऐसी चमकती है मानो हिमालय पर सुन्दर शरद् रात्रि की चाँदनी; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जिसकी चितवन में हैं, उस वीर योगी की करामात काशी में जगती है अर्थात् तत्काल दिखाई देती है।

[३०१]

पिङ्गल जटा-कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नयना, प्रताप भ्रू पर* बरत हैं।
लोचन† बिसाल लाल, सोहै बाल-चंद्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत हैं॥
सुंदर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥

अर्थ—(महादेवजी) पिङ्गल (भूरी) जटा का समूह धारे हैं। उनके सिर पर पवित्र आप (गङ्गाजी) हैं, अग्नि नेत्र हैं, भौंह पर उसका प्रताप जाज्वल्यमान है, लाल नेत्र बड़े हैं और बाल (दूज का) चन्द्रमा माथे पर शोभायमान है, गले में विष और साँपों का जेवर धारण किये हैं; सुन्दर हैं, नङ्गे हैं, शरीर पर भस्म रमाये हैं, भाँग खाते

---

* पाठान्तर—भूपर।

† पाठान्तर—लोयन।

हैं, अनोखे और शृङ्गी हैं (अर्थात् सींग बजाते हैं), और सम्पूर्ण काल के काँटों को हरनेवाले हैं। देते हुए नहीं थकते, जब योगी भोलानाथ (महादेव) अवढर ढरते हैं तब आक (मदार) के पत्तों ही पर रीझ जाते हैं। देने पर उतारू होते हैं।

[३०२]

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति भाँग बृषभ बहनु है।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा, असंग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना, अनंग को महनु है॥
तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है।
बेष तो भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है॥

अर्थ—माँगनेवालों को, सब सम्पदा सहित, श्री-निकेत (लक्ष्मी का स्थान—स्वर्ग) देते हो, घर में भाँग और भस्म ही हैं और बैल की सवारी है; नाम तो आपका वामदेव है मगर सदा दाहिने (अनुकूल) रहते हो, विरति (किसी में आसक्त न होना) ही रङ्ग है परन्तु स्त्री सदा सङ्ग है यद्यपि आप कामदेव को मारनेवाले हैं; तुलसी कहते हैं कि महादेव का यही प्रभाव है कि भाव से सुगम (भावना करनेवालों को सुलभ) हैं और पूजा इत्यादि नहीं चाहते, यद्यपि वेद और शास्त्र को आपका जानना दुर्गम है। आपका वेष भयंकर और भिखारियों का सा है परन्तु आप शङ्कर (कल्याणकारी), दयालु, दीनबन्धु और दरिद्रता का नाश करनेवाले हो।

[३०३]

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन* को,
देबोई पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो।
बारि-बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तो,
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो॥

---

* पाठान्तर—माँगबे।

तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ,
कोटिक कलेस करौ मरौ† छार छानि सो।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो॥

अर्थ—कामदेव के वैरी (महादेव) माँगने (भिखारी) से एक भी अङ्ग (भक्ति का) नहीं चाहते, देना उनका स्वभाव-सिद्ध बान (प्रण) है। पानी की चार बूँदें महादेव पर डालने से वे सच्ची सेवा मान लेते हैं और चारों फल देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यदि भोलानाथ का भरोसा नहीं किया है अर्थात् उन पर विश्वास नहीं किया है तो करोड़ों क्लेश होते हैं चाहे जितनी खाक छानो। दरिद्र को मिटानेवाले, दुःख और दोष को जलाने में दावानल के समान महादेव सा दुनिया में दूसरा दयालु नहीं है।

[३०४]

काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान,
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे।
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे!
तुलसी प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरुखेत रे।
पात द्वै धतूरे के दै* भोरे कै भवेस सो,
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे।

अर्थ—क्यों व्यर्थ अनेक देवताओं की सेवा करके मसान जगाते हो अर्थात् उनकी भक्ति की प्राप्ति मसान के जगाने सी दुर्लभ है, अथवा कोई बताओ कि क्यों अनेक देवताओं की सेवा करते हो, क्यों मसान जगाते हो। अपान खोते हो (प्राणायाम साधते हो) अथवा अपान (अपने को) खोते (बिगाड़ते) हो और हठ करके हे शठ! प्रेत क्यों होते हो (अकाल-मृत्यु वाले प्रेत-योनि पाते हैं), क्यों करोड़ों उपाय

† पाठान्तर—मरो।

* पाठान्तर—हैं।

करते हो, क्यों व्यर्थ दौड़-दौड़कर मरते हो और व्यर्थ देश-देश के राजाओं से माँगते हो? तुलसी कहते हैं कि क्यों व्यर्थ, बिना विश्वास, प्रयाग में देह छोड़ते हो, या धन के लोभ से कुरुक्षेत्र में दान देते हो, (जब कि) दो धतूरों के पत्ते ही भवेश (महादेव) को सीधे चढ़ाने से सहज ही इन्द्र की सी सम्पदा मिलती है, उसको क्यों नहीं लेते?

[३०५]

स्यंदन, गयंद, बाजि-राजि, भले भले भट,
धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजे क्वै* ।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन, औ
बिनय बिबेक बिद्या सुभग† सरीर ज्वै‡ ॥
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
ताको फल§ तुलसी सों सुनौ सावधान ह्वै|| ।
जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढ़ाये ह्वैहैं बेल के पतौवा द्वै¶ ॥

अर्थ—इस लोक में जिसे रथ, हाथी और घोड़ों का समूह, अच्छे-अच्छे योधा और ऐसी करनी (करतूत) कि जिसको कौन नहीं पूजता है (अर्थात् सब लोग सम्मान करते हैं) अथवा जिसको कोई नहीं पूजता अर्थात् पहुँचता है, विनीत स्त्री, पवित्र और सुन्दर पुत्र, विनय, ज्ञान तथा विद्या समेत सुन्दर शरीर आदि सब सुख प्राप्त हैं और जिसे परलोक में शिवलोक की प्राप्ति होती है; सो तुलसीदास कहते हैं कि सब सावधान होकर सुनो कि यह उसी का फल है कि उसने जान-बूझकर या बिना जाने, गुस्से में या खेल में, दो बेल के पत्ते शिवजी पर कभी चढ़ा दिये होंगे।

[३०६]

रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै ।

---

* पाठान्तर—पूजै क्वय ।

† पाठान्तर—सुलभ ।

‡ पाठान्तर—वय ।

§ पाठान्तर—फलै ।

|| पाठान्तर—ह्वय ।

¶ पाठान्तर—द्वय ।

संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै ॥
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
ताको फल तुलसी सो कहैगो बिचारि कै ।
आक के पतौवा चारि, फूल कै* धतूरे के द्वै,
दीन्हे ह्वैहैं बारक पुरारि पर डारि कै ॥

अर्थ—रति सी स्त्री और इतनी भूमि जिसकी मेखला (मोट) सिंधु है अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी के मालिक हैं, जिसके आगे अनेक राजा लोग हाथ जोड़े खड़े रहें, जिसकी सम्पदा और ठाठ देखकर इन्द्र को भी लाज आवे, और सब तरह के सुख सँभाल-सँभालकर जिसे ब्रह्मा ने दिये हैं, यहाँ यह सुख और मरने के बाद इन्द्र की पदवी, यह सब किसका फल है, सो तुलसी विचारकर कहता है कि चार आक के पत्ते और दो धतूरे के फूल कहीं महादेव पर डाल दिये होंगे ।

[३०७]

देवसरि सेवौं बामदेव गाँउ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं ।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं ॥
एते पर हू जो कोऊ रावरे ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव दीन द्वारे गुदरत हौं ।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहिं,
काल-कला* कासीनाथ कहे निबरत हौं ॥

अर्थ—गङ्गा का सेवन करता हूँ, आपकी काशी में रहता हूँ, रामचन्द्र के नाम से माँग-माँगकर पेट भरता हूँ, न तुलसी किसी को देने योग्य है, और न किसी से कुछ

---

* पाठान्तर—हू ।

* पाठान्तर—कालिकला ।

लेता है, न इसके कर्म में भलाई लिखी है परन्तु उसका मुझे कुछ सोच नहीं है अथवा किसी का कुछ बिगाड़ता भी नहीं हूँ, इतने पर भी यदि आपका होकर (दास बनकर) ज़ुल्म करे तो उसके ज़ोर को आप ही से कहता हूँ। यदि वह मेरे स्वामी रामचन्द्र से उराहना पाकर आपसे उराहना करे अथवा यदि मेरे स्वामी रामचन्द्रजी आपसे उराहना करें तो मुझे उराहना न दीजिएगा। हे काशीनाथ ! काल (कलियुग) की कला (आपसे) कहकर मैं (अपने फ़र्ज़ से) निवृत्त होता हूँ अथवा हे काशीनाथ ! यदि कालिकला (कदाचित्) कोई कभी उराहना दे तो मैं पहले ही से कहकर निवृत्त होता हूँ।

[३०८]

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो,
हर ! पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि-तीर हौं।
बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥
आबिभूत, बेदन बिषम होत, भूतनाथ !
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिए तौ अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइए तो कृपा करि निरुज सरीर हौं॥

अर्थ—राम का सेवक हूँ और हे महादेव ! आपका यश सुनकर यहाँ गङ्गा के किनारे आपके चरणों में आ रहा हूँ। हे महादेव ! रामचन्द्र का स्वभाव और शील आप जानते हैं और मेरा रामचन्द्र से नाता और नेह भी जानते हैं कि हृदय से रामचन्द्र ही पर सब भार रखता हूँ। हे भूतनाथ ! तुलसी को बाहरी पीड़ा बड़ी होती है, वह बेकल और बड़ी पीर में पच रहा है। बचाओ, यदि मारना है तो बिना परिश्रम के काशीवास का ख़ास फल (मोक्ष) दीजिए और अगर जिलाना है तो शरीर रोग-रहित कर दीजिए।

[३०९]

जीबे की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहिं,
मालुम है तोहिं मरबेई को रहतु हौं।

कालरिपु राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं ॥
रोग भयो भूत सो, कुसूत* भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं ।
ज्याइए तो जानकी-रमन-जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ।

अर्थ—हे दयालु महादेव ! मुझे जीने की कोई इच्छा नहीं है, आपको मालूम है कि मैं मरने को तैयार रहता हूँ। महादेव ! आप राम के दासों को कल्पतरु समान हैं, मैं भी जगदम्बा सहित आप ही का अवलम्ब (सहारा) चाहता हूँ, रोग तुलसी को बुरे भूत की भाँति लगा है, तुलसी को अब कुछ सहारा नहीं रहा है, हे भूतनाथ ! बचाइए, आपके चरण-कमल पकड़ता हूँ, यदि जिलाना है तो रामचन्द्र का सेवक मन में समझकर और मारना है तो मैं भी सच कहता हूँ कि सीधो मृत्यु चाहता हूँ।

[३१०]

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनो समाज, सिव ! आपु नीके जानिए ।
नाना बेष बाहन बिभूषन बसन, बास,
खान-पान, बलि पूजा बिधि को बखानिए ॥
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सब सों सनेह सबही को सनमानिए ।
तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानि ए ॥

अर्थ—हे महादेवजी ! भवत् (आप) पिशाच, भूत-प्रेतों को प्रिय हैं। यह आपका समाज है, हे शिवजी ! आप ही इसे ख़ूब जानते हैं । नाना वेष, वाहन, आभूषण और वस्त्रधारी, नाना स्थान पर रहनेवाले, खान-पान करनेवाले, उनकी बलि और पूजा के विधान का वर्णन कौन कर सकता है ? राम के गुलामों की रीति सीधी एकमात्र

प्रेम है, वे सबको प्रेम करते हैं, सबका आदर करते हैं। तुलसी की, हे महादेव, आप ही के सँभालने से बनेगी। मेरे मा-बाप गुरु, शंकर-भवानी ही हैं, अर्थात् आपका समाज तो टेढ़ा है आप स्वयं मेरी बनादेंगे तो बनेगी।

[३११]

गौरीनाथ भोलानाथ भवत भवानीनाथ,
बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासीबासी,
बेद कही, सही ससि-सेखर कृपाल की॥
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि,
निठुर निहारिए उघारि डीठि भाल की॥

अर्थ—गौरीनाथ! भोलानाथ! हे भवानीनाथ! आपकी पुरी काशो में कलि-काल को आनि है अर्थात् यहाँ नहीं सता सकता है अथवा काशी में कलि की आन (दुहाई) फिरी है। यहाँ शंकर से नर और गिरिजा सी नारी सदा वास करते हैं, यह बात वेद में कही गई है और उस पर कृपालु महादेव ने सही (दस्तख़त) कर दिया है, यहाँ के लोग महेश को छः मुख (कार्त्तिकेय) और गणेश से भी प्यारे हैं, पर अब नगरी बेहाल की (विकल) दिखाई पड़ती है! उस सुरबेलि-समान पुरी को निठुर कलिरूपी किरात काटता है, अतः भाल की दीठि (तीसरा नेत्र) उघारकर देखिए अर्थात् कलि को भस्म कीजिए।

[३१२]

ठाकुर महेस, ठकुराइन उमा सी जहाँ,
लोक बेदहू बिदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन, भूत गनपति सेनापति,
कलिकाल की कुचालि काहू तौ न हरकी॥

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।
कैसे कहै तुलसी, बृषासुर के बरदानि!
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की॥

अर्थ—जहाँ महादेव से मालिक और पार्वती सी मालकिन हैं, जिस जगह की महिमा दुनिया और वेद दोनों में ज़ाहिर है, जहाँ रुद्र के गण वीरभद्र से योधा और कार्तिकेय षडानन और गणेश से सेनापति हैं, वहाँ कलियुग की कुचाल को किसी ने भी न हरका या मना किया। कुछ न पूछिए, यदि विश्वनाथ की बस्ती को ऐसा बड़ा दुःख और शंकर के शहर वाराणसी की ऐसी गति हो अथवा विश्वनाथ की बीसी में काशी में ऐसा दुख है कि महादेव के शहर की हालत कुछ न पूछिए। हे वृषासुर के वर देनेवाले! अमृत छोड़कर विष पीने की आपकी बानि जानकर तुलसी क्या कहे अर्थात् यदि ऐसी बानिवाले के शहर की यह गति है तो क्या अचम्भा है जो अमृत छोड़कर विष पीता है और वैरी वृषासुर को वर देता है।

[३१३]

लोक बेदहू बिदित बारानसी की बड़ाई,
बासी नर-नारि ईस-अंबिका-स्वरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल दंडकारि दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं॥
तहाँ ऊँ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़ इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैँ फूलैँ फैलैँ खल, सीँदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं* ॥

अर्थ—लोक और वेद सबमें काशी की महिमा विदित है, जहाँ के रहनेवाले स्त्री और पुरुष साक्षात् महेश और पार्वतीजी के स्वरूप हैं। जहाँ कालनाथ भैरव स्वयं कोतवाल हैं, दण्डपाणि भैरव दण्ड देनेवाले हैं और गणेश से अनेक अनूप

---

* पाठान्तर—बाती दीपमालिका ठठाइसत सप है।

सभासद हैं, वहाँ भी कलियुग की कुचालि चलती है, कुरीति दिखाई देती है। कदाचित् कलियुग बेवकूफ़ यह नहीं जानता है कि यहाँ के राजा भूतनाथ (शिवजी) हैं, खल फलता फूलता और बढ़ता है, साधु पल-पल पर दुःख पाते हैं, जैसे दिया तो घी खाता है और सूप ठठाये (बजाये) जाते हैं अर्थात् दिवाली के दिन दीप घी खाते हैं और सूप इत्यादि पीटे जाते हैं सो मानो दीपावली ने घी चुराया और मारे गये सूप अर्थात् दुःख दिया खल ने, मारे गये साधु।

[३१४]

पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास बास दियो है।
नीच नर-नारि न सँभारि सकैं आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है॥
बारी बारानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि,
मानि हित हानि सो मुरारि मन भियो है।
रोष में भरोसो एक आसुतोष कहि जात,
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है॥

अर्थ—स्वार्थ और परमार्थ के पुण्यकोश (पुण्य के ख़ज़ाने) पञ्चकोश को जानकर आपने अपने पास स्थान दिया है, नीच नर और नारी आदर को सँभाल नहीं सकते, जो काम विचारकर नहीं किया है उसी का फल कायर पाते हैं। जब काशी को चक्रपाणि के बिना कहे चक्र ने जला दिया था तो अपने हितू महादेव की हानि मानकर मुरारि के मन में डर हुआ था, यद्यपि बिना आज्ञा चक्र ने जलाया था तो भी चक्रपाणि को डर हुआ। आपके गुस्से में एक भरोसा है कि आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) कहे जाते हैं, संसार को विकल देखकर आपने कालकूट विष पिया था, क्या इस विष को आप न पियेंगे ?

[३१५]

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग अग-जग-पालिके।

तोहि में बिकास बिस्व तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर-बालिके ॥
दीजे अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना-तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके ।
रोष महामारी* परितोष, महतारी! दुनी
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥

अर्थ—जग (संसार) को ब्रह्मा उत्पन्न करते हैं और विष्णु रक्षा करते हैं, महादेव हरते हैं, परन्तु तेरी ही कृपा से, हे चराचर को पालनेवाली, तुझ ही में इस जगत् का विकास होता है, और तुझ ही में उसका भोग है और फिर तुझ ही में सब समा जाता है। हे हिमाचल की कन्या पार्वती! हे जगदम्बा! अब देर न कीजिए, सहारा दीजिए। हे दया की तरङ्गवाली! हे कृपा की तरङ्गों की खानि! हे मुनियों के मन में हंसिनी-रूप! दुख से भरी हुई दुनिया की ओर देखिए! हे मा! कृपा कीजिए, यह रोष (क्रोध) बड़ा भारी है अथवा महामारी ने क्रोध कर रक्खा है।

[२१६]

निपट बसेरे, अघ औगुन घनेरे, नर
नारिऊ अनेरे, जगदंब! चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी, देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल-घेरे हैं ॥
लोक-रीति राखी राम, साखी बामदेव जान,
जन की बिनति मानि मातु कहि 'मेरे हैं'।
महामारी महेशानि महिमा की खानि,
मोद-मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं ॥

अर्थ—तेरे ही भरोसे पर बसे हैं, पाप और अवगुण बहुतों से भरे हैं, नर और नारी सब अनजान हैं, परन्तु हे जगदम्बा! तेरे दास हैं, अथवा यद्यपि नर-नारी सब अनाड़ी, पाप और औगुण के निरे बसेरे (घर) हैं। दरिद्र से दुःखी हैं और ब्राह्मण

* पाठान्तर—महाभारी।

और भिखारी देखकर डरते हैं। इन्हें लोभ, मोह, काम, क्रोध और कलि के मल (पाप) घेरे हैं। महादेव साक्षी हैं कि रामचन्द्र ने लोक-रीति को रक्खा (खूब निबाहा)। हे माता! आप भी सेवक की विनय मानकर महामारी से कहें कि ये मेरे हैं। हे पार्वती! महिमा की खानि! मोद और हर्ष की राशि! हे महामाया! देवि! हे महेशानी, काशी के रहनेवाले तो आपके दास हैं। अतएव उन्हें क्षमा कीजिए।

[३१७]

लोगन के पाप, कैधौं सिद्ध-सुर-साप,
काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप-तई है।
ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजा राय,
हठनि बजाइ करि डीठि पीठि दई है॥
देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान,
जसरासि जहाँ तहाँ तैंहो लूट लई है॥

अर्थ—लोगों के पाप से अथवा किसी देवता या सिद्ध के शाप से या कलिकाल के प्रभाव से काशी को तीनों तापों ने घेर लिया है। छोटे, बड़े, बीच के, धनी, निर्धन, राजा, राय सबने हठ (मज़बूती) से पीठ देकर दृष्टि फेर ली है अर्थात् नगर छोड़ दिया है अथवा धर्म छोड़ दिया है। देवताओं से विनती की, महामारी देवी के सामने हाथ जोड़े, भोलानाथ को भोला जानकर महामारी ने अपनी सी कर रक्खी है अर्थात् मनमानी कर रक्खी है। हे करुणानिधान बली वीर हनुमान्! हे यश की राशि! जहाँ-तहाँ जान पड़ता है मानों (काशी को) किसी ने लूट लिया है, अथवा जहाँ-तहाँ यश की राशि तुम्हीं ने लूटी है, यहाँ भी यश तुम्हारे हाथ है।

[३१८]

संकर सहर सर नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगत जल-थल मीच मई है॥

देव न दयालु महिपाल न कृपालुचित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
राम हू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥

अर्थ—काशी-रूपी तड़ाग (तालाब) के स्त्री-पुरुष रूपी जीवों को विकल करने के लिए महामारी माँजा हो गई है। ये जन्तु तैरते हैं, घबराते हैं, मर जाते हैं या घबड़ाकर भाग जाते हैं, जल और स्थल सब जगह मौत ही मौत दिखाई देती है, न देवता दया करते हैं, न मन में राजा कृपा करता है, काशी में रोज़ नई-नई अनीति बढ़ती है, हे रामचन्द्र! कृपा करो, हे हनुमान्! कृपा करो. तुमने रामचन्द्र की बिगड़ती गति को भी सँभाल लिया था।

शब्दार्थ—माँजा = विष।

[३१६]

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की
बेद-धर्म दूरि गये, भूमि* चोर भूप भये,
साधु सीद्यमान, जानि† रीति पाप-पीन की॥
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम!
रावरीई गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज आजु जो न देत दादि दीन की॥

अर्थ—एक तो कलियुग ही बड़ी पीड़ा की जड़ है तिसमें भी शनैश्चर मीन के हैं, सो मानो कोढ़ में खाज है, वेद और धर्म दूर हो गये, राजा पृथ्वी के चोर हो गये, साधु पीड़ा पाते हैं, सो मोटे पाप का ही फल जानना चाहिए। दुबले को कोई दूसरा द्वार नहीं है, हे राम! दया के धाम! बल और ऐश्वर्य से रहित जन को आप ही की

---

* पाठान्तर—भूप।
† पाठान्तर—सिद्ध मान जात वा जान।

गति है। यदि आप दीन की फ़रियाद नहीं सुनेंगे तो अपने विरद पर आरूढ़ महाराज को लाज आवेगी।

शब्दार्थ—सीद्यमान = पीड़ा पाना। बिरुद = शरणागत की रक्षा करने का प्रण।

[३२०]

राम नाम मातु पितु, स्वामी समरथ, हितु,
आस राम नाम की, भरोसो राम नाम को।
प्रेम राम नाम ही सों, नेम राम नाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को॥
स्वारथ सकल परमारथ को राम नाम,
राम-नाम-हीन तुलसी न काहू काम को।
राम की सपथ सरबस मेरे राम नाम,
कामधेनु कामतरु मोसे छीन छाम को॥

अर्थ—राम नाम ही मेरा माता-पिता है, वही समर्थ स्वामी है, वही हितू है, राम नाम ही की मुझे आशा है, उसी का मुझे भरोसा है, राम नाम ही से प्रीति है, राम नाम ही का नियम है, राम नाम ही जानता हूँ, न दक्षिण मार्ग का मुझे ज्ञान है न वाम मार्ग का अथवा न अच्छा रास्ता जानता हूँ न बुरा, अथवा दाहिने से बाँया पाँव नहीं पहचानता हूँ अर्थात् इतना भोला हूँ कि मुझे कुछ ज्ञात नहीं है अथवा दहिने बायें पद का कुछ मर्म (भेद) नहीं जानता हूँ। सब स्वार्थ और परमार्थ राम नाम ही है, बिना राम नाम के तुलसी किसी काम का नहीं है, राम नाम की सौगन्ध, राम नाम ही मेरे लिए सब कुछ है, राम नाम कामधेनु है, मेरे जैसे दुर्बल और हलके को वही कल्पतरु है।

सवैया

[३२१]

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीछित जाहिगो जारिकै हीयो॥
कासी में कंटक जेते भये ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आज की काल्हि परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥

अर्थ—मार्ग को बिगाड़कर अथवा मार्ग में लूटकर, ब्राह्मणों को मारकर, कुमार्ग को सँभालकर, करोड़ों का धन जीत लिया, शङ्कर के क्रोध से वह पाप की कौड़ी हृदय जलाकर जायगी, यह बात आज़माई हुई है, काशी में जितने काँटे (विघ्नकर्ता) हुए हैं उन्होंने अपना किया भर पाया। आज या कल या परसों या अगले दिन—अर्थात् कभी न कभी—ये सब जड़ दिवाली का सा दिया चाटकर जायँगे, अवश्य अपने आप नष्ट हो जायँगे।

[३२२]

कुंकुम रंग सु-अंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच बिषाद हरी है॥
गौरी, कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समय सब-सोच-बिमोचन छेमकरी है॥

अर्थ—अङ्ग ने कुङ्कुम के रङ्ग को जीत लिया और मुखचन्द्र से चन्द्रमा से होड़ पड़ी (बाज़ी लगी) है। वाणी ऐसी बोलती है, मानों सम्पत्ति चूती है; और देखते ही शोच और दुःख दूर हो जाते हैं। गौरी है वा पक्षी के रूप में गङ्गा है, सुन्दर मूर्ति मोद से भरी है; चलने के समय प्रीति (प्रेम) सहित देखती हुई क्षेमकरी सब शोक को हरनेवाली होती है।

शब्दार्थ—छेमकरी (क्षेमकरी) = पक्षी विशेष, मार्ग में उसका दर्शन शुभ माना जाता है।

घनाक्षरी

[३२३]

मंगल की रासि, परमारथ की खानि, जानि*,
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है
प्रलय हूँ काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचु बस नीच सोऊ चहत खसाई है॥
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भये कृपालु,
भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है।

---

* पाठान्तर—जाकी जाति।

पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि !
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥

अर्थ—काशी मङ्गल की ढेर है और परमार्थ की खानि है, जिसको ब्रह्मा ने अच्छी तरह रचकर बनाया और केशव ने बसाया है, प्रलय के समय भी उसे महादेवजी ने शूल पर धारण करके रक्खा था, नीच (कलि) उसे भी गिराना चाहता है, मानों नीच का काल आ गया है। राजा परीक्षित ने इसे छोड़कर, कलि पर कृपालु होकर, इस खल का भला किया था सो भलाई मानों उसने खो डाली, हे हनुमान् ! करुणा के घर ! हे राम ! काशी की रक्षा करो, इस कामधेनु को कलियुग-रूपी कसाई काटे डालता है।

शब्दार्थ—कुहत = कहरत।

[३२४]

बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो,
प्रानहूँ तें प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योति-रूप-लिंग-मई, अगनित-लिंग-मई,
मोक्ष-बितरनि* बिदरनि जग-जाल की ॥
देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिबर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंडे भाल की
हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ! ऐसी,
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥

अर्थ—ब्रह्मा की रची, विश्वनाथ की बस्ती, जो दयानिधि केशव को प्राण से भी प्यारी है, ज्योति-रूप लिङ्ग (विश्वनाथ) जहाँ विराजमान है और जहाँ अनेक लिङ्गों की स्थापना है, मोक्ष को देनेवाली, जो जगत् के जाल को विदारण करनेवाली है, देव, देवी, गङ्गा, सिद्ध और मुनियों का जहाँ वास है, जो काशी देखते ही भाग्य के लिखे खोट को नष्ट कर देती है, तुलसी हा हा खाता है (निहोरा करता है) कि हे कृपानिधान राम ! कराल कलिकाल ने उसी काशी की यह दुर्दशा कर डाली है।

---

* पाठान्तर—सो छबि तरणि।

[३२५]

आस्रम बरन कलि-बिबस बिकल भये,
निज-निज-मरजाद मोटरो सी डार दी।
संकर सरोष महामारिही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दारदी॥
नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोउ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
तुलसी संभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥

अर्थ—(चारों) आश्रम और (चारों) वर्ण कलियुग के कारण भ्रष्ट हो गये, सबने इस युग में अपनी-अपनी मर्यादा को बोझ समझकर फेंक दिया, महामारी होने से प्रतीत होता है कि महादेव क्रोधित हैं और साहेब के क्रोधित होने से दिन-दिन दूनी उनकी स्त्री क्रोधित हैं—अथवा साहब के क्रोध से दुनिया में दिन-दिन दूना दरिद्र हो गया है—स्त्री-पुरुष बड़े विकल होकर पुकारते हैं परन्तु कोई नहीं सुनता है, देवताओं ने भी मिलकर मुट्ठी सी मार ली है (अर्थात् चुप हो गये हैं, अपने हाथ बन्द कर लिये हैं अथवा मूँठ मार दी है अर्थात् जादू डाल दिया है)! तुलसी कहते हैं कि ऐसे समय में भी भयभीत को पालनेवाले दयालु श्रीरामचन्द्रजी को जब याद किया तभी उन्होंने दया को सनकार दिया अर्थात् उस पर दया की, उसे बचा लिया।

इति उत्तरकाण्ड

इति श्रीगोस्वामीतुलसीदासकृत कवितावलीरामायण समाप्त

टिप्पणी

१—गौतम की तीय—अहल्या। (बालकाण्ड छं० २१)

एक आश्रम में गौतम मुनि और उनकी स्त्री अहल्या दोनों रहा करते और तप किया करते थे। एक दिन जब गौतम मुनि बाहर गये तो उनकी अनुपस्थिति में इन्द्र गौतम का भेष धरकर आश्रम में आया और भोग की इच्छा प्रकट की। अहल्या ने जानकर भी भोग किया। जब इन्द्र जाने लगा तो गौतम कुटा के द्वार पर मिले। उन्होंने योग-बल से सब जान लिया और इन्द्र को शाप देकर कुटी के भीतर आकर अहल्या को भी शाप दिया कि तू सहस्र वर्ष पर्य्यन्त यहाँ वायु खाकर निवास करेगी और किसी को दिखाई न पड़ेगी जब रामचन्द्र यहाँ आवेंगे तब तू लोभ और मोह-रहित होकर उनका सत्कार करेगी, तब पाप से छूटेगी और मेरे पास आवेगी। जब मिथिला को जाते हुए विश्वामित्र के साथ रामचन्द्र इस स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने विश्वामित्र से पूछा कि यह निर्जन स्थान किसका है। तब विश्वामित्र ने ऊपर की सब कथा कही और कहा कि अहल्या तुम्हारी राह देख रही है। रामचन्द्र ने उस शिला-रूप अहल्या को पैर से छू दिया तो उसका शाप छूट गया। वह फिर स्त्री हो गई और अपने पति से जा मिली।

२—'छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें' (लङ्का० छं० १०३)

जब रामचन्द्रजी सेना-सहित समुद्र पार करके सुवेल पर्वत पर ठहरे तो देखा कि एकदम रात में बिजली चमकने लगी, घटा छा गई, मेघ के गरजने का सा शब्द होने लगा। बादल चारों ओर कहीं न देखकर रामचन्द्रजो को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि यह क्या है तो विभीषण ने बताया कि रावण की सभा में नाच हो रहा है, छत्र बादल सा दिखाई देता है, मन्दोदरी के कर्णफूल बिजली से चमक रहे हैं और मृदङ्ग का शब्द बादल की गरज सा मालूम हो रहा है। रामचन्द्र को रावण के अभिमान पर क्रोध हुआ और उन्होंने एक बाण मारा। बाण ने छत्र, मुकुट और कर्णफूल एक साथ भूमि में गिरा दिये, किसी ने न जान पाया क्या हुआ।

३—'बालि हू गर्व जिय माहिं ऐसो कियो' (लङ्का० छं० १०४)

बालि सुग्रीव का भाई था, दोनों भाई प्रेम से रहते थे। बालि को वर मिला था कि जो कोई उसके सम्मुख लड़ने को आता था, उसका आधा बल उसमें आ जाता था, इस तरह बालि से कोई जीत न पाता था। एक बार एक राक्षस आया और

रात को उसने बालि को लड़ाई के लिए ललकारा। बालि ने उसका पीछा किया। राक्षस भागकर एक गुफा में घुस गया। बालि भी उसके पीछे गया, जाते समय सुग्रीव से कह गया कि १५ दिन मेरा इन्तज़ार दरवाज़े पर करना, फिर समझना कि मैं मारा गया। सुग्रीव ने एक महीना राह देखी, तब गुफा से रुधिर की धारा निकली। सुग्रीव ने समझा कि बालि मारा गया और राक्षस निकलकर उसे भी मारेगा। वह गुफा के द्वार पर एक भारी शिला रखकर चला आया। शहर में राजा न होने से लोगों ने बालि को मरा जानकर सुग्रीव को राजा बना दिया। इतने में बालि राक्षस को मारकर नगर को लौटा और सुग्रीव को राजा देखकर बड़ा क्रोधित हुआ। सुग्रीव को मारकर बालि ने भगा दिया और वह फिर राजा हो गया तथा सुग्रीव की स्त्री को भी हर लिया। सुग्रीव एक पहाड़ पर जाकर रहने लगा। जब रामचन्द्रजी उधर से निकले तो सुग्रीव से उनकी मित्रता हो गई। सुग्रीव ने अपना सब हाल रामचन्द्र से कहा। रामचन्द्र ने एक ही बाण से बालि को मार डाला और जो वर उसे मिला था उसे क़ायम रखने के लिए पेड़ की ओट से बान चलाया।

४—'माहिष्मती को नाथ' (लङ्का० छं० १०९)

सहस्रबाहु माहिष्मती का राजा था। एक बेर शिकार खेलते-खेलते वह जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचा। वहाँ ऋषि ने कामधेनु के द्वारा ससैन्य उसका आतिथ्य किया। राजा को भारी आश्चर्य हुआ और कामधेनु को ही सब ऐश्वर्य का मूल जानकर वह उस पुकारती हुई गाय को माहिष्मती ले गया। जब जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी, जो अस्त्रविद्या में बड़े ही निपुण थे, घर आये और उन्होंने जब यह वृत्तान्त सुना तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने सहस्रबाहु का पीछा किया। सहस्रबाहु भी दल-सहित उनसे लड़ा, परन्तु परशुराम ने उसे ससैन्य मार डाला और वह कामधेनु को घर लौटा लाये।

एक बार रावण सहस्रबाहु के ऐश्वर्य और शक्ति तथा बल को सुनकर उससे लड़ने को गया। सहस्रबाहु का बल सुनने का अवसर यह हुआ कि एक बार रेवा नदी के किनारे सहस्रबाहु विहार कर रहा था और विहार में अपने १००० बाहुओं से उसने नदी का प्रवाह रोक दिया जिससे नदी उलटी बहने लगी और रावण का डेरा बह गया। जब रावण लड़ने गया तो सहस्रबाहु ने उसे सहज ही क़ैद कर लिया और स्त्रियाँ आकर उसे मार-मार जाती थीं। यह दशा देख पुलस्त्य ऋषि को दया आई और उन्होंने जाकर छुड़ा दिया।

५—'बायस, बिराध, खर, दूषन, कबन्ध, बालि' (लङ्का० छं० १११)।

(अ) 'वायस'

इन्द्र का बेटा जयन्त एक बेर पञ्चवटी में गया, जहाँ सीता-सहित राम-लक्ष्मण रहते थे। जयन्त सीताजी को चोंच मारकर भागा। रामचन्द्र सीता की गोद पर सिर रक्खे हुए सो रहे थे। रुधिर की धारा देखकर रामचन्द्र जाग पड़े और उनको बड़ा क्रोध आया। बस उन्होंने एक बाण चलाया जो जयन्त के पीछे चला। जयन्त को भारी भय हुआ और वह भागा। परन्तु जहाँ कहीं वह गया, अस्त्र ने उसका पीछा किया। अन्त में नारदजी के उपदेश से वह फिर रामचन्द्रजी की शरण में आया और रामचन्द्र ने उसकी एक आँख फोड़कर उसे छोड़ दिया।

(क) 'विराध'

यह एक राक्षस था जब रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण-सहित, वन में घूम रहे थे तब उन्हें विराध मिला। उसने सीता को हरना चाहा कि रामचन्द्र ने उसे मार डाला।

(ब) 'खर, दूषण'

खर, दूषण दोनों दण्डक वन के रखवाले सूर्पनखा के भाई थे। जब सूर्पनखा की नाक लक्ष्मण ने काट ली तो वह खर-दूषण को लड़ने के लिए बुला लाई। खर-दूषण बड़ी फ़ौज लेकर चढ़ आये परन्तु रामचन्द्र ने अकेले ही सबको मार गिराया।

(स) 'कबन्ध'

'कबन्ध' एक गन्धर्व था जो शापवश राक्षस हो गया था। रामचन्द्र ने उसे मारा तो वह शाप से छूट गया।

(द) 'बालि'

इसकी कथा ऊपर देखो।

६—नाथ सुनी भृगुनाथ कथा बलि बालि गये (लङ्का० छं० ११२)।

(अ) 'भृगुनाथ'

परशुराम की कथा रामायण में है। धनुष-भङ्ग का शब्द सुनकर वे जनकपुर में आये और समस्त सभा को डाँटकर उन्होंने अपना रोष दिखलाया। रामचन्द्र का बल देखकर उन्हें धनुष देकर वे चुपचाप तप करने जङ्गल को चले गये।

(ब) बलि

इसको वामन रूप धर विष्णु ने नष्ट किया।

७—भट भीम से भीमता निरखिकर नयन ढाँके। (लङ्का० छ० १२९)

गन्धमादन पर एक बार भीम गये और हनुमानजी से कहा कि अपना रूप दिखाइए। हनुमानजी ने कहा कि तुम देख न सकोगे। तब भीम ने हठ किया और हनुमानजी ने अपना रूप दिखाया। भीम डर गये और आँखों पर हाथ रख लिया।

८—आँधरो अधम इत्यादि। (उत्तर० छं० २१८)

इस छन्द का आधार बैजनाथदास ने वाराह-पुराण के निम्न-लिखित श्लोक को बताया है—

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो
हा रामेति हतोस्मि भूमिपतितो जल्पन्तनुं त्यक्तवान्।
तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्न: प्रभावात्पुन:
किञ्चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम्॥

अर्थात् एक बुड्ढे यवन ने, जिसको एक सुअर के बच्चे ने धक्का देकर गिरा दिया था, प्राण छोड़ते समय हराम (सुअर, हा राम) कहकर प्राण छोड़ दिये। इसके प्रभाव से वह संसार को तर गया। भला उन आदमियों का क्या कहना है जो राम नाम के रसिक हैं अर्थात् जो श्रद्धा-सहित राम का नाम लेते हैं।

९—सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की। (उत्तर० छं० २३०)

(अ) 'प्रह्लाद'

नारद से गर्भ में राम नाम का माहात्म्य सुनकर जन्म ही से प्रह्लाद भगवद्भक्ति करने लगे। जब वे गुरु के यहाँ गये तो राम नाम ही लिखने और पढ़ने लगे और सहपाठियों को भी बताने लगे। पिता ने इसका विरोध किया और जब प्रह्लाद न माने तो उन पर शस्त्रों का प्रहार कराया परन्तु उन पर शस्त्रों का कुछ असर न हुआ। तब उन्हें पहाड़ से गिरवाया, जल में डुबाया, अग्नि में जलाया, विष दिलवाया, हाथी से दबवाया, साँप से कटवाया, परन्तु वह प्रह्लाद को न दबा सका, न राम नाम उनसे छुड़ा सका। जब गुरु ने पिता से यह सब कहा तो उसने प्रह्लाद को अपने सामने बुलाकर पूछा कि जिस भगवान् का तू स्मरण करता है वह कहाँ है। प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि सर्वत्र। उनके पिता ने पूछा कि खम्भे में है। प्रह्लाद ने कहा, हाँ। इस प्रकार उत्तर पाकर पिता ने कहा कि अपनी रक्षा के लिए बुला, मैं तुझे मारता हूँ। यह कहकर उसने खड्ग उठाया और खम्भे में एक मुक्का मारा। इस पर भारी शब्द हुआ; खम्भे को चीरकर नृसिंह भगवान् निकल आये और असुर हिरण्यकशिपु को—अपनी गोद में लिटाकर—देहली के ऊपर सायङ्काल के समय मार डाला।

(क) 'ध्रू (ध्रुव)'

राजा उत्तानपाद की दो स्त्रियाँ थीं, एक सुनीति और दूसरी सुरुचि। सुनीति का लड़का ध्रुव और सुरुचि का लड़का उत्तम था। राजा की सुरुचि पर अधिक प्रीति थी। एक बेर उत्तम राजा की गोद में बैठा था कि ध्रुव भी खेलते-खेलते राजा की गोद में चढ़ने लगा। राजा ने गोद में न चढ़ाया बल्कि सुरुचि ने ताना देकर कहा कि ध्रुव! तुम मेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं हो इसलिए तुम गोद में नहीं चढ़ सकते। ध्रुव को ग्लानि आई और वे अपनी मा के पास गये और सब कथा कह सुनाई। माता से आज्ञा लेकर ध्रुव तप करने चले गये। मार्ग में नारद मिले और उन्होंने ध्रुव को इस मार्ग से हटाने का प्रयत्न किया। जब ध्रुव ने न माना और त्रिलोकी पद जीतने के मार्ग को जानने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने द्वादश-अक्षर मन्त्र ध्रुव को सिखाया और मथुरा भेजा। ध्रुव मथुरा जाकर तप करने लगे। ध्रुव का तप देखकर देवता घबरा गये और विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें तो घर भेजा और स्वयं ध्रुव को दर्शन देकर वरदान दिया जिससे ध्रुव को ऐसा दुर्लभ पद मिला जहाँ आज तक कोई नहीं पहुँचा था। वह ३६००० वर्ष राज्य कर अचल-पद को प्राप्त हुआ।

१०—राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की। (उत्तर० छं० २३१)

यहाँ वाल्मीकि मुनि की कथा का इङ्गित है। वाल्मीकि मुनि सदा चोरों में रहा करते थे और पथिकों को मारकर उनको लूटा करते थे। एक दिन सप्तर्षि उन्हें वन में मिले और जब वें उन्हें लूटने और मारने को उद्यत हुए तो उन्होंने पूछा कि ऐसा नीच कर्म वे क्यों करते हैं। इस पर वाल्मीकि ने उत्तर दिया कि स्त्री और लड़कों के पोषण के लिए। तब सप्तर्षियों ने वहीं खड़े रहने का वचन देकर वाल्मीकि को भेजा कि जाकर स्त्री-पुत्रों से पूछ आवें कि वे जीवहत्या के पाप के भी भाग में उनके साथी होंगे। वाल्मीकि ने ऐसा ही किया तब सबने एक ही उत्तर दिया कि हमको तो धन से काम है, कहीं से वे लावें, पाप से हमें क्या प्रयोजन? इस पर वाल्मीकि को वैराग्य हुआ और वे धनुष-बाण फेंककर सप्तर्षियों के चरणों पर गिर पड़े। सप्तर्षियों ने 'मरा-मरा' जपने का उपदेश किया। उन्होंने ऐसा ही किया और वहीं उनको दिव्य दर्शन हुए।

११—नामहिं ते गज की, गनिका को, अजामिल की चलिगै चलचूकी। (उत्तर० छं० २३१)

(अ) 'गज'

क्षीर-सागर में त्रिकूट पर्वत पर, वरुण के उद्यान में, एक कमल और कुमुदिनी से भरा हुआ सरोवर है। उस पर एक बेर एक हाथी अपने झुण्ड के साथ आया और पानी पीकर तथा स्नान करके अपने साथियों को भी पानी पिलाने लगा। इतने में एक

बलवान् ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया। दोनों में महान् युद्ध आरंभ हुआ और १०० वर्ष पर्यन्त होता रहा। गज थक चला और उसको बहुत कुछ ग्राह जल में खींच ले गया था कि गज ने निराश होकर भगवान् की स्तुति की। तब तो भगवान् चक्र लेकर गरुड़ पर चढ़कर गज के सामने आये। उनको इस प्रकार देख गज बड़े ज़ोर से पुकारने लगा और एक कमल लेकर उनको अर्पण किया। भगवान् गरुड़ के जाने में विलम्ब देखकर स्वयं कूद पड़े और जो तिल भर सूँड़ जल से ऊपर रह गई थी उससे गज को पकड़कर ग्राह समेत जल से निकाल लिया। फिर चक्र से ग्राह का मुँह फाड़कर गज को बचा लिया। ग्राह तो अपने गन्धर्व के स्वरूप को प्राप्त हो गया और शाप से मुक्त हो गया तथा गज को भगवान् ने अपना पार्षद बना लिया।

(क) 'गणिका'

सत्ययुग में एक गणिका ने एक सुआ पाला। उनमें परस्पर बहुत स्नेह हो गया। गणिका ने सुए को राम नाम पढ़ाया। इसी राम नाम के प्रभाव से सुआ और गणिका दोनों तर गये।

(ख) 'अजामिल'

प्राचीन काल में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण था जो बड़ा दुराचारी था। उसके १० पुत्र थे परन्तु उसका छोटे पुत्र पर बड़ा प्रेम था जिसका नाम नारायण था। उसका नाम वह सदा पुकारा करता था और उसी का स्मरण किया करता था। इसलिए अन्त समय भी जब यमराज के दूत उसे पकड़ने आये तो नारायण में वह ऐसा लीन था कि नारायण के पार्षदों ने उसे बचा लिया और वह आयु भोगकर नारायण के पद को प्राप्त हो गया।

१२—'सबरी'। (उत्तर० छं० २३७)

शबरी जाति की भीलनी थी, परन्तु मतङ्ग ऋषि की सेवा किया करती थी। मतङ्ग ऋषि से उसने वर पाया कि जब त्रेतायुग में भगवान् आवेंगे तब उसे दर्शन देंगे। सीता की खोज में जब भगवान् गये तो उन्होंने शबरी को दर्शन दिया और उसके जूठे बेरों को खाया। शबरी ने उन्हें सुग्रीव का पता दिया और फिर योगाग्नि में अपने आपको जला दिया जिससे स्वर्ग पा गई।

१३—गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हूँ को। (उत्तर० छं० २४१)

(अ) 'हरिचन्द'

हरिश्चन्द्र अयोध्या के नामी राजा, दानी और धर्मात्मा थे। इन्द्र ने द्वेष से विश्वामित्र को इनकी परीक्षा के लिए भेजा। विश्वामित्र ने स्वप्न में हरिश्चन्द्र से सब

अनुक्रमणिका

ख

ग

झ

ठ

ब

ल

व

भावार्थ—हे राम, मै स्वय अपने को अच्छी तरह जानता हूँ कि आपका ही बनाया हुआ हूँ। तोते की तरह नाम रटता हूँ और सारा ससार यही कहता है कि इसको रामचंद्रजी ने ही पढ़ाया है (अर्थात् आप ही की कृपा से मुझमें भक्ति का सचार हुआ हैं)। पर मै केवल तोते की तरह राम राम रटता हूँ (भक्ति से नही), इसी बात का मेरे मन में दुःख है। क्योंकि वेद कहते हैं कि जिस आदमी को रामजी बढाते हैं वह कभी नहीं घटता (अर्थात् जिस पर रामजी की कृपा होती है उसकी कभी अवनति नहीं होती। मै तो सदा एक साधारण पुरुष था, आप ही के नाम के प्रताप से पूज्य हुआ हूँ।)

मूल— (मनहरण कवित्त)

छार ते सँवारिकै पहार हू ते भारो कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै।
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज,
मेरी ओर फेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ! बिषहू को रूख लाइकै॥६१॥

शब्दार्थ—छार ते सँवारिकै॥ छार अर्थात् धूल की तरह निकम्मे को सँभालकर। गारो=गौरव, बड़ाई। पच्च में=आदमियों में। अधमाई कै कै=नीचता करके। मेरी ओर हेरिकै=मेरी करनी की ओर दृष्टि करके। रिसाइकै=क्रोध करके। ब्याल-बाल=साँप का बच्चा। रूख=(वृक्ष=प्रा० रुक्ख) पेड़।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचंद्रजी, आपने मुझ धूलि की तरह निकम्मे की रक्षा करके पहाड़ से भी भारी बना दिया है। आपके तुल्य पवित्र का पक्ष पाकर मैं लोगों मे पूज्य हो गया। मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ, और आपके गुण गा-गाकर नीचता से अपना पेट पालता हूँ। हे महाराज, मेरी करनी की ओर देखकर मुझसे अप्रसन्न होकर मत बैठिए। जिसको आपने कृपा कर बड़ाई दी उसकी लाज तो रखिए। क्योंकि

हे कृपालु नाथ, पालन करके साँप के बच्चे को भी नहीं मारना चाहिए और विष के पेड़ को भी लगाकर काटना नहीं चाहिए।

मूल—बेद न पुरान गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।
नाहिंन बिराग, जोग, जाग, भाग 'तुलसी' के,
दया-दान दूबरो हौं, पाप ही की पीनता।
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मो सो कौन ?
कलिहू जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता॥६२॥

शब्दार्थ—साधन-प्रबीनता = साधनों में चतुरता। जाग = यज्ञ। दयादान दूबरो = दया और दान मे दुर्बल हूँ। पाप ही की पीनता = महापापी। पीनता = मोटाई। कोह = क्रोध। दोष-कोष = दोषों का खजाना। मो सो = मेरे समान। कलि हूँ = कलियुग ने भी। मेरियै = मेरी ही।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि न तो मै वेद और पुराण का पढ़ना जानता हूँ, न ज्ञान और विज्ञान जानता हूँ, न ध्यान, धारणा, समाधि आदि साधनों में ही निपुण हूँ और न मेरे भाग्य में विराग, योग यज्ञादि ही हैं। दया और दान में तो मैं दुर्बल हूँ और पाप की ही मोटाई है अर्थात् महापापी हूँ। मेरे समान लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि दोषों का खजाना कौन है, यहाँ तक कि कलियुग ने भी मलिनता मुझसे ही सीख ली है। परतु हे रामचद्रजी, मुझे भरोसा केवल यही है कि मैं आपका कहलाता हूँ और आप दीनों के बंधु और दयालु हैं और मै दीन हूँ (अर्थात् यदि आप सच्चे दीनबंधु हैं तो मुझ दीन पर दया करते ही बनेगा)।

मूल--रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मै न दूसरो, न मानत, न मानिहौ।

पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबै हीं परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं,
जैसी मुख कहौ तैसी जीय जब आनिहौं ॥६३॥

शब्दार्थ—कानि = मर्यादा, लाज। गुमान = गर्व। पाँच = पच देवता (विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य और देवी)। परि = निश्चय रूप से। गढ़ि गुढि = बना बनाकर। छोलि छालि = काट कूट कर। कुंद की सी भाई = खराद पर चढाई हुई। जीय = मन। कुंद = खराद का औजार।

भावार्थ—हे रामचद्रजी, मै आप ही का दास कहलाता हूँ और आप ही के गुण गाता हूँ, और आप ही की लाज से मै दो रोटी पा जाता हूँ। मैंने आपके अतिरिक्त किसी दूसरे को न माना, न मानता हूँ और न मानूँगा। इस बात को ससार जानता है और मेरे मन में भी बड़ा गर्व है। न तो मुझे पंच देवताओं का ही विश्वास है और न अपने कर्तव्य का ही भरोसा है। आपने मुझे अपना लिया है इस बात को मै तभी निश्चय रूप से जानूँगा जब काट-कूट कर खराद पर चढ़ाई हुई बाते बना-बनाकर जैसे मुख से कहता हूँ वैसे ही भाव मन मे भी हो जाएँ (अर्थात् जब मुझमे अंतःकरण से आपकी भक्ति आ जायगी)।

मूल—बचन बिकार, करतबऊ खुआर, मन
बिगत-बिचार, कलिमल को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेचि बेचि खाइ, सेवा
संगति न जाइ पाछिलें को उपखानु है।
ते हू 'तुलसी' को लोग भलो भलो कहैं, ताको
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है ॥६४॥

शब्दार्थ—खुआर = (फा० ख्वार) खराब, बुरा। कलिमल = पाप। निधानु—खजाना। सेवा सगति न जाय = ऐसी संगति में नही जाता जहाँ सेवा करनी पड़े। पाछिले को उपखानु है = जैसा कि प्राचीन लोगों ने कहा है (कि 'सेवा चोर निवाले हाज़िर', अथवा 'काम का न काज का दुश्मन

अनाज का' इत्यादि) उपखान = (उपाख्यान) कहावत। निदानु = निश्चय। स्वान = कुत्ता।

भावार्थ—जिसके (तुलसी के) वचन में विकार है (कटुवादी है), जिसके कर्म भी बुरे हैं तथा मन भी सुविचारहीन है और जो पापों का खजाना ही है, जो (तुलसीदास) कहलाता तो है रामदास, पर सच्चा दास न होकर केवल पेट-पालनार्थ राम राम जपता है और जो (तुलसी) बड़ों के पास नहीं जाता कि सेवा करनी पडेगी, जिस (तुलसी) पर प्राचीन कहावत (काम का न काज का दुश्मन अनाज का) खूब चरितार्थ होती है, उस (तुलसीदास) को भी लोग भला आदमी कहते हैं, इसका कोई अन्य हेतु नहीं है, वरन् अच्छी तरह से यही निश्चित होता है और लोक-व्यवहार में विदित है तथा जहाँ तहाँ देखने में भी आता है कि बड़े के स्नेहपात्र कुत्ते का भी लोग सम्मान करते हैं।

अलंकार—विभावना से पुष्ट उपमान-प्रमाण।

मूल—स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मो सो दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयौं, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाइ भूलि भाल है।
रावरी सपथ, राम नाम ही की गति मेरे
इहाँ झूठी झूठी सो तिलोक तिहूँ काल है।
'तुलसी' को भलो पै तुम्हारे ही किये कृपालु,
कीजै न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है॥६५॥

शब्दार्थ—स्वारथ को साज = सासारिक सुख-भोग की सामग्री (स्त्री-पुत्रादि)। परमारथ को समाज = मोक्ष-साधन के उपाय (तीर्थ, जप, तप आदि)। दगाबाज (उर्दू) = धोखेबाज। जगजाल = इस मायामय ससार में। कै न आयौं = न मैंने पहले किया। करतूति = कर्म। बिरंचि = ब्रह्मा। भूलि = भूलकर भी। भाल = भाग्य, ललाट, माथा। नाम = राम नाम। गति = शरण, पहुँच। इहाँ = आपसे। पानी-भरी खाल है = यह शरीर नाशवान है। पै = निश्चय।

भावार्थ—न मेरे पास सासारिक सुख-भोग की सामग्री है, न कोई

मोक्ष प्राप्त करने के उपाय ही जानता हूँ और न इस मायामय संसार में मेरे समान कोई धोखेबाज है। अच्छे कर्म तो न मैने पहले किये, न वर्तमान काल मे करता हूँ और न भविष्य मे कभी करूँगा। भलाई करना तो ब्रह्मा ने भूल से भी मेरे भाग्य मे नही लिखा। हे राम, मुझे आपकी शपथ है- मेरी तो 'राम' नाम तक ही पहुँच है। मै सत्य कहता हूँ क्योंकि जो आपसे झूठ बोलता है वह तीनो लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) मे और भूत भविष्य वर्तमान तीनो काल मे झूठा है (अर्थात् कोई उसका विश्वास न करेगा)। हे कृपालु, तुलसीदास का भला तो निश्चय ही आपके द्वारा हो सकता है, अतः बलि जाऊँ देर न कीजिए, क्योकि यह शरीर क्षणभंगुर है, कब नष्ट हो जाय कुछ ठीक नही (अर्थात् कृपा करके शीघ्र ही अपनाइए)।

अलंकार—छेकोक्ति।

मूल—राग को न साज, न बिराग जोम जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को।
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो
नाम-प्रेम-पारस हौं लालच बराट को।
'तुलसी' बनी है राम रावरे बनाए, ना तो,
धोबी कै सो कूकर न घर को न घाट को ॥६६॥

शब्दार्थ—राग को न साज=सासारिक सुख भोग को सामग्री। राग=(सासारिक विषयो पर) प्रेम या अनुराग। काया=शरीर। कुठाट को ठाठिबो=(सासारिक सुख भोग के हेतु) अनुचित उपाय करना। मनोराज= मनोरथ, वासनाएं। अकाज=(अकार्य) हानि। चारु चीर=सुन्दर वस्त्र। पै=परतु। लहै=पाता है [लाभ से लभना (लहना) क्रिया]। टूक= टुकड़ा। टाट=सन का मोटा और भद्दा कपड़ा। करतार=(कर्तार) ईश्वर, रामचद्रजी। कूर=निकम्मा। नाम-प्रेम-पारस=राम नाम का प्रेम ही जो पारसवत् है। पारस=एक प्रकार का पत्थर जिसको छूकर लोहा सोना हो जाता है। हौं=मैं। बराट=कौड़ी। बनी है=सुधरी है। न तौ=

नहीं तो। धोबी कै सी कूकर न घर को न घाट को=(कहावत) न इधर का न उधर का, अर्थात् रामचद्रजी की कृपा न होगी तो लोक परलोक एक भी न बन पड़ेगा।

भावार्थ—न मेरे पास सासारिक सुख-भोग की ही सामग्री है और न मन में विराग, न कभी योग-यज्ञादि ही किए। यह शरीर सासारिक सुख के लिए अनुचित उपाय करना भी नही छोड़ता। अनेक वासनाएँ करते करते आज तक हानि ही होती रही क्योकि मैं चाहता तो हूँ सुदर शाल-दुशाले, पर पाता नहीं हूँ टाट का टुकड़ा भी। कृपालु रामचद्रजी, मुझ निकम्मे पर भी आप बड़े कृपालु हुए हैं जो मुझ कौड़ी के लालची ने राम नाम का प्रेम रूपी पारस पाया (अर्थात् तुच्छ विषय-भोग के लालची को राम-भक्ति मिल गई)। तुलसीदास कहते हैं कि हे राम, आप ही की कृपा से मेरी बनेगी, नहीं तो मैं लोक और परलोक दोनो मे से एक भी नहीं सुधार सकता।

अलंकार—छेकोक्ति।

मूल—ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जम जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज, भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
'तुलसी' की बाजी राखी राम ही के नाम, नतु,
भेंट पितरन को न मूड़ हू में बारु है॥६७॥

शब्दार्थ—मन=मनोरथ। रुचि=इच्छा। निपट=अत्यंत, बिलकुल। लोकरीति-लायक न=लोगों से व्यवहार करने के लायक भी नहीं हूँ। लगर=ढीठ, नटखट। लबारु=झूठा। स्वारथ अगम=स्वार्थ अर्थात् भोजन वस्त्र भी इच्छापूर्वक मिलना कठिन है। परमार्थ=परलोक, मोक्ष। परमारथ की कहा चली=मोक्ष प्राप्त करने की बात क्या कहूँ। जवारु=(फा० जवाल) भार, जंजाल, झंझट। चाकरी=सेवकाई=नौकरी। आकरी=खान खोदने का काम। बनिज=वाणिज्य। किसब (अ०)=कारीगरी। कबारु=कबाड़, व्यवसाय, रोजगार। बाजी=प्रतिष्ठा, प्रतिज्ञा। भेंट पितरन को न मूड़ हू मे

वाद है = (कहावत) पास मे कुछ भी नही है (रामचद्रजी के शरणागत होने को मुझमे कोई भी गुण नही) ।

भावार्थ—मेरी अभिलाषाएँ बडी बड़ी हैं, रुचि भी ऊँची है, पर भाग्य अत्यंत हीन है। लोकव्यवहार के योग्य भी नही हूँ, क्योंकि ढीठ और झूठा हूँ। यहाँ तो भोजन-वस्त्र मिलना भी कठिन है, मोक्ष प्राप्त करने की कौन बात कहूँ ? मुझे पेट भर भोजन मिलना कठिन हो रहा है। (दूसरों पर निर्भर रहने के कारण) ससार के लोगो के लिए भार हो रहा हूँ। न मै कोई नौकरी कर सकता हूँ, न खान-खुदाई कर सकता हूँ, न खेती ही कर सकता हूँ, न वाणिज्य ही कर सकता हूँ, न भीख माँग सकता हूँ, और न मै निकम्मा कुछ कारीगरी या व्यवसाय ही जानता हूँ। अतः तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी प्रतिष्ठा तो रामनाम के प्रताप से ही रह सकती है, नहीं तो मेरे पास (और तो और) पितरों को भेट देने के लिए सिर मे बाल भी नहीं हैं, अर्थात् मेरे पास राम तक पहुँचने के लिए रामनाम-प्रेम के अतिरिक्त और कोई भी गुण नहीं।

अलंकार—छेकोक्ति ।

मूल—अपत उतार, अपकार को अगार, जग,
जाकी छाँह छुए सहमत व्याध बाधको।
पातक-पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट को पयोधि अपराध को।
'तुलसी से बाम को भो दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको।
राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को,
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को ॥६८॥

शब्दार्थ—अपत = अप्रतिष्ठित । उतार = सबसे उतरा हुआ, अधम । सहमत = डरते हैं । बाधको = बाधक भी, विघ्नकर्ता भी । पातक-पुहुमि = पापरूपी पृथ्वी को । पुहुमि = भूमि । सहसानन = शेषनाग । बाम = कुटिल भी । दाहिनो = अनुकूल हुए । सिहात = ईर्ष्या करते हैं । ललित = सुन्दर । ललाम = भूषण । लाखनि को = लाखों के मोल का । कौड़ी आध को = जो आधी कौड़ी मोल का था ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मै अति अधम और अपकार का

धर हूँ पापी इतना कि ससार में जिसकी छाया को स्पर्श करते हुए विघ्नकर्ता जीवहिंसक व्याध भी डरते हैं। मैं पापरूपी पृथ्वी को पालने के लिए शेषनाग के समान हूँ (अर्थात् जैसे शेषनाग ने पृथ्वी के बोझ को धारण कर रक्खा है ऐसे ही मैंने भी पाप का बोझ सिर पर धारण कर रक्खा है) मैं कपट का वन हूँ अर्थात् अनेक कपट करता हूँ और अपराधों का समुद्र हूँ अर्थात् महा अपराधी हूँ; ऐसे कुटिल तुलसीदास पर दयालु रामचद्रजी अनुकूल हुए, ऐसा सुनकर सब सिद्ध, साधु और साधक भी ईर्ष्या करते हैं। मै बड़ा कपटी कायर, कुपुत्र और आधी कौड़ी के मोल का अर्थात् निकम्मा था, उसको रामनाम ने लाखों के मोल का सुन्दर भूषण कर दिया अर्थात् सबमें पूज्य बना दिया।

मूल—सब अंगहीन, सब साधन बिहीन, मन
बचन मलीन, हीन कुल-करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन
गुन, ज्ञान हीन, हीन भाग हू बिभूति हौं।
'तुलसी' गरीब की गई बहोरी रामनाम,
जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं ॥६६॥

शब्दार्थ—सब अगहीन = योग के आठो अगो से रहित। हीन कुल-करतूति हौं = अपने कुल के योग्य कर्म भी नहीं करता हूँ। भाव = प्रेम। विभूति = ऐश्वर्य। गई बहोरी = गई हुई वस्तु को लौटा दिया, बिगड़ी हुई बात सुधार दी। जीह = जिह्वा। बैठो धूति हौं = छल लिया है। प्रतीति = विश्वास। प्रसाद = प्रसन्नता से। पॉय पसारि सूतिहौ = पॉव फैलाकर सोऊँगा अर्थात् निःशक होकर सोऊँगा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैने योग का एक भी अग नहीं किया और मुक्ति-साधन के जो उपाय हैं वे भी मैने नहीं किए। मन और बचन से पापी हूँ, अपने कुल के करने योग्य कर्तव्य भी मैंने नही किये, बुद्धि और बल भी मुझमें नहीं है, प्रेम और भक्ति से भी वञ्चित हूँ और भाग्य और धनसपत्ति से भी हीन हूँ। जो राम का नाम गरीबों की गई हुई संपत्ति को फिर लौटा देता है उसी ने मेरी भी बिगड़ी बात बना दी है, उसी नामको

अपनी जिह्वा से जप कर मैने रामचंद्रजी को भी छल लिया है। उसी राम नाम से मेरी प्रीति है, उसी रामनाम का मुझे भरोसा है, और उसी रामनाम के प्रसाद से मै निश्चित होकर सोऊँगा (मेरा ऐसा ही विश्वास है)।

मूल—मेरे जान जब ते हौ जीव ह्वै जनम्यो जग
तब ते बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनही सो भाव नीको,
बचन बनाइ कहौ 'हौ गुलाम राम को'।
नाथ हू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू ते प्रबल प्रताप प्रभु-नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै तो भलाई, न तौ,
'तुलसी' जो खुलैगो खजानो खोटे दाम को ॥७०॥

शब्दार्थ—मेरे जाने = मेरी समझ मे। बेसाह्यो = खरीदा आ। लोह = लोभ। कोह = क्रोध। तिनहीं = लोभादिको की हा। भाव = प्रेम। नीको = अधिक। बचन बनाइ कहौ = मन से सत्य सत्य नहीं कहता हूँ वरन् बनाकर अर्थात् झूठ ही कहता हूँ। गुलाम (अ०) – दास। पै = परतु। खुलैगो खजानो खोटे दाम को = (मुहावरा) खोटाई प्रकट हो जायगी, भडाफोड़ हो जायगा।

भावार्थ—मेरी समझ मे जब से मैने इस ससार मे जन्म पाया है तब से लोभ, क्रोध और काम ने मुझे दाम देकर मोल ले लिया है। अतएव मेरा मन उन्ही की सेवा मे लगता है और उन्ही से मुझे अतिशय प्रेम है। परतु झूठ बोलकर प्रकट करता हू कि मै राम का सेवक हूँ। मुझे अयोग्य जानकर स्वामी (रामचन्द्रजी) ने भी नही अपनाया, झूठ ही यह प्रसिद्धि हो गई कि मै राम का सेवक हूँ, परतु रामचन्द्रजी के नाम का प्रताप रामचद्रजी से भी प्रबल है। अतः हे नाथ, अपनी स्वाभाविक भलाई से आप मेरा भला करे तो अच्छा ही है, नही तो मेरे (तुलसीदास के) पापों का भडा-फोड़ हो जायगा (तब आप ही की बदनामी होगी कि रामदास भी बुरे होते हैं)।

मूल—जोग न बिराग जप जाग तप त्याग व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेद बिधि किमि है।

'तुलसी' सो पोच न भयो है, नहि ह्वै है कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै।
मेरे तो न डरु रघुवीर सुनौ साँची कहौं
खल अनखैहैं तुम्हें, सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहि तुला तौलिए तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै ॥७१॥

शब्दार्थ—जोग = अष्टाग योग। बिराग = ससार से उदासीनता। जप = विधिपूर्वक मत्रों को जपना। जाग = अश्वमेध यज्ञ। तप = तपस्या करना। त्याग = दान। व्रत = चाद्रायणादि। वेदविधि = वेद का विधान। किमि = किस प्रकार, कैसा। सब = सब लोग। याके = इस (तुलसीदास) के। अघ = पाप। छमिहै = क्षमा करेगे। खल = दुष्ट। अनखैहैं = अप्रसन्न होंगे, बिगड़ेंगे। न गमिहै = गम न करेगे, गम न खाएँगे (वे भी आपको लेथारेंगे कि यह क्या बात है)। सुकृती = पुण्य कर्म करनेवाला। तुला = तराजू। प्रसाद = प्रसन्नता, कृपा। भार = बोझ, पल्ला। मेरी ओर नमिहै = मेरी तरफ झुकेगा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि मै योग, वैराग्य, जप, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, तीर्थ और धर्म कुछ नही जानता और वेद का विधान कैसा है यह भी नही जानता। मेरे समान नीच न कभी हुआ है न कभी होगा। इसी लिए सब लोग सोचते हैं कि रामचद्रजी कैसे इसके अपराध क्षमा करेगे। हे रामचद्रजी, मुझे तो डर नही है और मै सच-सच कहता हूं। सुनिए, अगर आप मुझे क्षमा करेगे तो दुष्ट लोग तो आपसे अप्रसन्न हो जायँगे और सज्जन लोग भी गम न खाएँगे। अगर आप मुझे किसी अतिशय पुण्यात्मा के साथ तराजू में तोले तो आपके नाम की कृपा से पलड़ा मेरी ही ओर झुकेगा अर्थात् मैं ही भारी हूँगा।

मूल—जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागिबस,
खाए टूक सबके, बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किये पाप सतिभाय,
राम को कहाय दास, दगाबाज पुनी सो।

रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
'तुलसी' सो जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो, अनुरागत न रामपद,
मूढ़ ऐतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो ॥७२॥

शब्दार्थ—पेटागिबस = जठराग्नि के वश, भूख के कारण। टूक = टुकड़े। बिदित = प्रकट है। दुनी = दुनिया, ससार। मानस = मन। काय = शरीर। सतिभाय = सद्भाव। दगाबाज = (फा०) धोखेबाज। पुनी = पुन', फिर। पाउ = पाया। महामुनी = वाल्मीकि मुनि। अनुरागत = प्रेम करता है (अनुराग से 'अनुरागना' क्रिया बना ली)। एतो = इतना। अचरज = आश्चर्य।

भावार्थ—पेट भरने के लिए मैने अपनी जाति, अपने से ऊँची जाति, और अपने से नीची जाति अर्थात् सबसे रोटी के टुकड़े माँग-माँगकर खाए, यह बात ससार जानता है। मन, वचन और शरीर से अनेक पाप किए, राम का भक्त कहलाया और फिर भी वैसा ही धोखेबाज बना रहा, पर मुझ ऐसे कुटिल ने भी रामनाम के प्रभाव से महिमा और प्रताप पाया और ससार में महामुनि वाल्मीकि के समान मान्य हो गया। हे मूर्ख, इतना बडा भारी आश्चर्य देख-सुनकर भी तू बड़ा ही अभागा है जो रामचद्रजी के चरणों में प्रेम नही करता।

मूल—जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
'तुलसी' सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी ते गरु तृन ते तनक को ॥७३॥

शब्दार्थ—जायो कुल मंगन = दरिद्रों के कुल में जन्म लिया। बधावा बजना = आनदसूचक बाजे बजना। परिताप = सताप। पाप = कष्ट। बारे ते = बचपन से। ललात = ललचाता था। बिललात = बिलखाते हुए। जानत

हो = जानता था। चारि फल = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। चनक = चने। सिहात = ईर्ष्या करता है बिधिहू गनक को = ज्योतिषी ब्रह्मा भी। सयानो = (सज्ञान) चतुर। बावरो = उन्मत्त, पागल। किधौं = अथवा। जो तृन ते तनक को गिरी ते गरु करत = जो तृण के समान हलके को पहाड़ से भी भारी करता है (मेरे समान पतित को भी अपना सेवक बनाकर इतना पूज्य बना देता है)।

भावार्थ—मै भिक्षुको (ब्राह्मणो) के कुल मे उत्पन्न हुआ, यह सुनकर बधावा बजवाया गया। परतु मै माता पिता के लिए सताप और दुःख का देनेवाला हुआ। मै दरिद्र बचपन से भूख से व्याकुल होकर लालच के मारे घर-घर भटकता फिरता था, और चार दाने चने पाकर ही इतना प्रसन्न हो जाता था कि उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फलो के बराबर जानता था। वही मै (तुलसीदास) अब समर्थ स्वामी रामचद्रजी का सेवक हूँ, यह सुन कर ज्योतिषी ब्रह्मा तक जिसका लेख झूठा नही हो सकता) ईर्ष्या करता है और सोचता है (कि यह अभागा राम-सेवक कैसे हुआ)। हे रामचद्रजी, आपका नाम न जाने समझदार है अथवा उन्मत्त जो तृण समान हलके व्यक्ति को भी पहाड़-समान गरू बना देता है अर्थात् पतितों को पवित्र और पूज्य बना देता है।

मूल—बेद हू पुरान कही, लोक हू बिलोकियत,
राम-नाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है।
छाँछी को ललात जे, ते राम-नाम के प्रसाद,
खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम, राम! रावरो तो चाम की चलाई है॥८७॥

शब्दार्थ—रीझे = मन लगाने से। सोई = वही राम का नाम। साधना = मोक्ष प्राप्त करने के अनेक उपायों को। चितई न चित लाई है = न उसकी ओर देखा, न ध्यान दिया। छाँछी = मट्ठा। ललात = ललचाते हैं। खुनसात = नाक भौं सिकोड़ते हैं। सौंधा = पका हुआ। रामराज सुनियत राजनीति की

अवधि = सुना जाता है कि राम के राज्य में सबसे राजनीति के अनुसार अर्थात् योग्यता के अनुसार (बड़े से बड़ी छोटे, से छोटी) व्यवस्था की जाती थी । अवधि = सीमा । चाम की चलाई है = चमड़े का सिक्का चला दिया है, पतितो को भी उद्धार कर पूज्य बना दिया है ।

भावार्थ—वेद पुराणों मे भी कहा गया है और लोक मे भी देखा जाता है कि रामनाम मे ही मन लगाने से सब प्रकार की भलाई है । काशी में मरते समय भी महादेवजी (मोक्ष-प्राप्ति के लिए) रामनाम जपने का ही उपदेश देते हैं, न और साधनो की ओर देखते हैं न उन पर कुछ ध्यान ही देते हैं । (यह तो वेद पुराणो की बात हुई) लोक मे भी देखा जाता है कि जो मट्ठा पीने के लिए लालायित रहते थे वे ही अब रामनाम के प्रसाद से (इतने समृद्धिशाली हो गए हैं कि) पके दूध की मलाई खाने मे भी नाक भौं सिकोड़ते हैं । हे रामचद्रजी, सुना जाता है कि आपके राज्य मे तो राजनीति की पराकाष्ठा थी अर्थात् सबसे न्यायानुकूल व्यवहार किया जाता था, पर आपके नाम ने तो चमडे का सिक्का चला दिया है, अर्थात् पतितो को भी मान्य बना दिया है ।

अलंकार—लोकोक्ति ।

मूल—सोच-संकटनि सोच-संकट परत, जर
जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को ।
बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाय बिधि बाम को ।
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग
जागत, आलसि 'तुलसी' हू से निकाम को ।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत राम-नाम को ॥७५॥

शब्दार्थ—सोच-सकटनि सोच-सकट परत = शोक-सकटों को भी शोक संकट पड़ जाता है, अर्थात् शोक-संकट मिट जाता है । जर जरत = ज्वर भी जल जाता है अर्थात् ज्वर भी दूर हो जाता है । ललित = सुन्दर ललाम = भूषण, श्रेष्ठ । बूड़ियौ = डूबता हुआ भी । तरति = तर जाता है । बिधि बाम को स्वभाव दाहिनो होत देखियत = प्रतिकूल विधाता का

स्वभाव भी अनुकूल होता हुआ जान पड़ता है, दुर्भाग्य भी सौभाग्य हो जाता है। अनुरागत बिराग = वैराग्य भी प्रेम करने लगता है, अर्थात् उदासीन भी प्रेम करने लगता है। निकाम = निकम्मा, व्यर्थ । धारि = झुंड (लुटेरों का)। फिरि कै = लौटकर। गोहारि = रक्षक। मीचु = (स० मृत्यु, प्रा०

भावार्थ--रामनाम के जपते ही शोक और दुःख मिट जाते हैं। उस सुन्दर श्रेष्ठ नाम के प्रभाव से ज्वर भी दूर हो जाता है, डूबता हुआ भी पार हो जाता है, बिगड़ी हुई बात भी सुधर जाती है, प्रतिकूल विधाता भी अनुकूल हो जाता है, अभाग्य भाग जाता है, उदासीन भी प्रेम करने लगता है। तुलसीदास के समान आलसी और निकम्मे के भी भाग्य उदय हो जाते हैं। लूटने को आई हुई लुटेरों की सेना भी उलटे रक्षक और हितकारी हो जाती है और आई हुई मौत भी मिट जाती है (भाव यह कि रामनाम के जपने मात्र से ही सब अमगल भी मगल हो जाते हैं, यहाँ तक कि मौत भी मिट जाती है)।

अलंकार—व्याघात से पुष्ट हेतु।

मूल—आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं।
गिरो, हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय हाय करत परी गो काल-फँग मैं।
'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो,
नाम के प्रताप, बात बिदित है जग मैं।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन,
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमैं ॥७६॥

शब्दार्थ—आँधरो = अंधा। जड़ = मूर्ख। जाजरो जरा = वृद्धावस्था के कारण जर्जर अर्थात् निर्बल। जवन = यवन। सावन = बच्चा। ढका ढकेल्यो = धक्का देकर गिरा दिया। हिये = हृदय में। हहरि = डर के मारे। हराम = सूअर (अरबी भाषा)। 'हराम हो हराम हन्यो' = हराम, मुझे हराम (सूअर) ने मार दिया। काल-फँग मे परी गो = काल के पँजे में फँस गया, मर गया। बिसोक = विगत शोक, शोक से रहित। त्रिलोक-पति

लोक = विष्णु-लोक । अगमै = (महिमा का विशेषण है) न कही जा सकने योग्य ।

भावार्थ— किसी समय एक अंधे, नीच, मूर्ख, और वृद्धावस्था के कारण निर्बल यवन (म्लेच्छ) को एक सूअर के बच्चे ने धक्का देकर ढकेल दिया। वह मार्ग मे गिरा और हृदय मे भयभीत होकर "मुझे हराम (सूअर) ने मार डाला" इस प्रकार हाय हाय करते हुए मर गया । तुलसीदास कहते हैं कि वह रामनाम के प्रताप से शोकरहित बैकुंठ लोक को चला गया, यह यात ससार मे प्रकट है । अतः इस रामनाम की, जिसे आदमी स्नेहपूर्वक जपता है, अकथनीय महिमा कैसी कही जा सकती; है (भाव यह कि अज्ञानावस्था मे रामनाम लेने से तो मोक्ष हो गया, प्रेम से रामनाम जपने से तो अपूर्व ही फल मिलेगा) ?

मूल—जाप की न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तनको।
भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरी हू सों,
बल अपनो न, हितू जननी जनक को।
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देव-सेवा न सहाय, गर्ब धाम को न धन को।
राम ही के नाम ते जो होइ सोई नीको लगै,
ऐसोई सुभाय कछु 'तुलसी' के मन को ॥७७॥

शब्दार्थ—जाप न की = मैंने जप नहीं किया । न तप खप कियों = न खूब अच्छी तरह से तप ही किया । खप = खपकर, पचकर, कष्ट सहकर । तमाइ = (तमअ—अरबी) लालच । न तमाइ जोग = योग द्वारा कुछ प्राप्त होने का भी मुझे लालच नहीं । विराग = सासारिक सुखो से उदासीनता । त्याग = दान । तनको = थोड़ा भी । खरो सो = अच्छी तरह । हितू = हितकारी । धाम = घर । नीको = अच्छा ।

भावार्थ—न मैंने मन्त्र का जाप ही किया, न कष्ट सहकर तपस्या ही मुझसे हो सकी, न मुझे योग द्वारा कुछ सिद्धि प्राप्त करने का ही लालच है, न मैंने कोई यज्ञ ही किया, न कुछ वैराग्य, दान या तीर्थ ही किया, न मुझे अपने भाई का कुछ भरोसा है और न मेरा किसी वैरी से ही

अच्छी तरह वैर है। अपने शरीर में बल भी नहीं है और हितकारी माता पिता का भी बल नहीं है, न मुझे इस लोक का डर है, न परलोक की ही चिंता है, न आज तक मैंने किसी देवता की सेवा ही की जिससे मै उस देवता से कुछ सहायता की आशा रक्खूँ, न मेरा कोई घर, न मेरे पास सपत्ति ही है जिसका मै गर्व करूँ (भाव यह कि न मैने कुछ पुण्य कर्म ही किए न मेरे पास कुछ है)। तुलसीदास कहते हैं कि मेरे मन का स्वभाव तो कुछ ऐसा ही विचित्र है कि रामचद्रजी के ही नाम से जो कुछ भी हो वही मुझे अच्छा लगता है।

मूल—ईस न गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तारिबे को,
बैठे उठे जागत बागत सोए सपने।
'तुलसी' है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय, कीजिये जु अपने।
जानकी-रमन ! मेरे, रावरे बदन फेरे,
ठाऊँ न, समाउँ कहाँ, सकल निरपने ॥७८॥

शब्दार्थ—ईस=महादेव। दिनेस=सूर्य। धनेस=कुबेर। सुरेस=इंद्र। गिरापति=सरस्वती के पति, ब्रह्मा। भव=ससार। बागत=चलते फिरते। सौं=शपथ। रावरे बदन फेरे=आपके मुँह फेरने पर, आपके विमुख होने से, आपके रूठने से। ठाउँ=स्थान। समाउँ=रहूँ। निरपने=(निर+अपने) अपने नहीं, अर्थात् पराये, बेगाने।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि मैं शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इंद्र और अन्य देवता, पार्वती और ब्रह्माजी किसी का जप-पूजन नहीं करता। बैठे में, उठे मे, चलते में, जागते में, सोते मे, सपने में हर समय संसार से तारने के लिए आप ही के नाम का भरोसा है। मै बावला आप ही का दास हूँ, यह मैं आपकी ही शपथ लेकर कहता हूँ। अतः अपने मन मे यह जानकर कि मैं आपका ही हूँ मुझे अपना कीजिए। हे सीतापति रामचंद्रजी, आपके नाराज होने से मेरे लिए कहीं भी स्थान नहीं, कहाँ रहूँगा ? सब मेरे लिए बेगाने हो गए हैं (किसी से भी मेरा संबंध नहीं)।

मूल—जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए।
'तुलसी' तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥७६॥

शब्दार्थ—जाहिर = प्रकट। जहान = ससार। जमानो = समय। जमानो एक भाँति भयो = समय बहुत खराब आ गया है। बिबुध-धेनु = देवताओं की गाय, कामधेनु। रासभी = गदही। बेसाहिए = मोल लीजिए। त्रिताप = दैहिक, दैविक, भौतिक तीनो प्रकार के कष्ट। दाहिए = जलाते हैं। तेहि नाते = उसी संबंध से। नेह-नेम = स्नेह का नियम। रक = दरिद्र, दीन। उमरि = (अ०) आयु। दराज = (फा०) दीर्घ।

भावार्थ—ससार मे प्रकट है कि समय ऐसा बुरा आ गया है कि लोग कामधेनु को बेचकर गदही खरीदने लगे हैं। हे कृपालु, ऐसे भयकर कलियुग में भी आपके नाम के प्रताप से मै दैहिक, दैविक, भौतिक तीनो तापों से नही जलता। तुलसीदास कहते हैं कि मै मन-वचन-कर्म से आपका ही भक्त हूँ, अतः उसी सम्बन्ध से अपनी ओर से मेरे स्नेह के नियम का निर्वाह कर दीजिएगा। हे दीनदयालु, राजाओ के राजा महाराज रामचद्रजी आपकी आयु बड़ी हो, मै ऐसी ही कामना रखता हूँ।

मूल—स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं; जानत जहानु है।
नाम के प्रताप, बाप! आजु लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है।
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव!
पाहरूई चोर हेरि, हिय हहरानु है।
'तुलसी' की बलि, बार बार ही सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है ॥८०॥

शब्दार्थ—स्वारथ सयानप = स्वार्थ-साधन करने अर्थात् अपना काम सिद्ध करने मे ही अपनी चतुराई समझता हूँ। प्रपंच परमारथ = मोक्ष-प्राप्ति के उपायो मे छल करता हूँ। जहानु = दुनिया। बाप = हे पिता। आगे को = भविष्य मे मेरा निर्वाह करने को। सुजानु = अच्छी तरह जानकर। पाहरूई = पहरुआ ही। हेरि = देखकर। हिय हहरानु है = हृदय डर गया है। कीबी = कीजिये।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह सारा ससार जानता है कि मै स्वार्थ-साधन करने में ही अपनी चतुरता समझता हूँ, और पर-मार्थ के कार्यों मे छल करता हूँ। हे पिता! अपने नाम के प्रताप से आपने आज तक मेरा अच्छी तरह निर्वाह किया है। भविष्य में भी इसी प्रकार मेरा निर्वाह करने को हे स्वामी, आप समर्थ और सुजान हैं। हे देव, कलि की कुचाल प्रतिदिन दूनी देखकर और पहरुवे को ही चोर देखकर मेरा हृदय डर के मारे भयभीत है। हे कृपालु, मैं आपकी बलि जाऊँ। यद्यपि आप अपने भक्तों की रक्षा करने को सदा सावधान रहते हैं तथापि मैं प्रार्थना करता हूँ कि बार बार मेरी सँभाल कीजिएगा जिसमे मेरे मन में विकार न आवे।

मूल—दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुःख,
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है।
आपने तौ एक अवलंब, अंब डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है।
'तुलसी' की साहसी सराहिये कृपालु राम!
नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है॥८१॥

शब्दार्थ—दारिद = दरिद्रता। दुकाल = अकाल, अन्न के अभाव का समय। दुरित = पाप। दुराज = दुष्ट राज्य, राज्यविप्लव। सुकृत = पुण्य। सकोच है = घटते जा रहे हैं, कम हो रहे हैं। पैत = दाँव। पावत = पा जाते हैं, विजय पाते हैं। पोचु = बुरा। अवलब = सहारा। अंब = माता। डिंभ = बच्चा, बच्चे को जैसे माता का सहारा रहता है।

संकट-बिमोचु = सकटो से छुड़ानेवाले। परिनाम को निसोचु है = परिणाम के बारे में निश्चिन्त है।

भावार्थ—प्रतिदिन दरिद्रता, अकाल, दुःख, पाप और राज्य-विप्लव बढ़ते जा रहे है जिससे सुख और पुण्य घटते जा रहे हैं। समय ऐसा विपरीत हो गया है कि बड़े से बड़े पापी को इच्छित वस्तु मिल जाती है, और भले का बुरा होता है। तुलसीदास कहते हैं कि मेरा तो एकमात्र सहारा समर्थ, और सब सकटो से छुडानेवाले सीतापति रामचद्रजी का ही है, जैसे बच्चे का सहारा केवल माता ही है। हे कृपालु, रामचद्रजी, मेरी हिम्मत की प्रशसा तो कीजिए, क्योकि मुझे आपके नाम के भरोसे परिणाम की कुछ भी चिता नही है।

मूल—मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सो,
बिसारि बेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत, कछु
काहू की सहत नाहि, सरकस हेतु है।
'तुलसी' अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जा
पेट प्रिय पूत-हित रामनाम लेतु है ॥८२॥

शब्दार्थ—मोह-मद-मात्यो = अज्ञानता रूपी मद अर्थात् शराब से उन्मत्त हूँ। रात्यो = आसक्त, अनुरक्त। कुमति-कुनारि = कुबुद्धि रूपी वेश्या। बिसारि = भुलाकर। आँकरो = गहरा। अचेतु = बेसुध। भावै = जो अच्छा लगता है। सरकस = सरकश, प्रबल। हेतु = कारण। अधमाई = नीचता। कपट-निकेतु = कपट का घर। जैबे को = नष्ट होने को। अनेक टेक = अनेक आश्रय हैं, अनेक कारण हैं। टेक = आसरा। ह्वैबे को = भलाई होने के लिए। पेट-प्रिय-पूत-हित = पेट रूपी प्रिय पुत्र के लिए।

भावार्थ—(तुलसीदास अजामिल से अपना रूपक बाँधते हैं) अजामिल शराब में मस्त रहता था, मै (तुलसीदास) अज्ञानता में मस्त रहता हूँ। अजामिल सदा वेश्याओ से आसक्त रहता था, मैं कुबुद्धि में रत रहता हूँ। उसने वेदमार्ग भुला दिए थे, मैने लोक लाज छोड़ दी है। उसकी

तरह मै भी बहुत वेसुध रहता हूँ। उसको जो अच्छा लगता था वही करता था और मैं जो मुख से निकलता है कह देता हूँ। वह भी किसी बात को नहीं सह सकता था, मै भी राम का भरोसा होने के प्रबल कारण से किसी को नहीं मानता हूँ। मेरी नीचता तो अजामिल से भी अधिक है, उस पर भी कपट का घर कलियुग भी मेरा सहायक है। नष्ट होने के लिए तो अनेक कारण हैं, पर भलाई होने के लिए, भवसागर पार होने के लिए केवल एक ही कारण है। वह यह कि उसने अपने प्यारे पुत्र का नाम लिया था, मै अपने पेट रूपी पुत्र को पालने के लिए राम का नाम लेता हूँ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट व्यतिरेक।

मूल—जागिये न सोइए, बिगोइए जनम जाय,
दु:ख रोग रोइए, कलेस कोह काम को।
राजा, रंक, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये,
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को।
'तुलसी' कबंध कैसो धाइबो बिचारु अंध!
धुंध देखियत जग, सोच परिनाम को।
सोइबो जा राम के सनेह की समाधि सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को ॥८३॥

शब्दार्थ—बिगोइए = बिगाड़िए। जाय = व्यर्थ ही। रागी = सासारिक सुखों के अनुरागी। भूरि भागी = बड़े भाग्यवान्। कबंध = रुंड। अंध = मूर्ख। धुंध = धुंधला, अस्पष्ट।

भावार्थ—इस ससार मे न तो हम जागते ही हैं न सोते ही हैं (विलक्षण भ्रम मे पड़े हैं)। व्यर्थ ही जीवन नष्ट करते हैं, दुःख और रोग से रोते हैं, क्रोध और काम का क्लेश सहते हैं। राजा, रंक, रागी, विरागी, भाग्यवान् और अभागी सब जीव जले जाते हैं, इस कुटिल कलिकाल का यही प्रभाव है। तुलसीदास कहते हैं कि हे मूर्ख! यह (अपना चलना फिरना, काम करना इत्यादि) कबंध का सा दौड़ना समझो। ससारी लोगों में परिणाम की चिंता बहुत धुंधली सी दिखाई पड़ती है (बहुत कम लोग परिणाम की चिंता करते हैं)। अगर तुम सोना चाहते हो तो रामप्रेम की सुखद समाधि में सोओ—

यही तो ठीक सोना है, और जागना चाहते हो तो जीभ से अच्छी तरह से रामनाम जपो—यही ठीक जागना है।

मूल—बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान
बचन, बिराग, बेष, जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय 'तुलसी' है जाहि,
रामनाम जो भरोसो, ताहू को भरोसो है ॥८४॥

शब्दार्थ—त्रासन चकित = अधर्म के भय से भयभीत होकर। परावनो सो परो है = भगदड पड गई है, भाग गए हैं। करम उपासना कुवासना विनास्यो = कुवासना ने कर्म और उपासना का नाश कर दिया। ज्ञान बचन = ज्ञानियो के से वचन बोलकर। बिराग बेष = विरागियो का सा वेष बनाकर। हरो सो है = ठग सा लिया है। भगति भगायो लोग = लोगो को हरिभक्ति से भगा दिया है। निगम = वेद। नियोग = आज्ञा। केलि ही = खेल ही मे। छरो सो है = छल लिया है।

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों ने अपना अपना धर्म छोड़ दिया है, ब्रह्मचर्यादि आश्रमो में रहकर अपने जीवन को व्यतीत करना भी लोगों ने छोड़ दिया है। अधर्म के भय से भयभीत होकर वर्णाश्रम धर्मों मे भगदड़ पड़ गई है। कुवासनाओ ने कर्म और उपासना का नाश कर दिया। ज्ञानियों के से वचन बोलकर और विरागियो का सा वेष धारण कर संसार को ठग सा लिया है। गोरख ने लोगो मे योग क्या फैलाया, उनको रामभक्ति से विमुख कर दिया तथा वेदों की आज्ञाओं को तो खेल ही में छल लिया है अर्थात् वेद की आज्ञा का कपट से निर्वाह कर देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको कर्म मन वचन से स्वभावतः रामनाम का भरोसा है उसी का सच्चा भरोसा है। (कलिकाल मे मोक्ष के अन्य साधन सफल नहीं हो सकते हैं)।

मूल— (मत्तगयंद सवैया)

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है।
बर्न-बिभाग न आश्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है ॥८५॥

भावार्थ—बिहाइ = छोड़कर । सुपथ = सुमार्ग । राजसमाज = मंत्री आदि । दुनी = दुनिया को । दली है = पीड़ित कर दिया है ।

भावार्थ—कलियुग के कारण लोगों ने वेदों और पुराणों में कहे हुए सुंदर मार्ग को छोड़ दिया है, और कुमार्ग से चलकर करोड़ों कुचालें की हैं। समय भी विपरीत हो गया है। राजा अगर कृपालु भी हैं तो उनके दीवान मंत्री आदि कर्मचारी बड़े कपटी हैं। वर्णविभाग और आश्रमधर्म सब मिट गए हैं। दुःख, दोष और दरिद्रता ने संसार को पीड़ित कर दिया है। इतना सब कुछ होते हुए भी इस कलिकाल में सांसारिक सुख-भोग के लिए और मोक्ष प्राप्त करने के लिए रामचंद्रजी के नाम का प्रताप ही बड़ा बली है।

मूल—न मिटै भवसंकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूठ-जटो।
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाठ ठटो।
'तुलसी' जु सदा सुख चाहिये तौ रसना निसिबासर राम रटो ॥८६॥

शब्दार्थ—दुर्घट = न कर सकने के योग्य। अटो = घूमो। फोकट = निस्सार, झूठ। जटो = झूठ से जड़ा हुआ, दिखावा मात्र, पाखंड। जनि = मत। कुपेटक = बुरे पिटारे से (जैसा बाजीगर रखते हैं) चेटक = मंत्र टोटके इत्यादि। कौतुक ठाठ जनि ठटो = कौतुक की सामग्री मत बनो, हँसी मत कराओ। रसना = जिह्वा से। निसिबासर = रात दिन।

भावार्थ—तप करना कठिन है, अतः सांसारिक दुःख नहीं मिट सकते। अनेक जन्मों तक तीर्थों में भ्रमण करो पर कलियुग में ज्ञान और वैराग्य कहीं भी प्राप्त न होगा, सब निस्सार और पाखंडमय है। अतः नट की तरह अपने पेट रूपी बुरे पिटारे से मंत्रों द्वारा करोड़ों खेल तमाशे मत करो।

तुलसीदास कहते हैं कि जो सदा सुख चाहते हो तो जिह्वा से रात दिन राम का नाम रटो।

मूल—

दम दुर्गम, दाम, दया, मख-कर्म, सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सो होइ नहीं दृढ़ता तन को।
कलिकाल कराल में, राम कृपालु यहै अवलंब बड़ो मन को।
'तुलसी' सब संजम हीन सबै इक नाम अधार सदा जन को ४८७॥

शब्दार्थ—दम=इद्रियो को रोकना दुर्गम=कठिन। मख=यज्ञ। तन को=शरीर को। अवलब=सहारा।

शब्दार्थ—इस भयकर कलिकाल मे इद्रियों को दमन करना कठिन है। दान, दया, यज्ञकर्म और सुधर्म सब ही धन के अधीन हैं। तपस्या, तीर्थ, साधना, योग और वैराग्य हो नही सकते, अतः शरीर दृढ़ नही होता। तुलसीदास कहते हैं कि इस कलिकाल म मन का सबम बड़ा अवलब यही है कि रामचद्रजी कृपालु हैं। सब ही सब सयमो से हीन हैं, अतः भक्तो को सदा एक आपके नाम का ही आधार है।

मूल

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की।
अब जोर जरा जरि गात गयो; मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी' अवलंब बड़ी उर आखर दू की ॥८८॥

शब्दार्थ सुदेह=नरदेह। बिमोह-नदी तरनी=अज्ञानतारूपी नदी को पार करने के लिए नाव। ध्रू=ध्रुव। जोर=जोरदार भरपूर। जरा=बुढ़ापा। गात=(गात्र) शरीर। गलानि=(ग्लानि) घृणा। कुबानि=बुरा स्वभाव। मूकी=(स० मुच् धातु से) छोड़ी। नीके कै=अच्छी तरह से। ठीक दई=निश्चय कर दिया है। आखर दू की=दो अक्षर अर्थात् 'र' और 'म' की।

भावार्थ—अगर नरदेह के समान सुंदर देह पाकर अज्ञानता रूपी नदी को पार करने के लिए नाव न पाई, इस संसार मे आकर कुछ अच्छा कर्तव्य भी न किया, रामचंद्रजी के चरित्र की कथा बनाकर औरों से न कही, प्रह्लाद

और ध्रुव की कथा भी न सुनी, और अब भरपूर वृद्धावस्था से शरीर गल गया है तब भी मन मे ग्लानि मानकर अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ा, अर्थात्, इनमे से कुछ भी न किया तो तुलसीदास कहते हैं कि मैने अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि ऐसे समय मे दो अक्षर 'राम' नाम का ही मन में बड़ा भारी सहारा है।

मूल—

राम विहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की।
नामहि ते गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी।
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधू की।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ॥८६॥

शब्दार्थ—बिहाय (सं०)=छोड़कर। कबि-कोकिल=वाल्मीकि। चल-चूकी=चञ्चलता और अपराध। चलि गै=चल गई, निभ गई। कु-समाज=दुष्ट दुर्योधन की सभा मे। पति=प्रतिष्ठा, लाज। पति बजाइ रही=प्रतिष्ठा (रामनाम के प्रताप का) डंका बजाकर बनी रही। पांडु-बधू=द्रौपदी।

भावार्थ—शुद्ध 'राम' शब्द को जपना छोड़कर महामुनि वाल्मीकिजी ने 'मरा' शब्द को जपा, तब भी उनकी बिगड़ी हुई बात सुधर गई। नाम ही के प्रताप से हाथी की, वेश्या की और अजामिल की चंचलता और उनके सब अपराध निभ गए। रामनाम के प्रताप से दुष्ट दुर्योधन की बड़ी भारी सभा मे द्रौपदी की प्रतिष्ठा डंका बजाकर बनी रही। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको दो अक्षर 'रा' और 'म' पर प्रीति और विश्वास है उसका अब भी भला है।

मूल—

नाम अजामिल से खल तारन, तारत बारन बार-बधू को।
नाम हरे प्रहलाद बिषाद, पिताभय साँसति-सागर सूको।
नाम सों प्रीति प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहै राम सो जासु हिये 'तुलसी' हुलसै बल आखर दूको ॥६०॥

शब्दार्थ—तारन=तारनेवाले। बारन=हाथी। बारबधू=वेश्या। बिषाद=दुःख। पिताभय साँसति-सागर सूको=पिता के भय के कष्ट

तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम ही, बलि हौ मोकों ठाहरु हेरे।
बैरष बाँह बसाइए पै, 'तुलसी' घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥६२॥

शब्दार्थ—जीजै = जीवित रहने को। ठाऊँ = स्थान। सुरालय हू को न सबल नेरे = स्वर्ग मे जाने के लिये भी मेरे पास संबल नही है, अर्थात् मैने इतने पुण्य नही किए हैं जो मै स्वर्ग जा सकूं। जमत्रास = यमलोक। जम-किकर = यमदूत। नेरे = निकट। तुम्हारि सौं = आपकी ही शपथ। ठाहरु = स्थान। हेरे = दिखलाई देता है। बैरष = (तु० बैरक) पताका, झडा। प्राचीन काल में अगर किसी को घर, कुआँ, मदिर आदि बनाने होते थे तो जिस भूमि मे बनाना चाहता था उसी भूमि को राजा से माँग लेता था और उस भूमि मे राजा की अनुमति सूचित करने को एक झंडा गाड़ दिया जाता था जिससे कोई उसमे राजा की आज्ञा समझकर बाधा नही पहुँचा सकता था। पै = निश्चय। तुलसी-घर = तुलसीदास का घर। *खेरे = घरों का एक छोटा समूह।

भावार्थ—जीवित रहने को न कोई स्थान है, न मेरा कोई अपना गाँव है, न मेरे पास स्वर्ग में जाने को ही संबल है (अर्थात् मैंने ऐसे सुकृत भी नहीं किए जो मेरे स्वर्ग जाने मे सहायक हो)। यमलोक मै जाऊँ क्योंकर? मै राम का नाम रटता हूँ, कौन यमदूत मेरे निकट आ सकता है? तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचद्रजी, मुझे आपकी ही शपथ है, मै सब प्रकार से आपका हूँ। मै आपकी बलि जाऊँ, आप ही मुझको स्थान दिखलाई देते हैं। अपनी आज्ञासूचक पताका देकर अपनी शरण मे बसाइए। तुलसीदास का घर व्याध और अजामिल के ही गाँव मे हो (अर्थात् मै उन्ही के साथ आपके लोक मे बसूँ)।

मूल—

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई?
व्याध को साधुपनो कहिये, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई।
करुनाकर की करुना करुना-हित, नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे को खीझिय? रीझिय पै तुलसीहु सों है बलि सोई सगाई ॥६३॥

शब्दार्थ—जोग = योग। पेम = प्रेम। मति पेम पगाई = प्रेम मे मन

लगाया । करुना-हित = करुणा के लिए है । नाम सुहेत जो देत दगाई = नाम से प्रेम करने मे जो धोखा करते थे, अर्थात् जो धोखे से भी राम का नाम नहीं लेते थे । खीझिय = अप्रसन्न होइए । रीझिय = प्रसन्न होइए । तुलसीहु सों = तुलसीदास से भी । सगाई = सबंध, प्रेम ।

भावार्थ—अजामिल ने क्या योग किया था ? वेश्या की बुद्धि क्या कभी आपके प्रेम मे अनुरक्त हुई थी ? व्याध (वाल्मीकि) की साधुता को क्या कहे, वह तो भारी अपराधो मे ही जनाई पडती थी अर्थात् वह नरहत्या को ही अच्छी बात समझता था । दयालु रामचद्रजी की दया दया करने के लिए है अर्थात् अकारण ही दयापात्र के ऊपर दया करना रामचद्रजी का काम है) । उनका नाम जपकर जो उनसे अपने ऊपर करुणा कराना चाहता है वह तो उनसे दगा ही करता है अर्थात् उनको कलकित करना चाहता है (कि रामजी नाम जपने पर दया करते हैं) तुलसीदास कहते हैं कि हे भगवान्, मै आपकी बलैया लूँ, मुझसे भी वही नाता है (अर्थात् पापी हूँ अतः अकारण ही मुझ पर दया कीजिये) । अतः आप मुझसे अप्रसन्न क्यों होते हैं ? मेरे ऊपर तो आपको निश्चय अकारण कृपा करनी चाहिए (क्योंकि मै यह दावा नही करता कि मै आपका नाम जपता हूँ) ।

मूल—

> **जे मद-मार बिकार भरे ते अचार-बिचार समीप न जाहीं ।**
> **है अभिमान तऊ मन में जन भाखिहै दूसर दीन न पाहीं ?**
> **जो कछु बात बनाइ कहौं 'तुलसी' तुम तें तुम हौ उर माहीं ।**
> **जानकी-जीवन जानत हौ हम है तुम्हरे, तुममें सक नाहीं ॥६४॥**

शब्दार्थ—मद-मार-बिकार भरे = घमंड और कामदेव के विकार से भरे हुए, अर्थात् मदोन्मत्त और कामपीड़ित । अचार-बिचार = (मुहावरा) धार्मिक कृत्य, शौच, पूजा पाठ आदि । जानकी-जीवन = जानकी के प्राणनाथ (रामचन्द्रजी) । सक नाही = इसमे कुछ सदेह नही ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो मदोन्मत्त और काम-पीड़ित हैं वे धार्मिक कृत्यों के पास भी नहीं फटकते । तब भी अपने मन मे अभिमान रखते हैं कि यह जन दूसरे से दीन वचन न बोलेगा (तात्पर्य यह कि घमंड के मारे औरों को तुच्छ समझकर उनसे बोलने मे भी अपनी हीनता समझते

हैं) यदि मैं आपसे कुछ झूठ कहता हूँ तो आप मेरे हृदय में हैं ही (अतएव झूठ या सच आपसे छिपा नहीं रहेगा)। हे सीतापति रामचंद्रजी, आप जानते ही हैं कि मैं आपका ही हूँ और आपकी शरणागतपालकता में मुझे तनिक भी संदेह नहीं है।

मूल—

दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।
जाचक, दानि दुतीय नहीं तुम ही सबकी सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज ! भए हौ गरीब-नेवाज गरीब नेवाजी॥६५॥

शब्दार्थ—अहीस=शेषनाग आदि बडे बडे सर्प। महीस=राजा लोग। महामुनि=बड़े बडे मुनि। तापस=तपस्वी। समाजी=साम्प्रदायिक जन। सब बाजी राखत=सब कार्य निभते हो, सब मनोरथ पूर्ण करते हो। गरीब (अ०)=दीन। नेवाज (फा०)=रक्षक। गरीब नेवाज= दीनदयालु।

भावार्थ—हे रामचंद्रजी ! दानव, देवता बडे बड़े सर्पों के राजा, राजा लोग, बड़े बडे मुनि-जन तपस्वी, सिद्ध और अन्य सम्प्रदायों के लोगों समेत सारा संसार माँगनेवाला है। पर दानी आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं; आपही सब याचकों के सपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करते हैं। आप ऐसे महानुभाव हैं, तब भी शबरी के दिए हुए (जूठे) बेर खाए बिना आपकी भूख न मिटी। अतएव हे दीनो के रक्षक रामचंद्रजी ! आप दीनो की रक्षा करके ही दीनदयालु कहलाए हैं।

अलंकार—विधि।

मूल— (मनहरण कवित्त)

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-बन अहन अखेटकी।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।

'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥९६॥

शब्दार्थ—किसबी = परिश्रमी, मजूर। भाट = गा-गाकर माँगनेवाले। चाकर = नौकर, सेवक। चार = हलकारे। चेटकी = तमाशा करनेवाले, बाजीगर। पेट को = पेट भरने के लिए, आजीविका करने के लिए। अटत = भटकते हैं। अहन = दिन दिन भर (सं० अहः = दिन) अखेटकी = शिकारी। पेट ही को पचत = पेट भरने के लिए मरे मिटते हैं। बेटकी = बेटी। घनस्याम = काला बादल ('घनस्याम' शब्द यहाँ पर साभिप्राय है। आग बुझाने के लिए रामचद्रजी को 'घनस्याम' कहना अति ही उपयुक्त हुआ है)। बड़वागि = समुद्र की अग्नि। आगि पेट की = जठराग्नि।

भावार्थ—मजदूर, किसानो का समूह, बनिये, भिखारी, भाट, नौकर, चचल नट, चोर, हलकारे, बाजीगर आदि सब लोग पेट भरने के लिए ही पढ़ते हैं और (पेट भरने को ही) अपने मन से अनेक गुणो को गढते हैं (अर्थात् अनेक उपाय करते हैं), (पेट ही के लिए) पहाड़ों पर चढते हैं और (पेट ही के लिए) शिकारी लोग घने वनों मे दिन भर भटकते फिरते हैं। भले बुरे सब प्रकार के कर्म और धर्म-अधर्म करके पेट के लिए मरे मिटते हैं। यहाँ तक कि पेट के लिए अपने बेटा-बेटी तक को बेच देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह पेट की अग्नि (जठराग्नि) बड़वाग्नि से भी बड़ी है और केवल घने बादल रूपी रामचद्रजी से ही बुझ सकती है।

अलंकार—'घनस्याम' में परिकर अलकार है।

मूल—खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी?"
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबधु !
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ॥९७॥

शब्दार्थ—सीद्यमान=(सं०) दुखित। साँकरे=संकट के अवसर पर। दारिद-दसानन=दारिद्रय रूपी रावण ने। दुनी=दुनिया। दबाई दुनी=संसार को पीड़ित किया है। दुरित-दहन=पापों को जलानेवाला। हहा करी=विनती करता है।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचंद्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ, अब ऐसा कुसमय आ गया है कि किसान की तो खेती नहीं लगती, भिखारी को भीख नहीं मिलती, बनिये के पास वाणिज्य का साधन नहीं और नौकर को कहीं नौकरी नहीं मिलती। इस प्रकार जीविका से हीन होने के कारण सब लोग दुःखित हैं और शोक के वश होकर एक दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायँ (कुछ नहीं सूझ पडता)। हे रामजी, वेद और पुराणों में भी कहा है और संसार में देखा भी जाता है कि संकट पड़ने पर आपने सब पर कृपा की है। दरिद्रता रूपी रावण ने संसार को पीड़ित किया है, अतः हे दीनबंधु रामचन्द्रजी, आपको पाप नाशक समझकर मैं विनती करता हूँ।

अलंकार—रूपक (दारिद-दसानन)।

मूल—कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन,
जोबन जरत जुर, परै न कछू कही।
रामकाज कुपथ, कुसाज, भोग रोग ही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकही।
गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करत,
पब्बइ ते छार, छारै पब्बइ पलक ही।
कासों कीजै रोष? दोष दीजै काहि? पाहि राम!
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही॥६८॥

शब्दार्थ—कुल=वंश। करतूति=अच्छे काम, बड़े बड़े काम। भूति=ऐश्वर्य। जुर=ज्वर। बिबस=बेबस होकर। बलकही=प्रलाप करते हैं। तुलसीस=श्रीरामजी। पब्बइ=पर्वत। कुलि=समस्त। खलक (अरबी)=संसार। खलल=बाधा, अस्त-व्यस्त दशा।

भावार्थ—यौवन रूपी ज्वर में वंश-मर्यादा, पुरुषों के अच्छे काम, ऐश्वर्य, सुयश, सुन्दर रूप और गुण सब जल रहे हैं (अर्थात् युवावस्था

पाकर लोग अविचार से ये सब नष्ट कर डालते है)। कुछ कहा नही जाता कि क्या होगा। (यौवन रूपी ज्वर मे) राज्याधिकार कुपथ्य है, उसका बुरा सामान भोग करना रोग को बढाना है। (ज्वर मे कुपथ्य हुआ और रोग बढा तब) वेदपाठी जन (विद्वान् लोग) विद्या पाकर विवश होकर अडबड बकने लगते हैं (तात्पर्य यह कि जवानी, अधिकार और विद्या पाकर लोगों को कलिकाल मे त्रिदोष ही हो जाता है), (परंतु) रामजी की महिमा कोई नहीं जानता, जो पर्वत को छार और छार को एक पल मात्र मे पर्वत बना देते हैं। अतः हे रामजी, मेरी रक्षा करो। मै किससे क्रुद्ध हूँ और किसको दोष दूँ, कलियुग ने तो सारे ससार की दशा को अस्तव्यस्त कर डाला है।

अलंकार—रूपक (प्रथम दो चरणो मे)।

मूल—बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महा पातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है।
कलि को कलुष, मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है ॥६६॥

शब्दार्थ—रूँधिबे को = रक्षार्थ बाग को घेरने के लिए। सुरतरु = कल्पवृक्ष। भूरिभागी = भाग्यवानो को। डाटियतु है = फटकारते हैं। कलुष = (स०) पाप। मसक = मच्छर। पाँसुरी = हड्डी, पसली। पयोधि = समुद्र।

भावार्थ—इस कलियुग मे नीच लोग बबूल और बहेड़े के बागो को अच्छी प्रकार लगाते हैं और उस बाग की रक्षा करने के लिए बारी लगाने के लिए कल्प वृक्ष को काटते हैं (ऐसे निर्बुद्धि हैं) हरिश्चंद्र और दधीचि के समान दानियों को गाली देते हैं, पर आप इतने कजूस हैं कि चना चबाकर भी हाथ चाटते हैं (कि कही कुछ लगा तो नही है)। आप तो बड़े पापी हैं पर सपूर्ण पापों को नाश करने में समर्थ विष्णु और शिवजी की भी हँसी करने लगते हैं। आप तो भाग्यहीन हैं पर बड़े बड़े भाग्यवानो को भी ऐसी फटकार

देते हैं मानों वे उनको कुछ समझते ही नहीं। कलियुग के पापों ने बड़े लोगों के मन को अति ही मलिन कर दिया है। पर वे मच्छर की पसुलियों से समुद्र को पाटना चाहते हैं (अर्थात् बड़े पाप करने पर भी यह समझते हैं कि हम भवसागर पार हो जायँगे)।

कलंकार—छेकोक्ति।

मूल—सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम !
जाहि घालो चाहिये कहौ धौं राखै ताहि को ?
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हूँ तैं हूँ ताहि को सकल जग जाहि को।
काम कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को ?
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम-साहि को ॥१००॥

शब्दार्थ—घालो चाहिये = नाश करना चाहते हो। दूबरो = (सं०) दुर्बल। बिगारो ढारो रावरो न = (मुहावरा) आपका कुछ भी बिगाड़ा, गिराया नहीं। आँखि देखाइयत = डराते हो। एते मान = इतने परिमाण में, इतना। अकस = विरोध। आहि = (स० असि) हो। सुजान = जान कर। स्वान = (स० श्वान) अवध का कुक्कुर। पच्छ कियों = तरफ़-दारी की।

भावार्थ—हे कराल कलिकाल तुम आज राजा हो, पर मेरी बात सुनो। जिसको तुम मारना चाहते हो उसे कौन बचा सकता है ? मैं तो दीन और दुर्बल हूँ और मैने आपका कुछ बगाड़ा या गिराया नहीं (अर्थात् मेरा आपका कुछ सरोकार नहीं है)। मै भी और आप भी उसी ईश्वर के जिसका सारा संसार है, फिर मुझसे इतना विरोध करनेवाले आप हैं कौन, जो काम और क्रोध को मेरे पीछे लगाकर मुझे डराते हैं। मेरे स्वामी सुजान रामचद्रजी हैं, जिन्होंने कुत्ते का भी पक्ष किया था। मैं स्वामी रामचंद्रजी का सेवक हूँ और मेरा नाम 'रामबोला' है।

मूल— (मत्तगयद सवैया)

साँची कहौ कलिकाल कराल मै, ढारो बिगारो तिहारो कहा है ?
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहि सों आनि प्रपंच रहा है।
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना, 'तुलसी' जग दूसरे सो करिहौं न हहा है ॥१०१॥

शब्दार्थ—प्रपच = माया, जाल । मोहि सो आनि प्रपच रहा है = मेरे ही ऊपर जाल फैलाना है । जगनायक = ससार के स्वामी । लायक = बड़े योग्य (व्यग्य से, बड़े खराब) । पै = पर । मेरियौ = मेरी भी । कुटेव = बुरी बान, हठ । हहा करिहौं = विनती करूँगा ।

भावार्थ—हे कराल कलियुग, मैं सच कहता हूँ । मैने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मेरे ऊपर काम, क्रोध, लोभ, मोह का जाल फैलाता है (अर्थात् मुझे काम, क्रोध, लोभ और मोह में फँसाता है) । तुम ससार के स्वामी हो और सब कुछ करने मे समर्थ हो, पर मेरी भी यह बड़ी भारी हठ है कि मै सीतापति रामचद्रजी के अतिरिक्त किसी दूसरे से विनती नहीं करूँगा ।

नोट—सत्सग मे सुना है कि 'मेवा' नामक एक भक्त की स्त्री ने गोस्वामी जी की परीक्षा लेनी चाही थी । कई बार एकात मे उनके पास आई । पर गोस्वामीजी उसके चरणो पर गिर कर समझा बुझाकर लौटा देते थे । उसी समय ये छद (न० १००, १०१, १०२) गोस्वामीजी ने कहे थे ।

मूल—

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं ।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं ॥
जानि कै जोर करौ, परिनाम, तुम्हैं पछितैहौ पै मैं न भितैहौं ।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यौ उरगारि, हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं॥१०२॥

शब्दार्थ—नाम द्वै = सीता राम । नितै = प्रतिदिन । चितैहौं = देखूँगा । जोर करौ = ज़बर्दस्ती करो । परिनाम = अंतिम फल । पै = परंतु । भितैहौं = डरूँगा । उगिल्यौ = वमन कर दिया । उरगारि = गरुड़ । हौं = मै । त्यों ही = उसी प्रकार । हिये = (यहाँ पर) पेट में । हितैहौं = पचूँगा, हितकारक हूँगा ।

भावार्थ—प्रतिदिन गंगाजी का जल पीता हूँ और सीताराम सेन्दो नाम लेता हूँ। हे कलि! मेरा तुमसे लेना देना कुछ नहीं है (अर्थात् मेरा तुमसे कुछ भी सरोकार नहीं), अतः मै भूलकर भी कभी तुम्हारी ओर नहीं देखूँगा। अंतिम फल समझकर मुझ पर अत्याचार करो; अन्त में तुम्हीं पछताओगे, पर मै तुमसे न डरूँगा। जैसे गरुड़ ने ब्राह्मण को न पचा सकने के कारण वमन कर दिया था वैसे ही मै भी तुम्हारे पेट में न पचूँगा। (और अन्त में तुमको मुझे छोड़ ही देना पड़ेगा।)

नोट—गरुड़ ने एक समय धोखे से एक ब्राह्मण को निगल लिया था। उससे उनके पेट मे जलन पैदा हुई। अन्त में उन्हें उसे अपने पेट से निकाल देना पड़ा।

मूल—राजमराल के बालक पेलि कै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुबारि कै बीज बटोरत ऊसर को।
गुन-ज्ञान गुमान भभेरि बड़ो, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहि सूझै कछू धमधूसर को॥१०३॥

शब्दार्थ—राजमराल = राजहस। पेलि कै = ठेलकर। खूसर = उलूक, खूसट। सुचि = (शुचि) पवित्र। सालि = (शालि) धान। सकेलि = (सं० संकलन से) बटोरकर। सुबारि कै = जलाकर। ऊसर = अनुत्पादक भूमि। गुमान = घमड। भभेरि = मूर्ख। मूसर को = मुशल बनाने के लिए। बिचार = धर्माधर्म का विचार। अचार = तप शौचादि का आचरण। धमधूसर = निबुद्धि।

भावार्थ—सुन्दर राजहंसों के बालकों को (अर्थात् विवेकियों को) ठेलकर अत्र के लोग उल्लू के बच्चो का लालन पालन करते हैं, सुन्दर धानों को एकत्र करके उनको जलाकर ऊसर भूमि में खाने के लिए दाने बटोरते फिरते हैं। उन्हें गुण और ज्ञान का बड़ा घमंड है पर मूर्ख इतने बड़े हैं कि मुशल बनाने के लिए कल्पवृक्ष का पेड़ काटते हैं। इस कलियुग ने उनका सब आचार विचार हर लिया है, पर बेवकूफों को कुछ सूझता नहीं।

मूल—

कीबे कहा पढ़िबे को कहा फल बूझि न बेद को भेद बिचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद नाम को राम बिसारै।

बाद बिबाद बिसाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै।
चारिहु को, छहु को, नव को, दस आठ को, पाठ कुकाठ ज्यो फारै॥१०४॥

शब्दार्थ—स्वारथ = सासारिक सुख। परमारथ = मोक्ष। कामद = सब कामनाओ को देनेवाला। बिसारै = भुला देता है। बिषाद = दुःख। चारिहु = चारो वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व)। छहु = छः शास्त्र (मीमासा, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, योग, वेदात)। नव = नौ व्याकरण (इद्र, चद्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती) दस-आठ = अठारह पुराण। पाठ कुकाठ ज्यो फारै = इन सब का पढना ऐसा निष्फल है जैसा कुकाठ का फाड़ना निष्फल होता है, क्योकि कुकाठ सीधा नहीं फटता।

भावार्थ—क्या करना चाहिए, क्या पढना चाहिए, यह समझ बूझ कर वेद का भेद न विचारा तो नर-देह पाकर क्या किया? और इस प्रकार बिना विचारे पढ़ने का क्या फल रहा? यदि स्वार्थ और परमार्थ के देनेवाले, और कलियुग के सब मनोरथो के पूर्ण करनेवाले राम के नाम को भुला दिया, और व्यर्थ के वादविवाद से दुख बढाकर अपनी और दूसरों की भी छाती जलाई अर्थात् अपने को और दूसरों को भी चिंतित कर दिया तो चारो वेदो, छहों शास्त्रों, नवो व्याकरणो और अठारहो पुराणो का पढ़ना ऐसा ही निष्फल हुआ जैसा कुकाठ का फाड़ना।

मूल—

आगम बेद पुरान बखानत मारग कोटिक जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने।
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, 'तुलसी' हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥१०५॥

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र। लैजीव पराने = प्राणों को लेकर अर्थात् डर के मारे भाग गए।

भावार्थ—शास्त्र, वेद और पुराण वर्णन करते हैं कि मोक्ष-साधन के अनेक उपाय हैं परन्तु वे तो समझ में नहीं आते और जो मुनिगण हैं वे अपने ही को ईश्वर और सयाने सिद्ध कहलवाते हैं, परन्तु इस कलियुग ने सब धर्मों को ग्रस लिया है; जप, योग, विराग आदि तो डर के मारे लोप हो गए हैं।

अतएव तुलसीदास कहते हैं कि (जब मोक्ष-साधन से उपायों की यह दशा है तो) व्यर्थ की चिंता मे पड़कर अपने को क्यों कष्ट दे ? हम तो रामचंद्रजी के हाथो बिक गए हैं, अर्थात् रामचद्रजी की शरण में हो गए हैं (हमें किसी की कुछ परवाह नही है) ।

मूल—

धूत कहो, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्यांहव, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे कों एक न दैबे को दोऊ ॥१०६॥

शब्दार्थ—धूत = धूर्त (छली) । अवधूत = जोगी, भिखमंगा । रजपूत = क्षत्रिय (स० राजपुत्र से) जोलहा = ततुवाय, कपड़ा बुननेवाली एक जाति-विशेष । सरनाम = प्रसिद्ध । गुलाम (अ०) = सेवक । रुचै = अच्छा लगे । ओऊ = वह भी । मसीत = मसजिद (देवालय) । "लेना एक न देना दो"— (एक लोकोक्ति है) कुछ भी सरोकार नही ।

भावार्थ—कोई चाहे मुझे धूर्त कहे, चाहे भिखमंगा कहे, चाहे क्षत्रिय कहे, चाहे जोलहा कहे, मुझे कुछ परवा नही । न मुझे किसी की लड़की से अपने लड़के का व्याह ही करना है (जो मै पतित होने का डर करूँ), न मैं किसी जाति के साथ सपर्क रख के उसे बिगाड़ूँगा जिसको अच्छा लगे वह वही कहे । तुलसी तो रामचद्रजी का प्रसिद्ध सेवक है । माँगकर खाना और निश्चि त होकर देवालय में सो रहना, यही मेरा काम है; और किसी से मेरा कुछ प्रयोजन नही (न मै कलिकाल की 'गुलामी' लूँगा, न 'राम' नाम के दोनो अक्षर छोड़ूँगा) ।

मूल— (मनहरण कवित्त)

मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम कों, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो 'तुलसी' के एक नाम कों।
अति ही अयाने उपखानों नहिं बूझै लोग,
"साह ही कों गोत मोत होत है गुलाम कों।'

साधु कै असाधु कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परो ? जो हौं सो हौं राम को ॥१०७॥

शब्दार्थ—जाति पाँति = (मुहावरा) जाति-भेद । पाँति = (स०) पंक्ति । अयाने = अज्ञान । उपखानो = उपाख्यान को, कहावत को । साह = स्वामी । गोत = (स०) गोत्र । पोच = नीच । का काहू के द्वार परो ? = क्या किसी की शरण माँगता हूँ, अथवा क्या किसी के द्वार पर रक्षा पाने के लिए धरना दिए बैठा हूँ ।

भावार्थ—मुझे जाति-भेद का घमंड नहीं, न मैं किसी की जाति-पाँति चाहता हूँ । न किसी से मेरा कोई कार्य सिद्ध होता है, न मै ही किसी का कुछ प्रयोजन साध सकता हूँ । मेरा तो लोक और परलोक दोनों ही रामचद्रजी के हाथ हैं और मुझे तो केवल रामनाम का बड़ा भरोसा है । लोग अत्यंत मूर्ख हैं जो इस कहावत को नही समझते कि सेवक भी स्वामी के ही गोत्र का होता है । सज्जन हूँ अथवा दुर्जन, भला हूँ चाहे बुरा, मुझे इसकी परवाह नही । क्या मै किसी के दरवाजे धरना दिए पड़ा हूँ । मै जैसा कुछ भी हूँ, रामचंद्रजी का हूँ; अन्य किसी से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं ।

मूल—कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल,
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है ।
चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सब की सहत उर अंतर न ऊब है ।
'तुलसी' को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है ॥१९८॥

शब्दार्थ—कुसाज = कुसग, बुरी वस्तुओं का संग्रह । खरो खूब है = अत्यंत निष्कपट है । बानी = बाते । हबूब = (अ० हुबाब = पानी के बुलबुले) चर्चा । ऊब = घबराहट ।

भावार्थ—कोई कहते हैं कि यह तुलसी बुरी वस्तुओं का संग्रह करता है, अतः बड़ा छली है, और कोई कहते हैं कि यह राम का सच्चा सेवक है ।

सज्जन तो मुझे (तुलसीदास को) बड़ा भारी सज्जन समझते हैं और दुष्ट लोग दुर्जन ही समझते हैं। इस प्रकार करोड़ो भाँति की झूठी सच्ची चर्चाएँ उठती रहती हैं। पर मैं न किसी से कुछ चाहता हूँ, न किसी के विषय में कुछ भला बुरा ही कहता हूँ। सबका कथन सुन लेता हूँ, चित्त में कोई घबराहट नहीं है। मेरा तो भला-बुरा सब श्रीरामचद्रजी के ही हाथ है। रामचंद्रजी की भक्ति भूमि है जिसमें मेरी बुद्धि दूब होकर जमी है (अर्थात् मेरी बुद्धि रामचद्रजी की भक्ति में ही लगी हुई है)।

मूल—जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज सेवक समाज साज
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के।
जागैं बुध बिद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवैं सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के ॥१०६॥

शब्दार्थ—जोग = योगी। जगम = भ्रमण करनेवाले संन्यासी। जती = (यती) संयमी। जमाती = समूह मे रहनेवाले संन्यासी। बाम = कुटिल। भोग ही = भोग करने के लिए।

भावार्थ—योगी, जगम, यती, जमायती आदि संन्यासी जागते रहते हैं क्योकि वे एक तो परमेश्वर के ध्यान में लगे रहते हैं और दूसरे लोभ, मोह, क्रोध और काम से हृदय में सदा डरते रहते हैं (कहीं वे उनको अपने वश मे न कर ले, इस भय से वे सदा सावधान रहते हैं)। राजा लोग अपने राजकाज की चिंता के कारण जागते रहते हैं और सेवकगण अपने काम-काज की देख-भाल के लिए जागते रहते हैं; वे अपने बड़े कुटिल शत्रु के समाचार सुनकर (उसके निवारण का उपाय) सोचते रहते हैं। बुद्धिमान् पंडित जन सावधान चित्त से विद्योपार्जन के लिए जागते रहते हैं। लोभी जन भूमि और घर के पाने के लालच के वश होकर जागते रहते हैं। सुख-भोग करनेवाले सुख भोग करने के लिए और विरही और रोगी शोक के

कारण जागते रहते हैं, परतु मै (तुलसीदास) केवल रामचंद्रजी के भरोसे सुख से सोता हूँ । ।

मूल— (छप्पय छद)

राम मातु, पितु, बंधु, सुजन, गुरु पूज्य, परम हित ।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ।
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति ।
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम त सकल फल ।
कह 'तुलसिदास' अब जब कबहुँ एक राम तें मोर भल ।।११०।।

शब्दार्थ—सुजन = (स० स्वजन) आत्मीय । हित = हितकारी, मित्र । साहेब = स्वामी । नेह = (सं०) स्नेह । नाता = सबध । पुनीत = पवित्र । कोस = (कोष खजाना । गति = पहुँच, शरण । पति = प्रतिष्ठा । परमारथ = मोक्ष । स्वारथ = लौकिक सुख ।

भावार्थ—मेरे माता, पिता, बधु, आत्मीय, पूज्य गुरु, परम हितकारी, स्वामी, सखा, सहायक और जहाँ तक पवित्र मन से स्नेह के सबंध हैं सब कुछ रामचन्द्रजी ही हैं । देश, कोष, वंश, कर्म, धर्म, धन, घर, पृथ्वी मेरी पहुँच और सब प्रकार से मेरी जाति-पाँति की प्रतिष्ठा रामचद्रजी ही तक है । स्वार्थ परमार्थ, सुयश आदि सब फल राम-कृपा से ही सुलभ हैं । तुलसीदास कहते हैं कि इस समय या जब कभी हो, मेरा भला एक रामचंद्रजी से ही हो सकता है ।

मूल—महाराज बलि जाउँ राम सेवक-सुखदायक ।
महाराज बलि जाउँ राम सुन्दर सब लायक ।
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन ।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-विलोचन ।
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन ।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल 'तुलसिदास' राखिय सरन ।।१११।।

शब्दार्थ—राजीव = कमल । राजीव-विलोचन = कमल के समान आँखों वाले । करुनायतन = करुणा के घर । प्रनतपाल = प्रणत (शरणागत) के रक्षक ।

भावार्थ—हे सेवकों को सुख देनेवाले महाराज रामचद्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। सुदर और सब प्रकार से समर्थ महाराज रामचंद्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। हे सब सकटो से छुड़ानेवाले महाराज रामचद्रजी, मै आपकी बलि जाऊँ। हे कमलनेत्र महाराज रामचंद्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। हे दयालु शरणागत-रक्षक, पापो को दूर करनेवाले रामचद्रजी, मै आपकी बलि जाऊँ। हे रामचन्द्रजी, मै आपकी बलिहारी जाऊँ कलियुग के भय से व्याकुल इस तुलसीदास को शरण मे लीजिए।

मूल—जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर।
मुनि-मख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन करुनाकर।
नृपगन-बलमद सहित संभु-कोदंड-बिहंडन।
जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन।
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमाभवन।
कह 'तुलसिदास' सुर-मुकुटमनि जय जय जय जानकिरवन ॥११२॥

शब्दार्थ—मानहर—घमड चूर करनेवाले। मख = (सं०) यज्ञ। दच्छ = (स० दक्ष) चतुर। सिलातारन = शिलारूप मे परिणत अहल्या का उद्धार करनेवाले। करुनाकर = (करुणा + आकर = खदान) दयालु। कोदड = धनुष। बिहडन = (विखडन) तोड़नेवाले। कुठारधर = परशुराम। मंडन = भूषण। सुखमा = (ष० सुषमा) अत्यत शोभा। जानकि-रवन = (जानकी-रमण) रामचद्रजी।

भावार्थ—ताड़का और सुबाहु को मारनेवाले और मारीच का दर्प दूर करनेवाले रामचद्रजी की जय हो। विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करने मे चतुर, शिलारूप मे परिणत अहल्या के उद्धार करनेवाले, दयासागर रामचंद्रजी की जय हो। राजसमूह के घमड सहित शिवधनुष को तोड़नेवाले (अर्थात् राजाओ के बल का घमड चूर कर शिवधनुष को तोड़नेवाले), परशुराम के दर्प का नाश करनेवाले, सूर्य-कुल को भूषित करनेवाले रामचद्रजी की जय हो। जनकपुरी को आनंद देनेवाले, सुख के सागर और अत्यन्त सुन्दर रामचद्रजी की जय हो। तुलसीदास कहते हैं कि देवताओ में श्रेष्ठ जानकीपति रामचद्रजी की जय हो, जय हो, जय हो।

अलंकार—आशिषालंकार (केशव के मत से)

मूल—जय जयत-जयकर, अनंत, सज्जन-जन-रंजन।
जय बिराध-बध-बिदुप, बिबुध-मुनिगन भय-भंजन।
जय निसिचरी-विरूप-करन रघुबंस-बिभूपन।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन।
जय दंडकबन-पावन-करन 'तुलसिदास' संसय-समन।
जग बिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन ॥११३॥

शब्दार्थ—जयन्त = इंद्र का पुत्र। अनंत = जिसका अंत न पाया जाय। सज्जन-जन-रंजन = सज्जन गणों को आनंदित करनेवाले। बिराध-बध बिदुष = बिराध नामक राक्षस के वध करने में निपुण। बिबुध = (विशेष प्रकार से बुद्धिमान्) देवता। निसिचरी-बिरूप-करन = शूर्पनखा को (उसके नाक कान काटकर) कुरूपा कर देनेवाले। सुभट = योद्धा। पावन = पवित्र। संसय-समन = (संशय-शमन) संदेह को दूर करनेवाले। विदित = प्रख्यात, प्रकट। जगतमनि = संसार में सबसे श्रेष्ठ।

भावार्थ—जयंत पर जय प्राप्त करनेवाले, अनंत और सज्जनगणों को आनन्दित करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। विराध को मारने मे पंडित और देवता और मुनिगण का भय दूर करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। शूर्पनखा को कुरूप करनेवाले रघुवंश के विभूषण-स्वरूप रामचंद्रजी की जय हो। त्रिशिरा, खर, दूषण के चौदह सहस्र योद्धाओं को मारनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। दंडकारण्य को पवित्र करनेवाले और तुलसीदास के सब संदेहों को दूर करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। संसार मे प्रख्यात जगत्मणि सीतापति रामचंद्रजी की जय हो, जय हो, जय हो, जय हो।

मूल—जय मायामृग मथन गीध-सबरी-उद्धारन।
जय कबंध-सूदन बिसाल तरु-ताल-बिदारन।
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि-कराल-भट-भालु कटक पालन, कृपालु चित।
जय सियबियोग-दुखहेतु-कृत-सेतु-बंध बारिधि-दमन।
दससीस-बिभीषन अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन ॥११४॥

शब्दार्थ—मायामृग-मथन = माया से हरिण बने हुये मारीच को मारने वाले। कबंध-सूदन = कबंध नामक राक्षस को मारनेवाले। तरुताल = सात ताल के वृक्ष। दवन = (दमन) मारनेवाले। थपन = स्थापित करनेवाले। सत-हित सज्जनों के हितकर्ता। कटक = सेना। सियबियोग दुख-हेतु-कृत-सेतु बध = सीता के बियोग के दुःख के कारण किया है सेतु बंध जिसने ऐसे रामचद्रजी (बहुव्रीहि समास)। बारिधि = समुद्र। दससीस-विभीषन अभय-प्रद = रावण से भयभीत विभीषण को अभय देनेवाले।

भावार्थ—कपट के मृग को मारनेवाले, गृद्धराज जटायु और शबरी का उद्धार करनेवाले रामचद्रजी की जय हो। कबध नामक राक्षस को मारनेवाले और बड़े भारी (सात) ताल के वृक्षों को (एक बाण से) गिरा देनेवाले रामचद्रजी की जय हो। बली बालि को मारनेवाले, सुग्रीव को राजगद्दी पर स्थापित करनेवाले, सज्जनो के हितकर्ता, वानर और भयकर योद्धा भालुओं की सेना के रक्षक, दयालु रामचद्रजी की जय हो। सीता के वियोग के दुःख के कारण सेतु बँधानेवाले और समुद्र का दमन करनेवाले रामचद्रजी की जय हो। रावण द्वारा भयभीत विभीषण को अभय देनेवाले जानकीपति रामचद्रजी की जय हो, जय हो, जय हो।

मू०—कनक-कुधर केदार, बीज सुंदर सुरमनि बर।
सींचि कामधुक-धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर।
तीरथपति अंकुर-सरूप, जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकत-मय साखा-सुपत्र, मंजरि सुलच्छि जेहि।
कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह 'तुलसिदास' रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ॥११५॥

शब्दार्थ—कनक-कुधर-केदार = सुमेरु पर्वत रूपी क्यारी में। कनक = सोना। कुधर = (कु = पृथ्वी + धर) पर्वत। केदार = क्यारी। सुरमनि-वर = चिंतामणि। कामधुक = कामनाओं की दुहनेवाली अर्थात् मनोरथों को पूर्ण करनेवाली। धेनु = गाय। कामधुकधेनु = कामधेनु नाम की देवताओं की एक गाय। सुधामय = अमृतमय। पय = दुग्ध। बिसुद्ध तर = अति शुद्ध। तीरथपति = प्रयागराज। जच्छेस = यक्षों के स्वामी, कुवेर। रच्छ = रक्षा करते हो। मरकत = पन्ना। मजरि = बौर। लच्छि

=लक्ष्मी । कैवल्य (सं०)=मोक्ष । बरसि=बरसावे । सरिस=(सं० सदृश) समान ।

भावार्थ--सुमेरु पर्वत रूपी क्यारी मे चितामणि रूपी श्रेष्ठ बीज बोया जाय, उसको कामधेनु के अत्यन्त शुद्ध अमृतमय दूध से सींचे, तीर्थराज प्रयाग उसके अकुर स्वरूप उत्पन्न हों, कुबेर उसकी रखवाली करते हों, पन्ना रत्न ही जिसकी शाखा और पत्र हो और लक्ष्मी ही जिसकी सुन्दर मंजरी हो, ऐसा सुन्दर स्वभाववाला, सब सुखों को बरसानेवाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सब फलों का देनेवाला जब कोई कल्पवृक्ष हो, तब भी (तुलसीदास कहते हैं कि) हे रामचद्रजी, क्या वह दान देने में आपके हाथ की बराबरी कर सकता है (अर्थात् नहीं) ?

अलंकार—समस्तवस्तु विषयक साग रूपक से पुष्ट अतिशयोक्ति ।

नोट—अत्यत ऊँची कल्पना है । इसी प्रकार की एक दूसरी कल्पना सीताजी के सौदर्य के विषय मे रामायण के बालकाड मे है जिसका आरभ—"जो छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छप सोई" से होता है ।

मूल—जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै ।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै ।
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महिं ।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं ।
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित ।
सब जाय दास 'तुलसी' कहै जौ न रामपद नेह नित ।।११६।।

शब्दार्थ—जाय=व्यर्थ । पाइ रन रारि न मडै=युद्ध करने का सुअवसर पाकर भी युद्ध न करे । जती=सयमी । विषय-वासना=सासारिक वस्तुओं के सुख-भोग की इच्छा । छंडै=छोड़े । रत=अनुरक्त, लगा हुआ । पति न हित=पति प्यारा न हो ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैंकि वह शक्तिमान् योद्धा व्यर्थ है जो युद्ध करने का सुअवसर पाकर युद्ध न करे । वह सयमी व्यर्थ कहाता है जो सासारिक विषय-भोग से विरक्त न हो । दान न देनेवाला धनवान व्यर्थ है । धर्महीन निर्धन व्यर्थ है । वह पडित भी व्यर्थ है जो पुराणों

का अध्ययन करने पर भी पुण्य कर्म मे नही लगता। माता-पिता की भक्ति से रहित पुत्र व्यर्थ है। वह स्त्री भी व्यर्थ है जिसको पति से प्रेम न हो। परन्तु यदि रामचंद्रजी के चरणो से नित्य स्नेह नही है तो उपर्युक्त सब ही व्यक्ति व्यर्थ हैं।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

मूल—को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों ?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन कर दीन्हों ?
कौन हृदय नहि लाग कठिन अति नारिनयन-सर ?
लोचनजुत नहि अध भयो श्री पाइ कौन नर ?
सुर-नागलोक-महिमंडलहु को जो मोह कीन्हों जय न ?
कह 'तुलसिदास' सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ॥११७॥

शब्दार्थ—निरदह्यो = जलाया सतप्त किया। त्रासन = भयभीत। कौन = किसके। नारिनयन सर = स्त्रियो के कटाक्ष। लोचनजुत = लोचनयुक्त होते हुए भी। श्री = लक्ष्मी, धन-सपत्ति। नागलोक = पाताल। ऊबरै = छूट जाता है, बच जाता है।

भावार्थ—ऐसा कौन है जिसको क्रोध ने नही जलाया ? काम ने किसको वश मे नही किया ? लोभ ने दृढ़ फदे मे बाँधकर किसको भयभीत नहीं किया ? स्त्रियों के तीव्र कटाक्ष ने किसके हृदय मे कुछ असर नही किये ? धन वैभव पाकर आँख होते हुए भी कौन मनुष्य अधा नही हुआ ? स्वर्ग, पाताल और पृथ्वीमडल में ऐसा कौन है जिसको मोह ने न जीता हो ? (तात्पर्य यह कि ऐसा कोई भी नही जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और स्त्री के वश में न हुआ हो) तुलसीदास कहते हैं कि इनसे तो वही बच सकता है जिसको कमलनेत्र रामचन्द्रजी अपनी शरण मे ले ले।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

मूल— (सवैया)
भौंह-कमान-सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
कोप कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे।
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग मे बहु नाच न नाँचे।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी', पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ॥११८॥

शब्दार्थ—भौह-कमान-सँधान सुठान = भौह रूपी धनुष मे अच्छे प्रकार किया गया है संधान जिनका। नारि-बिलोकनि-बान = स्त्रियो के कटाक्ष रूपी बाण। कोप-कृसानु = कोप रूपी अग्नि। गुमान-अवाँ = अहकार रूपी भट्ठी में। आँच न आँचे = गरमी से सतप्त न हुए।

भावार्थ—जो साधु स्त्रियो के भौह रूपी धनुष मे अच्छे प्रकार सधान किए हुए कटाक्ष रूपी बाणों से बच गए हो (अर्थात् उनके लक्ष्य न हुए हो), अहकार रूपी भट्ठी मे क्रोध रूपी अग्नि की आँच से जिनके मन घड़े की तरह न तपे हों, लोभ रूपी नट के वश मे होकर जो ससार मे अनेक प्रकार नाच न नाचे हो (अर्थात् लोभ के कारण जिन्होने अनेक भाँति के कृत्य न किए हों), तुलसीदास कहते हैं कि वे ही साधु रामचद्रजी के सच्चे सेवक हैं; यों तो सब साधु अच्छे कहे ही जाते हैं।

मूल— (मनहरण कवित्त)

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की।
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहिं,
मानस निवास-भूमि लोभ, मोह काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे,
'तुलसी' से भगत भगति चहैं राम की ! ॥११६॥

शब्दार्थ—भेष सुबनाइ = सुन्दर साधुओं का सा वेष बनाकर। चुवाइ = शात और मधुर करके। गति = पहुँच, शरण। उपासना = पूजा-पाठ, भक्ति। दुरावै = छिपाता है। दुरबासनाहि = दुर्वासना को, बुरी इच्छाओ को। मानस = मन। निवास-भूमि = रहने का स्थान। राग = सासारिक विषयों से प्रेम। रोष = क्रोध। ईरषा = (स० ईर्ष्या) पराई उन्नति देखकर जलना।

भावार्थ—मन से पृथ्वी, धन और घर की चिता नहीं छूटती, पर सुन्दर साधुओं का वेष बनाकर मुख से शात और मीठे बचन बनाकर कहते हैं। करोड़ों प्रकार के भले बुरे उपायों से अपनी देह का लालन-पालन करते हैं पर मुख से कहते हैं कि हम तो राम-नाम की शरण हैं। उपासना को तो प्रगट

करते हैं, पर अपने मन मे कुवासनाओ को छिपाए रखते हैं। मन तो लोभ, मोह और काम का निवासस्थान ही है। इस प्रकार के राग, रोष, ईर्ष्या, कपट और कुटिलता से भरे तुलसीदास के समान भक्त भी राम की भक्ति चाहते हैं। क्या ही आश्चर्य की बात है!

मूल—कालिह ही तरुन तन, कालिह ही धरनि धन,
'कालिह ही जितौंगो रन', कहत कुचालि है।
'कालिह ही साधौं गो काज', कालिह ही राजा समाज,
मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालिहै'।
'तुलसी' यही कुभाँति घने घर घालि आई;
घने घर घालति है, घने घर घालिहै।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालिह है' ॥१२०॥

शब्दार्थ—साधौंगो = सिद्ध करूँगा। मसक = मच्छर। हालिहै = हिल जायगा। यही कुभाँति = इसी प्रकार की दुर्बुद्धि। घने = बहुत, असंख्य। घालना = नष्ट करना। सूझै न = समझ मे नही आता।

भावार्थ—कुचाली लोग कहते है कि कल ही हमारे शरीर मे यौवन आएगा, कल ही पृथ्वी और धन पैदा करेंगे, कल ही युद्ध मे जय प्राप्त करेंगे, कल ही अपने सब कार्य साधन कर लेंगे और कल ही राज-समाज जोड़ लेंगे (अर्थात् राजा हो जाएँगे)। मच्छर के समान छोटे होकर भी कहते हैं कि हमारे बोझ से सुमेरु पर्वत भी हिल जायगा। तुलसीदास कहते हैं कि यही दुर्बुद्धि बुरी तरह से असंख्य घरो को नष्ट कर आई, अनेक घर उजाड़ रही है, और अनेक घरो को उजाड़ेगी। ऐसा सब देखते-सुनते और समझते हुए भी किसी की बुद्धि मे यह न सूझा और न किसी ने कभी यह कहा कि 'कल ही काल (मौत) का भी काल है।' (कौन निश्चय है कि 'कल' आवेगा ही, संभव है आज ही अंतिम दिवस हो)।

मूल—भयो न तिकाल तिहूँ लोक 'तुलसी' सो मंद,
निंदै सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोग, हिय हानि मानै जानकीस,
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं।

पेट भरिबे.के काज महाराज को कहायों,
महाराज हू कह्यो है, 'प्रनत बिमोचु हौं'।
निज अघ-जाल, कलिकाल की करालता,
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥१२१॥

शब्दार्थ—तिकाल = त्रिकाल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनो कालो मे) परेखो = उलाहना। पातकी = पापी। प्रपची = छली। पोचु = नीच। प्रनत = भक्त, शरणागत। प्रनत-बिमोचु = भक्तो को सकट से छुड़ानेवाला। अघजाल = पापो का समूह।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि मेरे समान तीनो कालो मे (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनो लोको मे (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) कोई बुरा नही हुआ, इसलिए सब सज्जन लोग मेरी निंदा करते है पर मै इस पर कुछ भी सकोच नही मानता। रामजी मुझे अपने योग्य नही मानते, इसलिए मुझे अपनाने मे अपनी हानि (बदनामी) समझते है। अतः जानकीश, मै आपको क्योकर उलाहना दूँ। मै वास्तव मे पापी, छली और नीच हूँ। मै अपना पेट भरने के लिए आपका कहलाता हूँ, और आपने भी कहा है कि "मै शरणागतो को संकट से बचानेवाला हूँ।" परतु मै अपने असख्य पाप, और उस पर कलियुग की कड़ाई देखकर व्याकुल होता हूँ। इसी कारण मुझे चिंता है।

मूल—धरम के सेतु जगमंगल के हेतु भूमि,
भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल प्रभु चालि मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को।
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
'तुलसी' तिहारो घरजायऊ है घर को ॥१२२॥

शब्दार्थ—धरम के सेतु = धर्म की मर्यादा। हेतु = कारण। पन = प्रण। कनावड़े = एहसानमंद, ऋणी। प्रसंग = कथा, वार्ता। अनुचर = सेवक (तुलसीदास)। घरजायऊ = घरजाया, गुलाम।

भावार्थ—श्रीरामचंद्रजी धर्म की मर्यादा हैं। उन्होने संसार का मंगल करने और पृथ्वी का भार हरण करने के लिए मनुष्य का अवतार लिया है। प्रभु की चाल है कि विश्वास और प्रीति का पालन करते हैं। लोक और वेदों की मानरक्षा करना रामचंद्रजी का प्रण है। तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचंद्रजी, आप विभीषण और वानरो के ऋणी हैं, यह कथा सुनकर मुझ सेवक को ईर्ष्या होती है (कि मेरे भी ऋणी क्यो न हुए)। अतएव, मैं आपकी बलैया लूँ, अपने प्रण की रक्षा करके जो हो सके वही कीजिए। मैं तो आपके घर का घरजाया सेवक हूँ।

मूल—नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
सब ही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर,
ताहि लगि रक ज्यों सनेह को ललात हौं।
'तुलसी' बिलोकि कलिकाल की करालता,
कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस,
आपनो न सोच, स्वामी-सोच ही सुखात हौं॥१२३॥

शब्दार्थ—नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर=उर (में) महाराज के नाम के सग नीको निबाह कीजै। बार यहि=इस बार। चखकोर कीजै=सुदृष्टि फेरिए। ताहि लगि=उस सुदृष्टि के लिए। रक ज्यों=दरिद्र की तरह। सनेह=घी। ललात हौं=इच्छुक रहता हूँ। लोक एक भाँति को=लोग बहुत बुरे हो गए हैं। तिलोकनाथ लोकबस=क्या त्रिलोकीनाथ भी लोगो की तरह हो गए?

भावार्थ—रामचद्रजी के नाम के साथ अच्छे प्रकार निर्वाह करनेवाला (अर्थात् रामनाम जपनेवाला) सबको मन से अच्छा लगता है, पर मैं लोगों को अच्छा नही लगता, अतः हे रामचद्रजी, इस बार मेरी ओर अपनी शुभ दृष्टि फेरिए। आपकी उस सुदृष्टि के लिए मै उसी प्रकार लालायित रहता हूँ जैसे दरिद्री घृत के लिए (अच्छे पकवानो का) इच्छुक रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग की इस करालता को देख कर (अर्थात् घोर कलियुग देखकर) और कृपालु रामचद्रजी का स्वभाव समझकर (अर्थात् रामचद्रजी

पापियों का उद्धार करनेवाले हे यह समझकर) मै सकुचता हूँ (कि रामचंद्रजी किस किस का उद्धार करेंगे और उनमें मेरा नबर कैसे आवेगा ?)। संसार के लोग तो बहुत बुरे हो गये हैं, पर क्या त्रिलोकीनाथ भी वैसे ही हो गए हैं ? हे स्वामी, मुझे अपने बुरे होने का सोच नही, मै तो आपके सोच से सूखा जाता हूँ (कि लोग यह कहने लगेगे कि रामजी भो कलियुग में अपना सुभाव छोड़कर ऐसे करुणारहित हो गए कि अपने भक्त तुलसी को न तार सके)।

नोट—निहायत उत्तम व्यग्य है।

मूल—तौ लौं लोभ-लोलुप ललात लालची लबार,
बार बार लालच धरनि धन धाम को।
तब लौं बियोग-रोग सोग, भोग जातना को,
जुग सम लगत जीवन जाम जाम को।
तौ लौं दुख-दारिद दहत अति नित तनु,
'तुलसी' है किंकर बिमोह कोह काम को।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौ लौं जग भयो न बजाइ राजा राम को ॥१२४॥

शब्दार्थ—तौ लौं = तब तक। लोलुप = इंद्रिय-सुखों का लालची। लबार = झूठा। जातना = (स० यातना) कष्ट। जुग = युग। जाम = (याम) प्रहर। तनु = शरीर। किंकर = सेवक। निरापने = (निर् + आपने) अपने नहीं अर्थात् पराये। जन = भक्त। बजाइ = डके की चोट, खुल्लमखुल्ला। जौ लौं = जब तक।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक मनुष्य खुल्लमखुल्ला राजा रामचंद्रजी का भक्त नहीं हो जाता तभी तक वह इंद्रिय सुख-लोलुप, टुकड़े-टुकड़े को लालायित रहनेवाला, धन-संपत्ति का लालची, बार बार झूठ बोलनेवाला और पृथ्वी, धन तथा घर का लालची रहता है। तभी तक बियोग और रोग का शोक रहता है, तभी तक कष्ट भोगने पड़ते हैं, और पहर पहर का जीवन युग के समान प्रतीत होता है, तभी तक दुःख और दारिद्रय नित्य ही शरीर को अतिशय कष्ट देते हैं, तभी तक वह लोभ, मोह, काम और क्रोध

का दास रहता है जिससे सब दुःख तो अपने हो जाते हैं और सब सुख पराये हो जाते है।

अन्वय—तौ लो लोभ, मोह, कोह, काम को किंकर है। प्रथम पाद में 'लोभ' का समन्वय तृतीय पाद के उत्तरार्द्ध से करना ठीक है।

मूल—तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।
तब लौं उबेने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाए मुँह सहत पराभौ देस देस को।
तब लौं दयावनो, दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़ीबो झूने खेस को।
जब लौं न भजै जीह जानकीजीवन राम,
राजन को राज सो तौ साहेब महेस को ॥१२५॥

शब्दार्थ—उबेने पायँ=नगे पाँव। पेटै खलाय=लोगों को अपना खाली पेट दिखाकर। बाए मुँह=मुँह खोलकर। पराभौ=(सं० पराभव) तिरस्कार, अपमान। दयावनो=दया का पात्र। साथरी=चटाई। झूने=झीने, झाझरे, बारीक। खेस=पुरानी रुई के पहले का बना हुआ खुरदुरा कपड़ा। जीह=जिह्वा। साहेब=स्वामी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि तभी तक मनुष्य पापी, दीन, हीन रहता है, (तभी तक) स्वप्न मे भी उसे सुख नही मिलता, (तभी तक) वह दु:खी मनुष्य जहाँ कही भी जाता है क्लेश का पात्र होता है, तभी तक वह नगे पाँव, भूखे पेट और मुँह खोले हुए भटकता हुआ जगह जगह अपमान सहता है, तभी तक वह दयापात्र है, (तभी तक) उसे दरिद्रता का असह्य दुःख है, (तभी तक) उसे चटाई पर सोना और बारीक खुरदुरे कपड़े को ओढ़ना पड़ता है, जब तक उस मनुष्य की जीभ जानकीपति रामचन्द्रजी को न भजे, जो राजाओ के भी राजा और महादेवजी तक के स्वामी हैं।

मूल—ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रान हूँ के प्रान हौ।
काल हू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हूँ के करम, निदान के निदान हौ।

निगम को अगम, सुगम 'तुलसी' हू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ।
महिमा अपार काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥१२६॥

शब्दार्थ—महाभूत = पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पच महा-भूत हैं। महाभूतन के महाभूत = पंच-महाभूतो से संपूर्ण सृष्टि बनती है उन पंच-महाभूतों के भी आदि कारण। निदान = कारण। निगम = वेद। अगम = जहाँ कोई न जा सके, जिसकी थाह कोई न ले सके। एते मान = इतने। बोल = वचन।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि देव रामचंद्रजी, आप समर्थों के भी स्वामी हैं, महाराजाओं के भी महाराजा है, देवताओं के भी देवता हैं, प्राणों के भी प्राण हैं, काल के भी काल हैं, पंच महाभूतो के भी आदि कारण हैं, कर्म के भी कर्म हैं और कारण के भी कारण हैं। आप वेद को भी अगम हैं और मुझ ऐसो को (भक्तों को) सुलभ हैं। आपकी महिमा अपार है, आपके किसी वचन का वारापार नही (अर्थात् आपकी आज्ञा अटल है)। हे स्वामी, आप अपने इस बड़े प्रभुत्व को निबाहने मे बड़े सावधान हैं।

अलंकार—अत्युक्ति।

मूल— (मत्तगयंद सवैया)

आरत-पालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा, अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।
सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी' तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेसुर काढ़े ॥१२७॥

शब्दार्थ—आरत-पालु = दुःखियो के रक्षक। जेहि = जिसने भी। सुमिरे = स्मरण किया। अँकरे = (स० अक्रय) महँगा। खोटेउ = निकम्मे भी। तिहुँ ताप = दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकार के ताप। डाढ़े = दग्ध, जले हुए। बदौ = मानता हूँ। पाहन = (सं० पाषाण) पत्थर। काढ़े = निकाले, प्रकट करा दिया।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी कृपालु और दुखियों के रक्षक हैं। जिसने भी (जिस स्थान पर) उनका स्मरण किया, उनके लिए

उसी स्थान पर उपस्थित हो जाते हैं। रामनाम के प्रताप की महिमा बड़ी भारी है। इसने खोटो को भी बहुमूल्य और छोटो को भी बड़ा कर दिया। यद्यपि सेवक तो एक से एक बढ़कर अनेक हुए जो तीनो तापों से दग्ध नही हुए, पर मै तो प्रह्लाद का ही प्रेम श्लाघनीय मानता हूँ जिसने पत्थर से भी परमेश्वर को प्रकट करा दिया।

मूल--

काढ़ि कृपान, कृपा, न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ ?' 'सब ठाँउ है' 'खंभ में ?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे।
बैरी विदारि भए बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी 'तुलसी' तब तें सब पाहन पूजन लागे॥१२८॥

शब्दार्थ—काढ़ि = निकालकर। कृपान = (सं० कृपाण) तलवार। ठाँउ = स्थान। नृकेहरि = नृसिंह अवतार। जागे = प्रकट हुए। बिदारि = फाड़कर, विदीर्ण करके।

भावार्थ—हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को मारने के लिए तलवार खीची। उसने अपने पुत्र पर कुछ भी कृपा न की, परन्तु प्रह्लाद भयकर काल के समान अपने पिता को देखकर भगे नही। हिरण्यकश्यप ने पूछा, "बता तेरा रक्षक राम कहाँ है (इस समय तुझे क्यो नही बचाता)?" प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "मेरे राम सर्वत्र विराजमान हैं।" हिरण्यकश्यप ने पूछा, "क्या इस (जिसमें प्रह्लाद को बाँधा था) खभे मे भी है?" उसने उत्तर दिया, "हाँ।" प्रह्लाद की इस 'हाँ' को सुनते ही नरसिंह खभा फाड़कर प्रकट हो गए और हिरण्यकश्यप को अपने नखो से विदीर्ण करके बडे भयकर बन गए, परन्तु प्रह्लाद की विनय से फिर भक्त के प्रेम के कारण शात हो गए। तुलसीदास कहते हैं कि तब से भगवान् पर सबका प्रेम और विश्वास बढ़ गया, और इसी कारण तब से लोग पत्थरो को (उनमे ईश्वर का अस्तित्व समझकर) पूजने लगे।

विशेष—तुलसीदासजी ने इस छंद द्वारा बड़ी युक्ति से मूर्तिपूजा का समर्थन किया है।

मूल—अंतरजामिहु ते बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाई ज्यो बालक बोलनि कान किये तें।

आपनी बूझि कहै 'तुलसी,' कहिबे की न बावरी बात बिये तें।
पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें ॥१२६॥

शब्दार्थ—अंतर्जामी = अंतस् ही मे जानने योग्य, निर्गुण। बाहर-जामी = बाह्य जगत् मे जानने योग्य, सगुण रूप। धेनु = गाय। पन्हाइ = थन मे दूध उतारती हुई। लवाई = हाल की ब्याई हुई गाय। बावरी = पागलपन की सी बुरी। बिये ते = दूसरे से। पैज = (सं० प्रतिज्ञा, (प्र० पइज्जा)।

भावार्थ—ईश्वर के निर्गुण रूप से सगुण रूप श्रेष्ठ है, क्योंकि सगुण रूप ईश्वर नाम लेते ही अपने भक्त पर कृपा करने को उसी प्रकार दौड़ आते हैं जैसे हाल की ब्याई हुई गाय दूर से अपने बछडे का रँभाना सुनते ही स्तनो में दूध उतारकर दौड़ी आती है। तुलसीदास कहते हैं कि मै अपनी समझ से कहता हूँ, अपनी पागलपने की सी बाते दूसरे से कहने योग्य नही हैं। प्रह्लाद की प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए भगवान् पत्थर से प्रकट हुए, न कि हृदय से।

मूल—

बालक बोलि दियो बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
पापी है बाप, बड़े परिताप ते आपनो ओर ते खोरि न लाई।
भूरि दई बिषमूरि, भई प्रहलाद सुधाई सुधा को मलाई।
रामकृपा 'तुलसी' जन को, जग होत भले को भलाई भलाई ॥१३०॥

शब्दार्थ—बालक = पुत्र (प्रह्लाद)। खोरि न लाई = कसर न की। भूरि = बहुत। सुधाई = सीधेपन के कारण। सुधा = अमृत। जन = भक्त।

भावार्थ—हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र प्रह्लाद को बुलाकर काल को बलि दे दिया। उस कायर ने पुत्र को मारने के लिये करोड़ों कुचाले चली। वह बड़ा पापी पिता था, अतः उसने अपने पुत्र को बड़े बड़े कष्ट देने में अपनी ओर से कुछ कसर न की। प्रह्लाद को बहुत सी विष-मूले दी, पर प्रह्लाद की सिधाई के कारण वह भी अमृत की मलाई के समान गुणकारी हुई। तुलसीदास कहते हैं कि इसका कारण भक्तों पर रामचन्द्रजी की कृपा है, और ससार में रामकृपा से भले आदमी को भलाई ही भलाई है।

मूल—

कंस करी व्रजबासिन पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।
कान्ह कृपाल बड़े नतपालु गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीति कहै 'तुलसी' जग होइ भले को भलोई भलाई ॥१३१॥

शब्दार्थ—सुजोधन = दुर्योधन का ही नाम है। भो = हुआ। कलि छोटो = कलियुग का छोटा भाई। छलाई = छल मे। कान्ह = कृष्णजी। नतपालु = शरण मे आए हुए के रक्षक। नत = झुका हुआ (सं० नम् = झुकना)। खेचर = (खे = आकाश मे + चर = भ्रमण करनेवाले) राक्षस घमडी वा अत्याचारी। खीस गए = नष्ट हो गए। खलाई = दुष्टता के कारण।

भावार्थ—कस ने व्रजवासियों से बहुत बुरा व्यवहार किया, पर (व्रजवासियो के रक्षक कृष्ण थे, अतः) उसके किए कुछ न हो सका, पाडु के पुत्र सुपुत्र थे, और कुपुत्र दुर्योधन तो छल करने मे इतना निपुण था मानो वह कलियुग का छोटा भाई हो; (पर कृष्णजी पाडवो के सहायक थे अतः उनको कुछ भी हानि न पहुँचा सका)। कृष्णजी बडे कृपालु और शरणागतो के रक्षक हैं, अतः अपनी दुष्टता के कारण दुष्ट अत्याचारी नष्ट हो गए। तुलसीदास विश्वासपूर्वक ठीक कहते हैं कि ससार मे भले को भलाई ही भलाई है।

मूल—

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर ते सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं।
ते मिलए धरि धूरि, सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाँही।
बेद पुरान कहै, जग जान, गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं ॥१३२॥

शब्दार्थ—अवनीस = (सं० अवनि = पृथ्वी + ईश) राजा। दानव = कश्यप की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न संतान दानव कहलाती है (दानव लोग भी देवताओं के वैरी थे)। सतावन = सतानेवाला। घाटि रच्यो = बुराई का आयोजन किया। ते = वे। जग जान = ससार भी जानता है। गुमान = अभिमान। भावत = अच्छा लगना। जे चलते बहु छत्र की छाँही = जिनके

ऊपर राजछत्र सदा छाया रहता था, छत्र की छाया मे चलने के कारण जिन पर धूल भी नही पड़ने पाती थी।

भावार्थ—इस पृथ्वी मे अनेक बड़े बड़े राजा हुए हैं जिनके डर के कारण देवता शोच से सूख जाते थे। मनुष्य, दानव और देवताओ का सतानेवाला रावण, जिसने ससार में बुरा आयोजन किया, और दुर्योधनादिक बड़े बड़े प्रतापशाली राजा, जिनके ऊपर सदा राजछत्र तने रहते थे, केवल अभिमान के कारण धूल मे मिल गए। वेद और पुराणों ने भी कहा है, और सारा ससार भी इस बात को जानता है कि भगवान् को घमड अच्छा नही लगता।

मूल—

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो बियोग सो राग है आगे झुकी, तब हौं तेहि सों तरजी।
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृङ्ग ! अनङ्ग भयो जिय को गरजी॥१३३॥

शब्दार्थ—ठई = ठानी। स्याम = कृष्ण। स्यानी = (स० अज्ञान चतुर। हौ = मुझे। बरजी = मना किया, प्रीति करने से रोका। जान्यौ = जानती है झुकी = नाराज हुई। तरजी = दड दिया, निरादर किया। पट = वस्त्र। नेह के घाले सो = स्नेह करने से। ब्योंत करै = काट-छाँट करता है, दुबला बना देता है। बिरहा दरजी = विरह रूपी दरजी। भृङ्ग = भौरा। अनंग = कामदेव। जिय को गरजी = प्राणो का ग्राहक।

प्रकरण—कृष्णजी के मथुरा जाने पर गोपियाँ कृष्ण के विरह में व्याकुल थीं। कृष्ण ने उद्धवजी को गोपियो को समझाने के लिए भेजा। उद्धवजी उनको प्रेम-मार्ग छोड़कर योग-मार्ग मे जाने का उपदेश देने लगे। अतः प्रेम-मार्ग की उपासिका गोपियाँ उद्धव को भ्रमर मानकर उलाहना देती हैं। ऐसे काव्य को 'भ्रमर-गीत' कहते हैं। इसके आगे के २ छद और भी 'भ्रमर-गीत' के हैं।

भावार्थ—एक गोपी उद्धव को भ्रमर सज्ञा देकर कहती है—जब मेरे इन नेत्रों ने ठग कृष्ण से प्रीति लगाई तब चतुर सखी ने मुझे (कृष्ण से प्रीति करने से) मना किया। उसने अप्रसन्न होकर कहा कि नही जानती कि आगे

वियोग रूपी कोई रोग भी है। तब मैंने उसको निरादर रूपी दंड दिया। अब मेरा शरीर स्नेह करने के कारण वस्त्र के समान हो गया है और विरह रूपी दरजी उस वस्त्र की काट छाँट करता है (तात्पर्य यह है कि विरह के कारण मेरी देह दुर्बल होती जाती है)। हे भ्रमर ! सुनो, नद के कुमार श्रीकृष्ण के बिना कामदेव हमारे प्राणों का ग्राहक हो गया है (अर्थात् कृष्ण के वियोग के कारण हमारे प्राण छूटना चाहते हैं)।

मूल—

जोग-कथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधो जू ! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।
जाहि लगै पर जानै सोई 'तुलसी' सो सुहागिनि नंदलला की।
जानी है जानपनी हरि की, अब बांधियैगी कछु मोटि कला की ॥१३४॥

शब्दार्थ—पठई = भेजी। सठ चेरी = दुष्टा दासी अर्थात् कुब्जा, कुबड़ी। चाल चलाकी = (मुहावरा) धूर्तता, चालाकी की चाल। कुबरी = (१) कुबड़ी, (२) कु (बुरी) + बरी (ब्याहा)। जो = जिसको। बरी = ब्याहा। नटनागर = चतुर खिलाड़ी। हलाकी = मार डालनेवाला, घातक। जाहि लगै पर जानै सोई = जिस पर बीतती है वही जानता है। सुहागिनि = सौभाग्यवती। जानपनी = ज्ञानपना, ज्ञानीपन। हरि = कृष्ण। बाँधियैगी = (हम भी) बाँधेगी। मोटि = गठरी।

भावार्थ—हे उद्धवजी ! कृष्ण ने व्रज को (आपके द्वारा हमें सिखलाने को) योग की कथा भेजी है, वह सब उसी दुष्टा कुबड़ी की धूर्तता है, जिसने चतुर खिलाड़ी और घातक कृष्ण को भी एक दृष्टि देखते ही वरण कर लिया। भला वह कुबरी क्यो न ऐसा सदेश भेजे। परतु जिस पर बीतती है वही जानता है कि वियोग की व्यथा क्या पदार्थ है। वह तो कृष्ण की सौभाग्यवती (सयोगिनी) है। (हमारे वियोग के दुःख को क्या समझे)। अब हमने कृष्ण का ज्ञानीपन जान लिया है। (वे उसकी कुबड़ी पीठ देखकर लुब्ध हो गए)। अतः हम भी किसी कला की गठरी अपनी पीठ पर बाँध लेगी।

मूल— (मनहरण कवित्त)

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ,
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को।

ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार-
खाल की कढ़ैया, औ बढ़ैया उर-साल को।
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक, नीति,
निपुन-बिबेक है, निदेस देसकाल को।
'तुलसी' कहे न बनै, सहे ही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को ॥१३५॥

शब्दार्थ—पठयो है = भेजा है। छपद = (सं० षट्पद) भ्रमर। छबीले = छबिवाले, सुंदर। कैहूँ = किसी प्रकार से। कहूँ = कहीं से। खोजि कै = ढूँढ़ कर। खवास = सेवक। खासो = प्रसिद्ध। बाल = (सोलह वर्ष की स्त्री बाल कहलाती है) युवती स्त्री। ज्ञान को गढ़ैया = ज्ञान की बाते बनानेवाला। गिरा = वाणी बिनु गिरा को पढ़ैया = बिना वाणी के पढ़नेवाला। बारखाल को कढ़ैया = बाल की खाल खीचनेवाला। उर-साल को बढ़ैया = हृदय के कष्ट को बढ़ानेवाला। प्रीति को बधिक = प्रीति की हत्या करनेवाला। अधिक = और भी अधिक (हत्यारे से भी बढ़कर)। निदेश = आज्ञा। जोग = संयोग, अवसर।

भावार्थ—छबीले कृष्ण ने, किसी प्रकार (बड़ी मुश्किल से) कही से खोजकर कुबड़ी के उत्तम सेवक को भ्रमण रूप से भेजा है। यह भ्रमर गढ़ गढ़ कर ज्ञान की बाते करनेवाला, बिना वाणी के ही पढ़नेवाला (केवल गुञ्जार करनेवाला) बाल की खाल खीचनेवाला और हृदय की पीड़ा को बढ़ानेवाला है। यह प्रीति का वधिक है और इस रीति (श्रृङ्गार भाव) के लिए तो हत्यारे से भी बढ़कर है, नीति में निपुण और बिवेकी है, सो यह बात देश और काल की आज्ञा के अनुसार ही है (हमारा समय ही ऐसा बुरा आ गया है) अतः इसकी बातों का उत्तर देना ठीक नही, सब सह लेना ही ठीक है, क्योकि जब नदलाल से वियोग हो गया, तब योग करने का संयोग आ ही गया। (अब उनके बियोग में योगिनी बनना ही उचित है)।

अलंकार—हेतु (द्वितीय)—'नंदलाल का वियोग ही योग का संयोग होने से।

मूल—हनुमान ह्वै कृपालु, लाड़िले लखन लाल,
भावते, भरत कीजै सेवक सहाय जू।

बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे ते आपु ही सुधारि लीजै भाय जू।
मेरी साहिबनी सदा सीस पर बिलसति,
देबि ! क्यों न दास को दिखाइयत पाय जू।
खीझहू में रीझिबे की बानि, राम रीझत हैं,
रीझ ह्वै हैं राम की दुहाई रघुराय जू ॥१३६॥

शब्दार्थ—ह्वै = होकर। लाड़िलै = प्यारे। भावते = प्यारे। बिगरे ते = बिगड़ने से, अर्थात् यदि मुझमे बिनती न करते बनी हो। भाय जू = भाईजी। साहिबिनी = स्वामिनी। बिलसति = विशेष प्रकार से लसती है अर्थात् शोभायमान है। खीझहू मे = क्रोध में भी। रीझिबे की बानि = प्रसन्न होने के स्वभाव से। रीझे ह्वै हैं = प्रसन्न हुए होंगे।

भावार्थ—हे हनुमानजी, हे प्यारे लक्ष्मणजी, हे प्यारे भरतजी, कृपालु होकर मुझ सेवक की सहायता कीजिए। मै दीन, दुर्बल और दया का पात्र आपसे विनती करता हूँ। अगर मुझसे विनती करते न बनी हो तो आप बात सुधार लीजिएगा। हे मेरी मालकिन सीताजी, (अथवा तुलसीजी आप तो सदा ही सब की शिरोभूषण हो, अतः हे देवि, मुझ दास को अपने चरण क्यों नहीं दिखलाती (दर्शन क्यो नही देतीं)। श्रीरामजी का तो यह स्वभाव है कि वे क्रोध में भी रीझते हैं। अतएव मै रामचद्रजी की शपथ लेकर कहता हूँ कि रामचद्रजी मुझसे प्रसन्न ही होगे (अतः आप भी सिफारिश कर दीजिए तो मेरा काम बन जाय)।

मूल— (मत्तगयद सवैया)

बेष बिराग को, राग भरो मनु, माय ! कहौं सतिभाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेचि हौं पातकी पामर प्राननि पोसों।
एते बड़े अपराधी अघी कहँ, तैं कहु अंब ! कि मेरो तू मोसों।
स्वारथ को परमारथ को परिपूरन भो फिरि घाटि न होसों ॥१३७॥

शब्दार्थ—राग = सासारिक सुखों से प्रेम। सतिभाव = सत्य भाव से, निष्कपट मन से। पामर = नीच। पोसों = पुष्ट करता हूँ, पालन करता हूँ। एते = इतने। अघी = पापी।। घाटि = कमती। घाटि न होसों = कमती न होगी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि हे माता, मै आपसे शुद्ध चित्त से कहता हूँ कि यद्यपि मेरा वेष वैरागियो का सा है तथापि मन अभी सासारिक सुखो मे लगा हुआ है। मै नीच पापी आपके ही स्वामी रामचद्रजी का नाम बेचकर अर्थात् राम के नाम पर भीख माँगकर अपने प्राणो की रक्षा करता हूँ। हे माता, इतने बड़े अपराधी और पापी से तू कह दे, 'तू मेरा है' तो बस फिर स्वार्थ और परमार्थ सब पूरे हो जाएँगे, किसी बात की कमती न होगी (ऐसा मेरा विश्वास है)।

मूल— (कवित्त—सीतामढी का वर्णन)

जहाँ बालमीकि भए ब्याध ते मुनींद्र-साधु,
'मरा-मरा' जपे सुनि सिख ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुस को जनमथल,
'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की।
बिटप-महीप सुरसरित-समीप सोहै,
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी-चरन-जलजात की॥१३८॥

शब्दार्थ—सिख = (स०) शिक्षा। ऋषि सात की = सप्तर्षियों की। गरै = गल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। गात = (स० गात्र) शरीर। बिटप = (स०) वृक्ष। सुरसरित = गगाजी। सीताबट = उस वृक्ष का नाम जहाँ सीताजी रही थी। पेखत = (स० प्र + ईक्ष्) देखने से। बारिपुर = ग्राम विशेष। दिगपुर = ग्राम विशेष। जलजात = कमल। अकित = चिह्नित।

भावार्थ—जिस स्थान पर सप्तर्षियों का उपदेश सुनकर 'मरा मरा' (रामनाम का उल्टा) जपने से ही वाल्मीकि जी वधिक से सज्जन और मुनियों मे श्रेष्ठ हो गए, जो स्थान सीता के रहने की जगह थी, जो लवकुश की जन्म भूमि थी, जिस स्थान की छाया के स्पर्श से भी शरीर के (दैहिक, दैविक, भौतिक) तीनों प्रकार के ताप नष्ट हो जाते हैं, जिस भूमि पर गंगाजी के समीप सीतावट नामक वृक्षों का राजा (अर्थात् अति श्रेष्ठ वृक्ष) शोभायमान है, जिसको देखने से ही पापी पवित्र हो जाता है, और

जो सीताजी के चरण-कमलों से चिह्नित है (अर्थात् जिस स्थान पर सीताजी के चरण पड़े हैं) 'सीतामढी' नामक वह भूमि बारिपुर और दिगपुर के बीच शोभायमान है।

नोट—यह स्थान झूँसी से कुछ दूर पूर्व 'भीटी' नामक स्टेशन के पास गगातट पर है। 'दिगपुर' को अब 'दोप' वा 'दिघउर' कहते हैं। 'वारिपुर' का मुझे पता नही चला।

मूल—मरकत-बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जनु रूख वेप हरु है।
सुषमा को ढेरु, कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद-मंगल को घरु है।
देन अभिमत जो समेत प्रीति सेइये,
प्रतीति मानि 'तुलसी' बिचार काको थरु है?
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
राम-रमनी को बट कलि काम-तरु है ॥१३९॥

शब्दार्थ—मरकत-बरन = पन्ना रत्न के समान अर्थात् हरे वर्ण के। बरन = (स० वर्ण) रंग। परन = (स० पर्ण) पत्ते। लसै = सुशोभित है। रूख = (स० वृक्ष; प्रा० रुक्ख) पेड़। हरु = शिवजी। सुषमा = (सं० सुषमा) परम शोभा (अत्यत शोभा को 'सुषमा' कहते हैं)। सुकृत-सुमेरु = पुण्यो का पर्वत। सुमेरु = यहाँ 'पर्वत' अर्थ मे प्रयुक्त है। मुद = (स०) आनद। अभिमत = मन का इच्छित पदार्थ। काको थरु है = यह किसका स्थान है (ध्वनि से यह अर्थ निकलता है कि यह स्थान सब मनोरथो को पूर्ण करनेवाली जगज्जननी सीताजी का है, किसी ऐसे वैसे का नहीं)। अवनि = पृथ्वी। राम-रमनी = सीताजी। कलि — कलियुग मे। कामतरु = मनकामनाओं को देने-वाला कल्पवृक्ष।

भावार्थ—(सीतावट के) पन्ना के रग के पत्ते और माणिक-समान फल हैं। उस पर जटाजूट ऐसे शोभायमान हैं मानों साक्षात् शिवजी वृक्ष के वेष में विराजे हो, यह वृक्ष अत्यंत शोभा का ढेर है, या पुण्यों का पर्वत है, अथवा सपत्ति और सपूर्ण आनन्द-मगल का घर है। अगर प्रीति-सहित उसकी सेवा करो वह सपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करता है। तुलसीदास

कहते हैं कि वह स्थान किसका है (अर्थात् सब मनोरथो की दात्री जगज्जननी सीताजी का है। । वह विचार कर मेरी बात पर विश्वास करो । गगा के निकट सुन्दर (सीतामढी नामक) स्थान मे वह सीतावट शोभायमान है, जो कलियुग में कल्पवृक्ष है।

मूल—देवधुनी-पास मुनिबास सी-निवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि, डीठि बाहरी निहारिहैं।
'आयसु', 'आदेस', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भाव सिद्ध',
'तुलसी' बिचार जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतन को तौ कामतरु ते अधिक,
सियबट सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

शब्दार्थ—धुनी =(स०) नदी। देवधुनि = गगाजी सी = सीताजी। प्राकृत वट = साधारण वट वृक्ष। बूट = वृक्ष। पुरारि = त्रिपुर नामक दैत्य के अरि शिवजी। पीठ = पवित्र स्थान। रागिन पै = सासारिक विषयो से अनुरक्तों के लिए। सीठि — नीरस। डीठि =(स०) दृष्टि। 'आयसु'..................
'भावसिद्ध' = साधु सन्तो की बोलचाल के वाक्य, अर्था वहाँ के रहनेवाले इसी प्रकार के शिष्ट और मधुर शब्दो का व्यवहार करते हैं। करतल फल चारि हैं = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो फलो का पाना तो इतना सुलभ है जैसे हथेली मे रखी हुई वस्तु का पाना अर्थात् अत्यंत सुलभ है। अधिक = इस कारण कि कल्पवृक्ष केवल अर्थ, धर्म काम का देनेवाला है, पर यह वट मोक्ष भी देता है।

भावार्थ—साधारण वट वृक्ष भी शिव का निवास माना जाता है, फिर यह वट तो गंगा के निकट है, जहाँ मुनियो की कुटियाँ हैं और जहाँ सीताजी का निवास-स्थान रहा है। वह स्थान योग, जप और यज्ञ करने के लिए और वैराग्य साधन के लिए पवित्र है। पर सासारिक सुखो मे लिप्त और बाहरी दृष्टि से देखनेवालों के लिए वह स्थान नीरस है। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ ऐसे योगी बसते हैं जो परस्पर शिष्टाचारसूचक 'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भावसिद्ध' आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं ? अर्थात्

अत्यत शिष्ट साधुजन का निवास वहाँ अब भी है) । रामभक्तों के लिए तो यह सीतावट कल्पवृक्ष से भी बढ़कर है, और इसकी सेवा करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फल करतलगत (अत्यत सुलभ) हो जाते हैं ।

अलकार—समुच्चय और व्यतिरेक ।

मूल — (चित्रकूट-माहात्म्य)

जहाँ बन पावनो, सुहावने बिहंग .मृग,
देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो ।
सीतारामलषन निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो ।
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिना मजुल महेस जटाजूट सो ।
'तुलसी' जौ राम सो सनेह साँचो चाहिये,
तौ सेइये सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो ॥१४१॥

शब्दार्थ—खेत खूट सो = खेत के टुकड़े की भाँति अत्यत हरा भरा । विवेक = भले बुरे का ज्ञान । बूट = वृक्ष । बारि (स०) = जल । मजुल = सुंदर । सेइये = सेवा कीजिए ।

भवार्थ—जहाँ पवित्र वन है, सुन्दर सुहावने पक्षी और पशु हैं, जिस स्थान को खेत के टुकड़े की भाँति हरा-भरा देखकर अत्यंत आनंद होता है, जहाँ सीताराम और लक्ष्मण रहते थे, जो मुनियों का वासस्थान है जो सिद्ध, साधु और साधक सभी के लिए ज्ञान रूपा वृक्ष है (अर्थात् जहाँ सभी ज्ञान प्राप्त करते हैं), जहाँ ठडा और पवित्र जल गिराते हुए झरने झरते हैं, जहाँ महादेवजी के जटाजूट से निकली हुई सुन्दर मदाकिनीजी हैं (यथा —सुरसरिधार नाम मदाकिनि), तुलसीदास कहते हैं कि अगर रामचद्रजी से सच्चा स्नेह चाहते हो तो स्नेहपूर्वक ऐसे (उपर्युक्त प्रकार के) बिचित्र चित्रकूट पर्वत की सेवा करो (अर्थात् वहाँ रहो) ।

मूल—मोहबन कलिमल-पल पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय को नेवारिहै ।
दीन्ही है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल,
लषन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै ।

क्यों कहि जाति महा सुषमा, उपमा तकि ताकत है कबि कौ की।
मानों लसी 'तुलसी' हनुमान हिये जगजीति जराय को चौकी ॥१४३॥

शब्दार्थ—दवारि=वन की अग्नि। ठही=ठहकर, जमकर, अच्छी तरह। लहकी=लहकाई, प्रज्ज्वलित की। खर-खौकी=तृण को खानेवाली अर्थात् आग। चारु=सुन्दर। चुवा=चौवा, चतुष्पद (मृगादि)। लपटै=ज्वालाएँ। तमीचर=राक्षस। तौंकी=तौंककर, आँच से तपकर। कौ की=कब की, बड़ी देर से। तकि=तर्कना करके, विचार करके। लसी=शोभायमान हुई। जराय की चौकी=जड़ाऊ चौकी, नगदार पदिक।

प्रकरण—एक समय चित्रकूट मे हनुमानधारा के पास दावाग्नि लगी। तुलसीदासजी उस समय वहाँ उपस्थित थे। उसी दृश्य का वर्णन इस छद मे है।

भावार्थ—पहाड़ में दावाग्नि खूब अच्छी तरह से इस प्रकार लगी हुई है जैसे हनुमान ने लका मे आग लगाई थी। दावाग्नि के ताप से तपकर सुन्दर पशु चारो ओर को इस प्रकार भागे जाते हैं, जैसे लका में आग की ज्वालाओ की लपक से तपकर राक्षस लोग इधर उधर भगे थे। उस समय की अत्यधिक सुषमा का वर्णन कैसे किया जाय। कवि (तुलसीदास) उसकी उपमा को विचारते हुए बड़ी देर से ताकता रह गया है। जब कोई उपमा न सूझी तब (तुलसीदास) उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो संसार भर में सर्वोत्तम विजयी होने के कारण हनुमानजी के हृदय मे रामचद्रजी की ओर से जड़ाऊ पदिक (पुरस्कार-स्वरूप) शोभायमान है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल— (गगा-यमुना सगम-वर्णन)

देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे।
सोहै सितासित को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृन चारु चरै बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥१४४।

शब्दार्थ—अपनी अपना=परस्पर। अवलोकन=दर्शन को। तीरथ-राज=प्रयाग। निमज्जत=स्नान करते हैं। सितासित=(सित=सफेद+

असित = काला)। हुलसै = उल्लसित होता है, आनंदित होता है। हेरि = देखकर। हलोरे = तरगे। चारु = सुन्दर। बगरे = फैले हुए। सुरधेनु = कामधेनु। धौल = (स० धवल) सफेद। कलोरे = बछड़े।

भावार्थ—सब देवता परस्पर कहते हैं कि तीर्थराज प्रयाग के दर्शन को चलो। प्रयाग-राज के दर्शन से बड़े बड़े अपराध नष्ट हो जाते हैं। वहाँ साधुओ के समूह स्नान करते हैं। श्वेत जलवाली गगा और नीले जल वाली यमुना का सगम अति ही सुहावना है। उस स्थान पर दोनों नदियो की तरगें देखकर मेरा (तुलसीदास का) मन आनदित होता है। वह दृश्य ऐसा दिखलाई देता है मानो इधर उधर फैले हुए कामधेनु के सफेद बछडे (गगा की तरगे) सुन्दर हरे हरे तृणो को (यमुना की तरगो को) चर रहे हैं।

नोट—सगम मे यमुना की लहरे गगा की लहरो मे लीन हो जाती हैं (यमुनाजी गगाजी मे लीन हो जाती हैं) अत्यत विचारपूर्ण और उत्तम उत्प्रेक्षा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले, झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा को साज बिरंचि रचैं, 'तुलसी' जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरग तिहारे ॥१४५॥

शब्दार्थ—देवनदी = गगा। उधारे = उद्धार किया। सुरनारि = यहाँ अप्सराओं से तात्पर्य है। सुरेस = इंद्र। बिरचि = ब्रह्मा। ओक = घर। हरिलोक = बैकुंठ।

भावार्थ—ज्यो ही किसी ने गगास्नान को जाने की इच्छा की त्यों ही उस मनुष्य के करोड़ पीढ़ी के पुरषा तर जाते हैं। उसको गगास्नान करने को चला हुआ देखकर अप्सराएँ उसको वरण करने के लिए झगड़ने लगती हैं। इद्र उसको स्वर्ग में ले जाने के लिए विमान सजाकर तैयार करने लगते हैं। ब्रह्मा जो गगा का माहात्म्य जानते हैं उसकी पूजा करने की सामग्री एकत्र करने लगते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हे गगाजी, आपकी तरगों के दर्शन से ही (निकट पहुँचते ही) दर्शक के लिए बैकुठ मे घर की नींव पड़ जाती है (तो स्नान करने का माहात्म्य मै क्या कहूँ !)।

अलंकार—अत्यतातिशयोक्ति।

मूल—

ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को।
सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को ॥१४६॥

शब्दार्थ—जो=जिसको। गम नाहिं=गम्य नहीं है (जिसको जान नहीं सकते)। गिरा=सरस्वती। करता=उत्पन्न करनेवाला। भरता=भरण-पोषण करनेवाला। हरता=संहार करनेवाला। दुनी=दुनिया। द्रवरूप=जल रूप। सही=सत्य ही, वास्तव में। देवधुनी=गंगा।

भावार्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा को वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिस परमात्मा के गुण और ज्ञान की थाह गुणीजन और शारदा भी नहीं पा सके, जो ब्रह्म सृष्टि का कर्ता, भर्ता, और हरता है, देवतों मे श्रेष्ठ, और दीन-दुनिया का स्वामी है, जो वास्तव मे ब्रह्मा, शिव और मुनियो का स्वामी है, वही विष्णु भगवान् जलरूप हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह विश्वास मानकर नत्य गगा-जल का सेवन क्यों नहीं करते हो!

विशेष—गङ्गाजी विष्णु के चरणो से निकली हैं और ऐसा ही माना जाता है कि गङ्गाजी परमेश्वर का द्रव रूप हैं।

मूल—

बारि तिहारो निहारि, मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो।
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं कर जोरि बहोरि न खोरि लगे सो कहौंगो ॥१४७॥

शब्दार्थ—बारि=जल। मुरारि=मुर नामक दैत्य के शत्रु विष्णु भगवान्। परसे=स्पर्श करने से। पद=पैरो से। लहौंगो=(सं० लभ् से लह) प्राप्त करूँगा। ईस=शिव। दोष दहौंगो=दोष से दग्ध हूँगा। बरु=भले ही। बारहि बार सरीर धरौं=बार बार जन्म धारण करूँ। तीर=तट पर। बहोरि=फिर। खोरि न लगै=दोष न लगै।

भावार्थ—हे गंगे ! यह जानकर कि तुम जलरूप ईश्वर ही हो, तुम्हें अपने चरणों से स्पर्श करने से मुझे पाप लगेगा (इसी से मैं तुममें पैठकर स्नान नहीं करता), शिव के समान शिर पर धारण करते भी डरता हूँ कि बड़ों की बराबरी करने से बड़े भारी दोष मे दग्ध हो जाऊँगा (इसी से सिर पर भी तुम्हारा जल नहीं छिड़कता)। (तुम्हारा इस प्रकार अनादर करने से) मुझे भले ही अनेक बार जन्म लेना पड़े, पर मैं तो रामचन्द्रजी का भक्त होकर तुम्हारे तट पर ही निवास करूँगा (स्नान चाहे न करूँ)। हे गंगे, मैं हाथ जोड़कर बिनती करता हूँ कि जिससे फिर मुझे दोष न लगै मैं ऐसा ही सत्य वचन कहूँगा। (तात्पर्य यह कि गंगातट पर रहकर भी जो मैं गङ्गा-स्नान करने नहीं जाता उसका कारण आपका निरादर नहीं वरन् रामभजन में संलग्नता है)।

मूल— (कवित्त)

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध कै, बिबाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना।
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौ लौं जन,
जौ लौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥१४८॥

शब्दार्थ—बिसूरना=चिंता, सोच। सराध=(सं० श्राद्ध) पितृ-कर्म। उछाह=उत्सव। डोलै=भटकता है। लोल=चंचल। बूझत सबद ढोल तूरना=ढोल और तूरी का शब्द सुनकर पूछने लगता है (कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं)। अहारन पहार=अहारों के पहाड़, अर्थात् अपरि-मित भोजन। दारि=दाल का दाना। घूर ना=घूरे पर बिनने से भी नहीं मिलता। दुख-भार-भरो=दुःख के बोझ से भरा हुआ। द्रवै=पिघले अर्थात् दया करे।

भावार्थ--लालची टुकड़े-टुकड़े के लिए लालायित होकर दरवाजे दरवाजे दीन होकर विललाता है, उसका मुँह मलिन हो जाता है, और मन की चिंता

नही मिटती। कही श्राद्ध या विवाह या कोई उत्सव तो नहीं, इसकी टोह मे लगा रहता है। अस्थिर होकर इधर-उधर फिरता रहता है और ढोल और तुरी के शब्द सुनकर पूछने लगता है कि यहाँ कोई उत्सव तो नही जिसमें कुछ खाने को मिले। अत्यत प्यासा होने पर भी उसे पीने को जल नही मिलता, अतिशय भूखा होने पर भी उसे खाने को चार दाने चने के नही मिलते। वह चाहता तो है अपरिमित भोजन पर उसे घुरबिनिया करने पर भी एक दाना दाल का भी नहीं मिलता। ऐसा आदमी तभी तक शोक का घर है और दुःख के बोझ से दबा हुआ रहता है जब तक उस पर भवानी अन्नपूर्णाजी कृपा न करें।

मूल— (छप्पय)

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अधग भूमन भुजंगबर।
मुंडमाल बिधुबाल भाल, डमरू कपाल कर।
बिबुध-बृन्द-नवकुमुद-चद, सुखकंद, सूलधर।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन बिषभोजन भव-भय-हरन।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥१४६॥

शब्दार्थ—मर्दन = नाश करनेवाले। अनग = कामदेव। सतत असग = निरंतर एकात मे रहनेवाले। हर = सहारकर्त्ता। गिरिजा = गिरि (हिमालय) की पुत्री पार्वतीजी। अधग = (सं० अर्द्धाङ्ग) आधे (वाम) अग मे। भुजगवर = श्रेष्ठ साँप। बाल-बिधु = द्वितीया का चन्द्रमा। भाल = मस्तक पर। डमरू = शिवजी का बाजा। कपाल = खप्पर। बिबुध-बृन्द-नवकुमुद-चद = देव-समूह रूपी नवीन कुमुदो को प्रफुल्ल करने के लिए चन्द्रमा के समान। सुखकद = सुख के मूल। सूल = त्रिशूल। त्रिपुरारि = त्रिपुर नामक दैत्य के शत्रु। दिग्बसन = दिशाएँ ही हैं वस्त्र जिनके, नगे।

भावार्थ—अग पर विभूति रमाए हुए, कामदेव को भस्म करनेवाले, सदा एकाकी रहनेवाले, जगत् के सहारकर्त्ता, शिर पर गगा, बाएँ अग मे पार्वतीजी को धारण किए हुए, श्रेष्ठ सर्पों के भूषण पहने हुए, गले मे मुडमाला, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा और हाथो मे डमरू और खप्पर लिए हुए, देवगण रूपी नवीन कुमुदो को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा के

तुल्य, सुख के मूल, त्रिशूल धारण किए हुए, त्रिपुर दैत्य के शत्रु, त्रिलोचन, नग्न, कालकूट विष को भक्षण करनेवाले, सासारिक अर्थात् जन्म-मरण के भय से छुडानेवाले और जिनकी सेवा करने से तीनो लोको तीनो कालों मे कल्याण प्राप्त करना सुलभ है, तुलसीदास कहते हैं कि मै ऐसे शंकर (कल्याण-कर्त्ता) की शरण हूँ।

मूल—गरल-असन, दिग्वसन, व्यसन-भंजन, जन-रंजन।
कुंद - इंद - कर्पूर - गौर, सच्चिदानंद घन।
विकट बेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव, अकाम, अभिराम, धाम, नित रामनाम रुचि।
कन्दर्प-दर्प दुर्गम-दवन, उमा-रवन गुनभवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन, जय त्रिदस-वर॥१५०॥

शब्दार्थ—गरल = विष, हलाहल। असन = (स० अशन) भोजन। व्यसन-भजन = बुरे स्वभाव को तोड़नेवाले। जन-रजन = दासो को आनदित करनेवाले। कुन्द = एक सफेद फूल। इंदु = चंद्रमा। कुन्द-इंदु कर्पूर-गौर = कुन्द, चन्द्रमा और कर्पूर के समान श्वेत वर्णवाले। सच्चिदानन्दघन = सत्, चित् और आनन्द का समूह। बिकट = भयंकर। सेष = सर्प। अकाम = इच्छा-रहित। सिव = (सं॰ शिव) कल्याण-स्वरूप। अभिराम = आनन्द। धाम = घर। कंदर्प = कामदेव। दुर्गम कदर्प-दर्प दवन (दमन) = कामदेव के बड़े भारी अभिमान को नाश करनेवाले। उमा-रवन = उमारमण। हर = सहार-कर्त्ता। त्रिगुन-पर = सत्त्व, रज, तम तीनो गुणो से परे। त्रिदस-वर = देवताओ मे श्रेष्ठ।

भावार्थ—विषभोजी, नग्न, दुःखों का नाश करनेवाले, लोगों को आनन्ददायक, कुन्द, चन्द्रमा और कर्पूर के समान गौर वर्ण, सत्, चित् और आनन्द के समूह, भयकर वेष धारण किए हुए, छाती पर सॉप का जनेऊ पहने हुए, सिर पर स्वभाव से ही पवित्र गंगाजी को धारण किए हुए, कल्याण-स्वरूप, इच्छारहित, आनन्द के घर, नित्य रामनाम से प्रेम करनेवाले, कामदेव के बड़े भारी अभिमान को चूर चूर करनेवाले, पार्वतीजी के स्वामी, समस्त सद्गुणों के घर, जगत् के सहार-कर्ता, तुलसीदास के स्वामी, त्रिलोचन तत्त्व-

रज-तम इन तीनो गुणो से परे, त्रिपुर का नाश करनेवाले और देवताओं में श्रेष्ठ ऐसे शिवजी की जय हो।

मूम—अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति।
बिषम असन, दिग-बसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति।
कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष भूति बिभूषन।
नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ 'तुलसिदास' संसयसमन॥१५१॥

शब्दार्थ—अङ्गना = स्त्री। जोगीस = योगियों के स्वामी। जोगपति = योग के पति। विषम असन = भाँग, धतूरा आदि भोजन करनेवाले। बिस्वेस = (स० विश्वेश) ससार के स्वामी। विश्वगति = संसार भर को शरण। व्याल = सर्प। भूति = विभूति। अविरुद्ध = जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो। अमर = कभी न मरनेवाले। अनवद्य = निंदा के अयोग्य अर्थात् स्तुत्य, प्रशसनीय। अदूषन = दोषरहित। भीम = भयंकर। भवभय = जन्म-मरणादि के भय। महिमा अकथ = जिसकी महिमा का वर्णन नही किया जा सकता। संसय-समन = (सशय समन) सन्देह को हटानेवाले।

भावार्थ—शिवजी के बाएँ अङ्ग मे स्त्री विराजमान है, पर नाम है योगियों के स्वामी और योग के पति। भाँग, धतूरा आदि का भोजन करते हैं और नग्न रहते हैं, पर नाम है ससार के स्वामी और ससार को शरण देनेवाले। हाथ मे खप्पर है, सिर मे साँपो की माला लिपटाए हुए हैं, विष (गले मे कालकूट विष की नीलिमा) और भस्म ही इनके आभूषण हैं, तिस पर भी नाम है शुद्ध। जिनका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं हैं, जो अमर हैं स्तुति करने योग्य हैं, दोष-रहित हैं, विकराल भूत वैताल-प्रिय ऐसा भयकर नाम है, तब भी सासारिक भयों को दूर करते हैं। जो सब प्रकार से समर्थ हैं और जिनकी महिमा कही नही जा सकती, वही शकर तुलसीदास के सब सन्देहों को मिटानेवाले हैं।

मूल—भूतनाथ भयहरन, भीम भय-भवन भूमिधर।
भानुमंत, भगवंत, भूति भूषन भुजग बर।

भव्य, भाव-बल्लभ, भवेस भवभार-बिभंजन।
भूरि भोग, भैरव, कुजोग गंजन, जनरंजन।
भारती-बदन, बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन भद्रसदन मर्दन-मयन ॥१५२॥

शब्दार्थ—भूतनाथ=भूतो के स्वामी। भीम=भयकर। भानुमत=प्रकाशवान्, दिव्य प्रभा से युक्त। भागवत=ऐश्वर्यमान्। भूति=विभूति, भस्म। भुजगवर भूषन=सर्पों के भूषण पहने हुए। भव्य=सुन्दर, रोबदार। भाव-वल्लभ=प्रेम अथवा भक्ति को चाहनेवाले। भवेस=ससार के स्वामी। भवभार-बिभजन=ससार के भार (पाप) को नाश करनेवाले। भूरि भोग=जिसे सब भोग मुयस्सर हैं। भैरव=भयकर शब्द करनेवाले। कुजोग-गजन=दुर्भाग्य को मिटानेवाले। जनरजन=दासो को आनदित करनेवाले। भारती=सरस्वती। भारती-बदन=मुँह पर जिनके सरस्वती है। अदन=खानेवाले। सिव=कल्याणकारी। ससि-पतग पावक नयन=चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनकी आँखे हैं। किन भजसि=क्यों नही भजता? भद्र-सदन=कल्याण के घर। मयन=(सं० मदन, प्रा० मअन) कामदेव।

भावार्थ—शिवजी भूत-प्रेतों के नाथ हैं, पर लोगो के भय को दूर करते हैं। वे भयंकरो के लिए भी भय के घर हैं, पृथ्वी को धारण करनेवाले हैं, प्रकाशवान् और ऐश्वर्यमान् हैं। विभूति और श्रेष्ठ साँप ही (उनके भूषण हैं), सुन्दर प्रेमभाव ही उनको प्यारा है। वे ससार के स्वामी और ससार के पापों को नाश करनेवाले हैं। वे अनेक भोगों के भोक्ता हैं, भयंकर कुयोग के नाशक और दासों को आनद-प्रद हैं। उनके मुख मे सरस्वतीजी रहती हैं अर्थात् बडे वक्ता हैं। वे विष का भोजन करते हैं पर कल्याण-कर्ता हैं, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि उनकी तीनों आँखे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अरे मन, तू ऐसे कल्याण के घर, कामदेव के नाशकर्ता शिवजी को क्यों नही भजता?

मूल— (सवैया)

नाँगो फिरै, कहै माँगनो देखि "न खाँगो कछू, जनि माँगिये थोरो"।
राँकनि नाकप रीझि करै, 'तुलसी' जग जो जुरै जाचक जोरो।
"नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो'।
ब्रह्म कहै "गिरिजा? सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ॥१५३॥

शब्दार्थ—न खाँगो कछू = मेरे पास (धन-सपत्ति किसी वस्तु की भी) कमी नही है। राँकनि = रकों को, दरिद्रो को। नाकप = (स० नाक = स्वर्ग + प) इद्र, रीझि = प्रसन्न होकर। जग जो जुरै जाचक जोरो = संसार में जितने भी याचक जोड़े जुड़ सकते हैं, उन्हे, एकत्र करते हैं। नाक सँवारत = स्वर्ग बनाते बनाते। आयो हौ नाकहि = मेरी नाक मे दम आ गया, मै हैरान हो गया। नाहि पिनाकिहि नेकु निहोरो = शिवजी मेरा थोड़ा भी एहसान नहीं मानते। सिखवो = हटको (कि ऐसा न करे)। बावरो = बावला। भोरो = सीधा-सादा, भोला।

भावार्थ—ब्रह्माजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे पार्वती, अपने पति को हटको। तुम्हारा पति दाना तो है, पर साथ ही बड़ा पागल और भोला है (अर्थात् जिसको किस प्रकार दान देना चाहिए यह ज्ञान नहीं है), न गा होकर तो इधर उधर घूमता फिरता है, पर भिखारियो को देखकर कहता है कि मेरे पास कुछ कमती नही है, अतएव जो कुछ माँगना हो भरपूर माँग लो, थोडा मत माँगना। ससार के जितने भी भिखारी उसके जोड़े जुड़ सकते हैं जोड़ता है, और प्रसन्न होकर दरिद्रो को इद्र बना देता है। उन इद्रो के लिए स्वर्ग बनाते बनाते मेरी नाक मे दम आ गया है, पर शिवजी मेरा जरा भी एहसान नही मानते।

मूल—

बिष-पावक-ब्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बैताल सखा, भव नाम दलै पल में भव के भय गाढ़े।
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुखदारिद होहि न ठाढ़े।
भौन में भाँग, धतूरोई आँगन माँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े ॥१५४॥

शब्दार्थ—पावक = (स०) अग्नि। व्याल = साँप। गरे = गले मे। तिहुँ ताप = दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकार के कष्ट। न डाढ़े = दग्ध नही होते, पीड़ित नहीं होते। भव = (१) शिवजी का नाम (२) ससार। दलै = नाश करते हैं। गाढ़े = कठिन। भौन = (स० भवन) घर। माँगने = भिखारी। बाढ़े हैं = बढ़ गए हैं।

भावार्थ—शिवजी के कठ मे विष है, आँखो मे अग्नि है, और गले मे भयकर सर्प लटकाए हुए हैं, परतु तिस पर भी शरणागत तीनों तापों (दैहिक,

दैविक, भौतिक, अथवा, विष-अग्नि सर्प) से दग्ध नहीं होते। भयकर भूत-बैताल इनके सखा है, और नाम इसका 'भव' है; फिर भी स सार के बडे बडे भयो को क्षण मे नाश कर देते हैं। तुलसीदास के स्वामी शिवजी स्वयं तो बडे दरिद्री से है, पर उनको स्मरण करने मे दुःख और दारिद्रय पास भी नहीं फटकते। यद्यपि (शिवजी के) घर मे भग और ऑगन मे धतूरे के वृक्षो के अतिरिक्त और कुछ भी नही हैं, तब भी इस न गे के सामने माँगने-वालो की भीड़ लगी रहती है।

मूल--

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़्यो बरदा, घरन्यौ बरदा हैं।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास जहाँ सब लै मरे दाहैं।
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन के परदा हैं।
राँक-सिरोमनि काकिनिभाग विलोकत लोकप को ? करदा हैं ॥१५५॥

शब्दार्थ—बरदा = (१) वर देनेवाली गङ्गा, (२) बैल। धाम = घर। कूरो = ढेर। सव = लाश। दाहैं = जलाते है। ब्याली = साँपो को (भूषण की तरह) धारण करनेवाला, शिवजी का नाम। कपाली = कपाल (खप्पर) धारण किए हुए, शिवजी का नाम। ख्याली = कौतुकी। राँक-सिरोमनि = (रकशिरोमणि) दरिद्रों मे श्रेष्ठ। काकिनिभाग = एक कौड़ी पाने की योग्यता रखनेवाला। विलोकत = दयादृष्टि से देखते ही। लोकप = लोकपाल। करदा = धूल, मैल। लोकप को = लोकपाल क्या हैं। करदा हैं = धूल हैं, तुच्छ हैं।

भावार्थ—शिवजी के सिर पर वर देनेवाली गङ्गाजी विराजमान हैं, स्वय भी वर देनेवाले (अथवा श्रेष्ठ दानी) है, वरदा (बैल) पर ही चढ़े रहत हैं, गृहिणी पार्वती भी वरदेनेवाली है। घर घर मे धतूरे और विभूति का ही ढेर है और निवास भी वहाँ है जहाँ मृतको के शरीर ले जाकर जलाए जाते हैं (मसान)। सर्प और खप्पर धारण करनेवाले शिवजी बड़े कौतुकी हैं। भाँग की टट्टियों का तो घर के चारों ओर परदा है, पर दरिद्रों में श्रेष्ठ और कौड़ी पाने की योग्यता रखनेवाले को भी देखते ही इतना संपत्तिमान् बना देते हैं कि लोकपाल भी उसके सामने क्या हैं ? केवल धूल से जान पड़ते हैं।

मूल—

दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर टीको।
भोरो भलो, भले भाय को भूखो, भलोइ कियो सुमिरे 'तुलसी' को।
ता बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तैं जो पै राधो नहीं पति पारबती को ॥१५६॥

शब्दार्थ—चारि पदारथ = धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष। सिर टीको = शिरोमणि। भोरो = भोले हैं। भले भाय = सद्भाव, शुद्ध भक्ति। सुमिरे = स्मरण करने से। साधो = सिद्ध किया, लाभ उठाया। राधो = आराधना की।

भावार्थ—जो त्रिपुरारि शिवजी धर्मार्थकाममोक्ष चारो पदार्थों के देनेवाले हैं, और तीनो लोको मे सबके शिरोमणि हैं, बडे भोले-भाले (अर्थात् थोडे मे प्रसन्न हो जानेवाले) हैं, अपने भक्तो मे शुद्ध भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नही चाहते और जिन्होने केवल स्मरण करने से ही तुलसीदास का भला किया, ऐसे शिवजी को स्मरण करना छोड़कर तू आशा का दास बना रहा (अर्थात् सासारिक सुखों की आशा लगाए रहा) और तेरे मन से लालच थोड़ा भी दूर न हुआ। अगर ऐसे पार्वतीपति शिवजी की आराधना नही की तो योगादि साधनो से तूने क्या लाभ उठाया?

मूल—

जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोक लियो है।
पान कियो बिष, भूषन भो, करुना-बरुनालय साँइ हियो है।
मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाय दियो है।
काहे न कान करो बिनती 'तुलसी' कलिकाल बिहाल कियो है ॥१५७॥

शब्दार्थ—लोकि लियो है = झपट कर ले लिया, देखकर विष का प्रभाव कम कर दिया। पान कियो = पी लिया। बरुनालय = (वरुण = जल + आलय = घर) समुद्र (वरुण जल के अधिष्ठाता देवता हैं)। करुना-बरुनालय = दया के सागर। किधौं कछु काहू लखाइ दियो है = अथवा किसी ने आपको मेरा कोई दोष दिखला दिया है। कान करना = (मुहावरा) सुनना। बिहाल = व्याकुल।

भावार्थ—सब लोको को (विष से) जलता हुआ देखकर त्रिलोचन शिवजी ने उस विष को झपटकर ग्रहण कर लिया और पी गए जिससे वह

भूषण की भाँति कठ में स्थित हो गया। अतः हे स्वामी, आपका हृदय तो करुणा का समुद्र है, पर मेरा ही कपाल फोडने योग्य है (अर्थात् मै ही अभागा हूँ)। अथवा किसी ने आपको मेरा कोई अपराध दिखलाया है (जो आप मुझ पर कृपा नही करते)। तुलसीदास कहते हैं कि हे शिवजी, मुझे कलियुग ने पीड़ित किया है, मेरी विनती क्यो नही सुनते।

मूल— (कवित्त)

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाठरी गरद की।
डमरू कपाल कर भूषन कराल व्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन बरद की।
'तुलसी' बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
धर्म अर्थ काम मोच्छ बसत बिलोकनि मे,
कासी करामाति जोगी जगति मरद की ॥१५८॥

शब्दार्थ—कालकूट = हलाहल विष। अजर = जिसकी जरा (वृद्धावस्था) न आए। अमर = जो मरे नही। भवन = घर। मसान = (स० श्मशान) मरघट। गथ = धन। गरद = विभूति। डमरू = बाजा विशेष। रीझ = प्रसन्न होते हैं। बरद = बैल। गात = (स० गात्र) शरीर। बिलसति = सुशोभित होती है। सरद = शरद ऋतु। चारु = सुन्दर, निर्मल। बिलोकनि = दयादृष्टि मे। जोगी मरद की करामाति कासी (मे) जगति = इस योगी व्यक्ति की अर्थात् शिवजी की उपर्युक्त करामात काशी मे प्रकट होती है। जगति = प्रकट होती है।

भावार्थ—शिवजी ने कालकूट विष को पिया, पर मरने के बदले उनका शरीर अजर और अमर हो गया। उनका घर श्मशान मे है, भस्म की पोटली ही उनका धन है, हाथों मे डमरू और खप्पर है, भयकर साँप उनके आभूषण हैं, बड़े भारी गौर-वर्ण शरीर में विभूति इस प्रकार शोभा देती है मानों हिमालय मे शरद् ऋतु की चाँदनी फैली हो; और इनकी दयादृष्टि से ही धर्मार्थकाममोच्छ प्राप्त हो जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि योगिराज शिवजी की सामर्थ्य काशी मे प्रकट होती है।

मूल—पिंगल जटा कलाप माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना प्रताप भ्रू पर बरत है।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बाल चंद्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत है।
सुंदर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृङ्गी पूरे काल-कंटक हरत है।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है ॥१५६॥

शब्दार्थ—पिंगल=भूरी। कलाप=समूह। पुनीत आप=पवित्र जल अर्थात् गगाजी। पावक-नैना=जिसके नेत्रो मे अग्नि है। भ्रू=भौंह। बरत है=बलता है, जलता है। दिगबर=नग्न। रूरे=सुन्दर। सृङ्गी=शिवजी का बाजा। पूरे=बजाकर। काल-कटक=मृत्यु और बाधा। अघात न=तृप्त नहीं होते। आक ही के पात=आक के पत्ते को चढ़ाने से। औढर ढरत है=बेतरह प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ—शिवजी की भूरी जटाओ के ऊपर गंगाजी विराजमान हैं, आँखों में अग्नि है जिसका प्रताप भौंहो पर दमकता है, बड़ी बड़ी लाल आँखे हैं, ललाट पर द्वितीया का चद्रमा सुशोभित है, कठ मे कालकूट का चिह्न वर्तमान है, साँपों के गहने पहनते हैं, सुन्दर और नग्न शरीर में विभूति लगाए हुए हैं, भाँग खाते हैं। अच्छी तरह सिंगी बाजा बजाकर मृत्यु और बाधाओं को हरते हैं। केवल आक की पत्तियो के चढ़ाने से ही प्रसन्न हो जाते हैं, और जब योगी भोलानाथ बेतरह प्रसन्न होते हैं तब देते देते इनको तृप्ति ही नहीं होती।

मूल—देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति, भाँग, बृषभ बहनु है।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा, असंग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना अनग को महनु है।
'तुलसी' महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है।

बेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है ॥१६०॥

शब्दार्थ—श्रीनिकेत = (श्री = लक्ष्मी + निकेत = घर) बैकुंठ । अनन्यग रग = एकांत प्रेमी । अंगना = स्त्री, पार्वतीजी । महनु = (सं० मथन) नाशक। भाव = प्रेम, भक्ति । निगम = वेद । अगम = शास्त्र । जानिबो = जानना । गहनु है = कठिन है । भयंक = डरावना । संकर = (सं० श = कल्याण + कर) कल्याणकारी । दहनु = जलानेवाले ।

भावार्थ—शिवजी के घर में तो विभूति, भाँग और बैल की सवारी ही है, पर याचकों को धन-संपत्ति सहित लक्ष्मी का घर (बैकुंठ) ही दे डालते हैं । नाम तो वामदेव है पर सदा दाहिने रहते हैं (अर्थात् भक्तों पर सदा अनुकूल रहते है) । एकाकी रहना पसंद है, आधे शरीर में स्त्री (पार्वती) हैं, पर कामदेव को भस्म करनेवाले हैं । तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी का प्रभाव भक्ति से ही सुगम हो सकता है, क्योंकि उन्हें जानना शास्त्र और वेद के लिए भी कठिन है । उनका वेष तो भिखारियों का सा है, रूप भयंकर है, पर वे कल्याण-कर्त्ता, दयालु, दीनों के बंधु और दानी हैं और दरिद्रता को दूर करनेवाले हैं ।

मूल—चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मगन को,
देबोई पै जानिये सुभाव-सिद्ध बानि सों ।
बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ,
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ।
'तुलसी' भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ,
कोटिक कलेस जरौ, मरौ छार छानि सो ।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो ॥१६१॥

शब्दार्थ—अनंग-अरि = कामदेव के शत्रु, शिवजी । एकौ अंग = षोडशोपचार पूजा के १६ प्रकार के अंगों में से एक भी अंग । मगन को = माँगनेवाले से । पै = निश्चय । सुभाव-सिद्ध = स्वाभाविक । बानि = आदत । बारिबुंद = जल की बूँदें । भवेस = संसार के स्वामी । भोलानाथ = शिवजी का नाम । छार छानि मरौ = धूल छानते छानते मर जाओ । छानि = ढूँढ़कर ।

दुख-दोष-दाह दावानल = दुःख, दोष और ताप को भस्म करने के लिए दावाग्नि के समान। दूजो = दूसरा। सूलपानि = हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, शिवजी।

भावार्थ—महादेवजी भिक्षुक से षोडशोपचार पूजा का एक भी अङ्ग नहीं चाहते। देना ही उनकी स्वाभाविक आदत है, इसे निश्चय जानिए। अगर शिवजी पर चार बूँदे जल की छिड़का दो तो वे उसे सच्ची सेवा मान कर ग्रहण करते हैं और धर्मार्थकाममोक्ष चारों फल दे देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अगर ससार के स्वामी शिवजी का भरोसा नहीं है, तो चाहे करोड़ो कष्ट उठाओ, सब जगह की धूल छान कर मर जाओ, तो भी कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। दारिद्र्य को नाश करनेवाला, दुःख, दोष और सतापो को मिटानेवाला दानी और दयालु संसार में शिवजी के समान दूसरा नहीं है।

मूल—**काहे को अनेक देव सेवत, जागै मसान,**
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे!
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे!
'तुलसी' प्रतीति बिनु त्यागै तै प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरु-खेत रे!
पात द्वै धतूरे के दै, भोरे कै भवेस सों
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे ॥१६२॥

शब्दार्थ—जागै मसान = मसान जगाना, अमावास्या की रात को श्मशान में उसी दिन के मरे हुए मनुष्य की लाश पर बैठ कर मत्र जपते हैं। इसमे अनेक बाधाएँ होती हैं। पर मत्र सिद्ध होने पर यथेष्ट फल मिलता है। अपान = अपनापन, आत्मसंमान। भोर कै = भोला भाला बना कर। तै = तू। भवेस = ससार के स्वामी, शिवजी।

भावार्थ—अरे मूर्ख, तू अनेक देवतो की सेवा क्यों करता फिरता है? क्यों मसान जगाता है? क्यो आत्मसमान खोता है? और क्यो हठ करके प्रेत बनता है? अरे बेसमझ! तू क्यो करोड़ो उपाय करता हुआ इधर उधर दौड़ कर मरता है और देश देश के राजाओ से क्यो माँगता फिरता है?

तुलसीदास कहते हैं कि दूसरे जन्म में सकल पदार्थों को पाने के लिए बिना विश्वास के भी प्रयाग मे देह-त्याग क्यो करता है ? परलोक, और अतोल धन-वैभव पाने के लिए कुरुक्षेत्र मे दान क्यो देता है ? धतूरे के दो पत्ते शिवजी को देकर उनको भोरा कर, ससार के स्वामी से सहज ही में इंद्र का ऐश्वर्य क्यों नही प्राप्त कर लेता ?

शब्दार्थ—स्यदन = रथ। गयद = (स० गजेद्र) हाथी। बाजिराजि = घोड़ों की पक्ति। भट = योद्धा। निकर = समूह। करनि हू न पूजै क्वै = करतूत मे कोई बराबरी नही करता। क्वै = कोई। ज्वै = जो कुछ। इहाँ = इस लोक मे। ओक = घर। कै = अथवा। रिसाने = क्रोध मे। केलि = खेल से ही। चढ़ाये ह्वै हैं = चढाये होगे। पतौवा = पत्ते।

मूल—स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,
धन धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन औ
बिनय, बिबेक, बिद्या सुलभ, सरीर ज्वै।
इहाँ ऐसो सुख, परलोक, सिवलोक ओक,
जाको फल 'तुलसी' सो सुनौ सावधान ह्वै।
जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै ॥१६३॥

भावार्थ—रथ, हाथी, घोड़े, अच्छे अच्छे योद्धा, धन और घरों का समूह, सबसे बढ़कर करतूत, विनीत पत्नी, पवित्र आचरणवाला और सुन्दर पुत्र, विनय, सदसद् का ज्ञान, विद्या, सुन्दर शरीर आदि जो कुछ भी सुन्दर पदार्थ हैं (सब प्राप्त), इस लोक मे तो इस प्रकार का सुख और मरने पर अन्त मे शिव-लोक की प्राप्ति, यह जब जिस कर्म का फल है वह सावधान होकर तुलसी से सुन लो, (कि) ये सब फल पानेवाले ने जानकर वा बेजान ही, रिस में या खेल मे कभी शिव पर दो दो बेलपत्र चढ़ा दिए होंगे।

अलंकार—परिवृत्ति

मूल—रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारिकै।

संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हे हैं सँवारि कै।
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
जाको फल 'तुलसी' सो कहैगो बिचारि कै।
आक के पतौवा चारि, फूल कै धतूरे के द्वै,
दीन्हें ह्वै हैं बारक पुरारि पर डारि कै ॥१६४॥

शब्दार्थ—रति=कामदेव की स्त्री। रवनि=(सं० रमणी) स्त्री। सिंधु-मेखला अवनि-पति=समुद्र पर्यंत का राजा। सिंधु-मेखला-अवनि= सिंधु है करधनी जिसकी ऐसी अवनि (बहुब्रीहि समास)। औनिप=(सं० अवनिप) राजा। सुरनाथ=इद्र। आक=मदार। कै=अथवा। डारि दीन्हें ह्वै हैं=चढ़ाए होंगे। बारक=एक बार, कभी।

भावार्थ—रति की तरह सुन्दरी पत्नी हो, समुद्र पर्यंत पृथ्वी का राज्य हो, अनेक राजा उससे हार मानकर हाथ जोड़े हुए उसके सामने खडे हों, उसकी सपत्ति के समूह को देखकर इद्र को भी लज्जा हो, ब्रह्मा ने भी सब प्रकार के सुख एकत्र कर उसको दिए हो, इस लोक में तो ऐसा सुख भोग करे, और मरने पर स्वर्ग में इद्र की पदवी को पावे। यह सब जिस कर्म का फल है, वह तुलसीदास विचारकर कहता है (कि) उसने कभी (इस जन्म मे अथवा पूर्व जन्म में) एक बार शिवजी पर आक के चार पत्ते अथवा धतूरे के दो फूल चढ़ाए होंगे।

अलंकार—परिवृत्ति।

मूल—देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं।
एते पर हू जो, कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो, उराहना न दीजै मोहिं,
काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं ॥१६५॥

शब्दार्थ—देवसरि = गंगा। बामदेव = शिवजी। उदर = पेट। ऐते पर हू = इतने पर भी। रावरो ह्वै = आपका जन होकर। जोर करै = बल प्रयोग करे। गुदरत हौ = कहे देता हूँ, प्रकट कर देता हूँ। उराहना = उलाहना, उपालम्भ। काल-कला = कलिकाल की करनी। कहे = कहकर। निबरत हौं = छुटकारा पाता हूँ।

प्रकरण—एक बार शिवोपासकों ने तुलसीदास के प्रति ईर्ष्या कर उनको काशी से चले जाने को विवश किया। गोसाईंजी शिवनाथजी के मंदिर के कपाट पर उपर्युक्त छंद लिख कर चले गए। दूसरे दिन शिवभक्तो को कपाट बंद मिले और भीतर से वाणी हुई कि तुमने भगवद्भक्त का अपमान करके भगवान् का अपराध किया है। यह सुन कर वे सब तुलसीदासजी को लौटा लाए।

भावार्थ—हे शिवजी, मै आपके गाँव काशी मे ही गगा का सेवन करता हूँ, और रामचंद्रजी के नाम से माँग कर पेट भरता हूँ। अगर मुझे किसी को देने की योग्यता नही है तो मै किसी से कुछ लेता भी नहीं हूँ। किसी का उपकार करना तो मेरे भाग्य मे नही लिखा है पर मै किसी की हानि भी नहीं करता। इतने पर भी अगर आपका कोई भक्त मुझे कष्ट दे तो हे देव, मै दीन होकर आप ही के पास उसका कष्ट देना निवेदन किए देता हूँ। मैं रामचंद्रजी का भक्त हूँ, अतः रामचंद्रजी से उलाहना पाकर (कि आपने अपने भक्तों से मेरे भक्त की रक्षा क्यों न की) आप मुझे उलाहना न दीजिएगा (कि तुमने मुझसे अपना दुःख क्यो नहीं कहा)। अतः हे काशीनाथ, मै आपसे अपना दुःख कहके छुटकारा पाता हूँ, जिससे आप समय पर उलाहना न दे।

मूल—चेरो राम राय को, सुजस सुनि तेरो हर!
पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं।
बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत, रघुबीर भीर हौं।
अधिभूत-बेदन बिषम होत, भूतनाथ!
'तुलसी' बिकल, पाहि, पचत कुपीर हौं।
मारिए तौ अनायास कासी बास खास फल,
ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥१६६॥

शब्दार्थ—चेरी=दास । हर=शिव । रघुबीर भीर हौं=मैं केवल रामचंद्रजी से ही डरता हूँ । अधिभूत=आधिभौतिक बाधा । बेदन=वेदना, कष्ट, पीड़ा । विषम=असह्य । पाहि=मेरी रक्षा करो । कुपीर पचत=बुरी पीड़ा से पीडित हूँ । अनायास=सहज ही । खास=प्रसिद्ध । निरुज (सं०)= रोगहीन ।

भावार्थ—हे शिवजी, मै राजा रामचद्रजी का दास हूँ, और आपका सुयश सुनकर आपके चरणो के पास आकर गगा के किनारे रहता हूँ । हे वामदेव, आप अपने मन मे राम का शील-स्वभाव जानते ही हो, और उनका मुझसे स्नेह का सबध है यह भी जानते ही हो । मै केवल रामचचद्रजी से ही डरता हूँ । हे भूतनाथ, मुझे बड़ी विषम आधिभौतिक वेदना हो रही है, मैं (तुलसीदास) अत्यन्त व्याकुल हूँ । मेरी रक्षा करो । यह पीड़ा मुझे बुरी तरह से दु.ख दे रही है । अगर मुझे मार डाले तो मुख्य फल यही है कि मुझे सहज ही काशीवास का फल प्राप्त होगा । अगर जीवित रखना हो तो ऐसी कृपा कीजिए जिससे मेरा शरीर नीरोग रहे ।

मूल—जीबे की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहिं,
मालुम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं ।
कामरिपु ! राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं ।
रोग भयौ भूत सो, कुसूत भयो 'तुलसी' को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं ।
ज्याइए तौ जानकीरमन जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ।।१६७।।

शब्दार्थ—जीबे की=जीवित रहने की । लालसा=इच्छा । कामतरु= कल्पवृक्ष, कामनाओं को देनेवाला । कुसूत=कुप्रबंध, असुविधा । तुलसी को=तुलसीदास के लिए । पाहि=रक्षा कीजिए । गहतु हौं=पकड़ता हूँ । ज्याइए=जीवित रखिए तो ।

भावार्थ—रोग से पीड़ित होकर तुलसीदास शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि हे दयालु शिवजी, मुझे जीने की इच्छा नही है । आपको मालूम ही है कि मै काशी मे मरकर मोक्ष पाने के लिए ही रहता हूँ । हे कामदेव के शत्रु

शिवजी, आप रामजी के भक्तों की इच्छाएँ पूरी करने के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं, अतएव मै माता पार्वती सहित आपका सहारा चाहता हूँ। यह रोग भूत की तरह मुझे पीड़ित करता है जिससे मेरे लिए सब प्रकार की असुविधा हो रही है। अतः हे भूतनाथ, इस रोग रूपी भूत से मेरी रक्षा करो। मै आपके चरणकमलों को हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि अगर आप मुझे सीतापति रामचद्रजी का भक्त जानकर जिला दे तो अच्छा ही है, नही तो मै आपसे सच कहता हूँ कि अगर आप मुझे मार दे तो मुझे मुँह माँगी मौत मिलेगी (क्योंकि मै तो काशी मे मरने ही के लिए रहता हूँ)।

मूल—भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनी समाज सिव ! आपु नीके जानिये।
नाना बेष, बाहन, विभूषन, बसन, बास,
खान पान, बलि पूजा बिधि को बखानिये ?
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह सबही को सनमानिये।
'तुलसी' की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये ॥१६८॥

शब्दार्थ—भूतभव = पंच महाभूतो के कारण स्वरूप। भवत = आप। नीके = अच्छी तरह। बसन = वस्त्र। बास = निवासस्थान। को बखानिए = कौन वर्णन कर सकता है। भवानिये = भवानी ही (पार्वतीजी ही)।

भावार्थ—हे पच महाभूतो के आदि कारण शिवजी, आप पिशाच, भूत और प्रेतों के प्रिय हैं (सब भूत आपके सेवक हैं)। अतः आप अपने (भूत-प्रेतादि के) समाज को अच्छी प्रकार जानते हैं। उनके अनेक प्रकार के वेष, अनेक प्रकार के बाहन, अनेक प्रकार के आभूषण, अनेक प्रकार के वस्त्र, अनेक प्रकार के निवासस्थान, अनेक ढंग के खान-पान और बलि पूजा के विधान का वर्णन कौन कर सकता है ? (मैं कहाँ तक उनको प्रसन्न करने को सामग्री जुटाऊँ)। रामचद्रजी के भक्तों की तो रीति-प्रीति सब सीधी-सादी है। वे सबसे स्नेह करते हैं और सबका सम्मान भी करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी बात तो शिवजी के सुधारने से ही सुधरेगी, क्योंकि मेरे माई बाप, गुरु, सब कुछ श्रीशिव-पार्वती ही तो हैं।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

मूल—गौरीनाथ, भोलानाथ, भवत भवानीनाथ,
विस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सो नारी कासी-बासी,
वेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि, केलि काटत किरात-कलि,
निठुर ! निहारिये उघारि डीठि भाल की।।१६६।।

शब्दार्थ—भवत = आप। आन = दुहाई। सही की = समर्थन किया। ससिसेखर = (शशिशेखर) शिवजी। छमुख = कार्तिकेय। बिहाल = व्याकुल। सुरबेलि = कल्पलता। केलि = खेल ही में। किरात-कलि = कलियुग रूपी किरात। भाल की डीठि = ललाट पर का तीसरा नेत्र (जिसको उघारने से कामदेव जलकर राख हो गया था)।

भावार्थ—हे शिवजी, आप गौरीनाथ, भोलानाथ, और भवानीनाथ हैं, आपकी पुरी काशी में कलियुग की दुहाई फिरी है। वेदों ने कहा है कि काशी के रहनेवाले पुरुष महादेवजी के समान और स्त्रियाँ पार्वतीजी के समान हैं। इस बात को कृपालु शशिशेखर ने अर्थात् आपने समर्थन किया है। जो लोग शिवजी को कार्तिकेय और गणेश से भी प्यारे थे वे ही बड़े व्याकुल दिखलाई देते हैं। सारी काशीपुरी को इस कलियुग ने व्याकुल कर दिया है। यह कलियुग रूपी किरात काशी रूपी कल्पलता को खेल ही खेल में काटना चाहता है। हे निष्ठुर शिवजी, अपने ललाट की आँख को खोल-कर इसकी ओर देखिए (अर्थात् उसको भस्म कीजिए)।

नोट—इस छंद से अंत तक के छंद उस समय कहे गए हैं जब काशी में महामारी फैली थी।

मूल—ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ,
लोक-बेद हू बिदित महिमा ठहर की,
भट रुद्रगन, पूत गनपति सेनपाति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी।

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बढ़ो बारानसी,
बूझिये न ऐसो गति संकर-सहर की।
कैसे कहै 'तुलसी' वृषासुर के बरदानि!
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ।।१७०।।

शब्दार्थ—ठाकुर = मालिक। ठकुराइन = मालकिन। उमा = पार्वती। ठहर = स्थान। सेनापति = कार्तिकेय। हरकी = मना की, रोकी। बीसी बिस्व नाथ की = साठ (प्रभव से क्षय तक) सवत्सरों को तीन भागों मे बॉटा गया है। प्रथम बीस ब्रह्मा की बीसी, द्वितीय बीस विष्णु की बीसी, अ तिम बीस सवत्सर विश्वनाथ की बीसी कहलाते हैं। यह शिवजी की बीसी (रुद्रबीसी) स वत् १६६५ से १६८५ तक रही। बृषासुर = भस्मासुर का दूसरा नाम है।

भावार्थ—जहॉ के मालिक शिवजी और मालकिन पार्वतीजी के सदृश हैं, जिस स्थान को महिला लोक और वेद दोनो मे प्रकट है, जहॉ योद्धा वीरभद्रादि शिवजी के गण ह, जिनके दोनो पुत्र गणपति और सेनापति सरीखे हैं, वहॉ इस कलियुग की कुचाल को किसी ने नही रोका। इस रुद्रबीसी मे शिवजी की पुरी मे बड़ा भारी दुःख है। शकरजी के समान कल्याण-कर्ता के नगर की ऐसी दशा क्यो हुई यह समझ मे नही आता। उनको तुलसीदास कैसे कह सकते हैं? हे वृषासुर को वरदान देनेवाले शिवजी, आपकी तो अमृत छोड़कर विष पीने की आदत प्रकट है (अतः आप कलियुग-को क्यों बरजेंगे?)।

नोट—इस छद मे ध्वनि यह है कि काशी को दुर्दशा आप स्वयं करा रहे हैं, क्योंकि आपकी आदत है कि अ डबड काम कर बैठते हैं। भस्मासुर को बरदान देकर तथा हलाहल पीकर आप स्वयं हैरान हुए, वैसे ही यह भी आपकी कोई विलक्षण लीला होगी, तुलसी आप से क्या कहे।

मूल—लोक वेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,
बासी नरनारि ईस अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंड-कारि दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं।
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं,
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।

फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं ॥१७१॥

शब्दार्थ—बासी = रहनेवाले। कालनाथ = कालभैरवजी। दंडकारी = दंड देनेवाले। दंडपानि = दंडपाणिभैरवजी। गनप = गणेशजी। अमित = अनेक। तहाँऊ = वहा भी। कैधौं = या तो, अथवा। मूढ़ = मूर्ख कलियुग। फलै फूलै = सफल मनोरथ होते हैं। सीदैं = कष्ट पाते हैं। पल पल = हर घड़ी। 'खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं' = (कहावत है) दिवाली की रात भर तो घी तेल दियो में भरा जाता है पर प्रभात होते समय सूप खटखटाए जाते हैं; अर्थात् दुष्टता तो करे दुष्ट और वे ही मौज उडावे पर दुःख पावे सज्जन।

भावार्थ—काशी की बड़ाई लोक और वेद दोनो मे विदित है। यहाँ के निवासी पुरुष और स्त्री शिव पार्वतीजी के स्वरूप हैं। कालभैरवजी के समान तो यहाँ के कोतवाल हैं, दंडपाणि भैरवजी के समान यहाँदंड देनेवाले जज हैं, और गणेशजी के समान अनेक अद्वितीय सभासद हैं। यहाँ भी कुचालि कलियुग ने अपनी कुरीति को चलाया (बडा आश्चर्य है) अथवा मूर्ख कलियुग यह नही जानता कि यहाँ के राजा भूतनाथ (शिवजी) हैं। (उनका प्रभाव उसे ज्ञात नहीं है) क्योंकि दुर्जन तो मौज उड़ाते हैं, और सज्जन लोग हर घड़ी दुःख पा रहे हैं। मानो वही कहावत है कि घी तो खाय दीपमालिका और पीटा जाय सुप।

अलंकार—छेकोक्ति।

मूल—पंचकोस पुन्यकोस, स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास बास दियो है।
नीच नरनारि न सँभारि सकैं आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है।
बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,
मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
रोष में भरोसो एक, आसुतोष कहि जात,
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥

शब्दार्थ—पंचकोस = असी से वरुणा नदी तक काशी की परिक्रमा पाँच कोस की है। परारथ = परमारथ, पारलौकिक सुख। सुपास = (स्वपार्श्व) अपने पास। बारी = जला दी। चक्रपानि = श्रीकृष्ण। हितहानि = अपने मित्र शिवजी की हानि मान कर। मुरारी = मुर नामक दैत्य के शत्रु श्रीकृष्ण। मन भियो है = मन में संकुचित हुए, डरे। आसु-तोष = शीघ्र ही संतुष्ट हो जानेवाले शिवजी।

भावार्थ—यह पंचकोसी के भीतर की भूमि पुण्यमय है और स्वार्थ तथा परमार्थ साधने के लिए बहुत उत्तम है, ऐसा सोचकर तो आपने यहाँ के निवासियों को कृपा करके अपने पास बसाया, पर वे नीच प्रकृति नर-नारी इस आदर को न सँभाल सके (मोह-अभिमानवश सुकर्म त्यागकर कुकर्म करने लगे अतः) वे कायर जन अपने अविचार का फल पाते हैं (अर्थात् हे शिवजी ! तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह महामारी यहाँ के निवासियों के कर्मों का फल है)। पर आपसे तो उस समय श्रीकृष्णजी भी (जिन्होंने मुर नामक प्रबल दैत्य को मारा था) प्रेम-हानि समझ कर डर गए थे जब मिथ्या वासुदेव को मारने के लिए उन्होने सुदर्शन चक्र छोड़ा था और उसने उसे मारकर काशी नगरी को भी (बिना कृष्ण की आज्ञा के ही) जला दिया था—(सो क्या कलिकाल आपसे न डरेगा ?) और यदि यह कहो कि हम ही ने यहाँ के वासियो के कुकर्मो से नाराज होकर उन्हे दड देने के हेतु यह महामारी फैलाई है तो हे शकर, आपके इस क्रोध के समय में भी मुझे एक भरोसा है और मै उसे कहे डालता हूँ कि आपका नाम 'आशुतोष' है और आप ऐसे दयालु हैं कि (पहले एक समय) आपने लोगों को विकल देखकर कालकूट पी लिया था, तो क्या अब आप इस महा-मारी के विष को नही पी सकते—अर्थात् पी सकते हैं—अतः इस महामारी को आप पी जाइये।

नोट—एक समय काशी के एक 'मिथ्या वासुदेव' नामक राजा ने द्वारका पर चढ़ाई की। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र छोड़ा। चक्र ने उस राजा को परास्त करके उसकी काशी को भी जला डाला था। उस समय कृष्णजी ने शंकर से माफी माँगी थी कि चक्र ने बिना मेरी आज्ञा के ही तुम्हारी पुरी जला दी है, अतः मुझे क्षमा कीजिए।

मूल—रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग, अगजग-पालिके।
तोहि में बिकास बिस्व, तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके।
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना-तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी, परितोष महतारी दुनी
देखिये दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥१७३॥

शब्दार्थ—बिरचि = ब्रह्मा। हरि = विष्णु। हरत = संहार करते हैं। हर = शिव। अग = अचर। जग = जगम चर। विकास = उत्पत्ति। बिस्व = सृष्टि। बिलास = पालन। भूमिधर = पर्वत (हिमालय)। करुनातरंगिनि = करुणा की नदी अर्थात् करुणामयी। कृपातरगमालिका = कृपा रूपी तरंगों की माला, अर्थात् अत्यत कृपा करनेवाली। परितोष = सतुष्ट हो। मुनिमानसमरालिके = मुनियो के मनरूपी मानसरोवर के लिए हंसी के समान। (अर्थात् जैसे हंसी मानसरोवर मे रहती है वैसे ही तुम मुनियों के मन में बसती हो)।

भावार्थ—हे चराचर का पालन करनेवाली, तुम्हारी ही प्रसन्नता (इच्छा) से ब्रह्मा ससार को रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं, और शिवजी संहार करते हैं। हे हिमालय की पुत्री पार्वतीजी, सारी सृष्टि तुम्हीं से उत्पन्न होती है, तुम्हीं से इसका पालन होता है, और हे माता, अत में यह ससार तुम्हीं मे समाता है। हे करुणा की नदी और कृपा की तरगमाला जगदबा, अब सब को सहारा दीजिए, विलंब न कीजिए, यह महामारी इस समय क्रुद्ध होकर सब जगत् को खाए जाती है और तू जगन्माता होकर संतुष्ट होकर बेफिकिर बैठी है। अतः हे मुनियों के मन रूपी मानसरोवर के लिए हसी के समान जगदबे ! संसार को दीन और दुःखी देखकर सब पुत्रो पर प्रसन्न होकर इसका निवारण कीजिए।

अलंकार—परिकरांकुर ('जगदंब' शब्द साभिप्राय है)

मूल- निपट अनेरे, अघ औगुन बसेरे, नर
नारि ये घनेरे जगदब चेरी चेरे हैं।

दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
लोकरीति राखी राम, साखी बामदेव जान,
जन की बिनति मानि, मातु ! कहि मेरे हैं।
महामायी, महेसानि, महिमा की खानि, मोद,
मंगल की रासि, दास कासी बासी तेरे हैं ॥१७॥

शब्दार्थ—निपट = अत्यत। बसेरे = स्थान, निवासस्थान। औगुन = अवगुण। घनेरे = बहुत। अनेरे = अनीति मे रति। चेरी चेरे = दासीदास। भूसुर = ब्राह्मण। कलिमल = पाप। लोकरीति राखी = अपने पुर (अयोध्या) वासियों को सुखी रखा। साखी = (स० साक्षी) गवाह। महेसानि = पार्वतीजी। मोद = आनंद। महामाई = जगदबा।

भावार्थ—हे जगदबा, ये निपट अन्यायी, पाप और अवगुणो के घर काशीवासी स्त्री-पुरुष, तेरे ही दास-दासी है। यद्यपि इनके आचरण ऐसे हैं की दरिद्री और दुखी ब्राह्मण और भिखारियो को देखकर डरते हैं (कि कहीं कुछ मॉग न बैठै—इतने अदानियॉ है) और लोभ, मोह काम, क्रोध की जमात से घिरे रहते हैं (तो भी तुझे इन पर दया ही करनी चाहिए)। श्रीरामजी ने इस लोकरीति को (दासी-दासो पर सदा दया करते रहना) अच्छी रक्षा की है, जिसके साक्षी महादेवजी हें। (तुम भी लोकरीति रखो) मुझ दास की विनय मानकर, हे माता तुम मां (महामारी से) कह दो कि ये मेरे दास-दासी हैं, इन्हे मत सता। हे महामाया, हे महेशानी, तुम महिमा की खानि और मोद तथा मगल की राशि हो, और काशीवासी वास्तव में तेरे सेवक हैं (तुम्हें उन पर दया करनी ही पड़ेगी, नहीं तो संसार मे तुम्हारी निदा होगी और तुम जगदबा कैसे कहलाओगी)।

मूल—लोगन के पाप, कैधौं सिद्ध सुर-साप कैधौ
काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप तई है।
ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक, रक, राजा, राय
हठनि बजाय, करि डीठि, पीठि दई है।
देवता निहोरे, महामारिन्ह सो कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।

करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जसरासि जहाँ तहाँ तैं ही लूटि लई है ॥१७५॥

शब्दार्थ—कैधौं = अथवा। सिद्ध-सुर-साप = सिद्ध और देवतों के शाप से। तिहूँ-ताप तई है = दैहिक, दैविक, भौतिक तीनो तापो से तप्त हुई है। राय = छोटे छोटे राजा। हठनि बजाय = हठ करके खुल्लमखुल्ला। करि डीठि = देखकर। पीठि दई है = विमुख हुए हैं। निहोरे = विनती की। अपनी सी ठई है = अपनी चाही बात की है, अपना प्रभाव फैलाया है। जसरासि = यश का ढेर। तैंही = तुमने ही।

भावार्थ—लोगो के पाप के कारण, अथवा सिद्ध और देवतो के शाप के वश, अथवा समय के फेर से इस समय काशी दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकार के कष्टो से पीड़ित है। उत्तम, अधम, मध्यम, धनी, दरिद्री, बड़े बड़े राजा, छोटे राजा, सब हठपूर्वक खुले मैदान जान बूझकर धर्म-कर्म से विमुख ही बैठे हैं (देख-सुनकर जनता की सहायता करने से विमुख हो गए हैं)। देवतों से भी महामारी के निवारण के लिए प्रार्थना की, स्वय महामारी से भी हाथ जोड़कर विनती की; पर सब निष्फल हुआ। शिवजी को सीधा-सादा जानकर महामारी ने अपनी मनसा पूरी की अर्थात् जो जी चाहा सो किया। ऐसे समय में हे दयासागर, वीर और बलवान हनुमानजी, महामारी का निवारण करके आप ही यश लीजिए क्योकि कठिन समयों मे जहाँ तहाँ आप ही ने यश की ढेरी लूटी है (यश प्राप्त किया है)।

मूल—संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात, जल थल मीचु मई है।
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥१७६॥

शब्दार्थ—संकर-सहर = काशी। सर = तालाब। बारिचर = जलजतु।

हहरात=हाय हाय करते हुए। भभरि=भयभीत होकर, घबराकर। मीचु मई=मृत्युमय। मीचु=(स०) मृत्यु, (प्रा० मिच्चु)। पाहि=रक्षा करो।

भावार्थ—काशी मानो एक तालाब है, वहाँ के स्त्री पुरुष मानो उस तालाब के जलजतु हैं, वे जलजतु महामारी रूपी माजा (वर्षाऋतु के आरभ का जल) के पानी से व्याकुल हो गए हैं, और उछलते हुए पानी के ऊपर उतराते हुए हाय हाय करके मरे जाते हैं, और कोई घबराकर भाग रहे हैं। जल थल सब मृत्युमय है, देवता भी दया नही करते, राजाओं का चित्त भी कृपापूर्ण नही है, क्योकि काशी मे नित्य ही नई नई अनीति बढ़ रही है। हे रामचंद्रजी, तुम्ही रक्षा करो। हे रामदूत हनुमानजी, तुम्ही रक्षा करो क्योंकि तुमने तो रामचद्रजी की भी बिगड़ी बात सुधार ली थी (रामचंद्रजी के भाई लक्ष्मण को सजीवन बूटी लाकर जिलाया था)।

मूल—एक तो कराल कलिकाल सूलमूल ता में,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान, जानि रीति पाप-पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम!
रावरी ही गति बल बिभव-बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहिं,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की ॥७७॥

शब्दार्थ—सूलमूल=दुखों का मूल कारण। कोढ़ मे की खाजु सी=(कहावत) एक तो कोढ़ स्वय एक भयानक और कष्टप्रद रोग हैं, अगर उसमें खाज भी हो जाय तो कष्ट का क्या ठिकाना; अर्थात् और भी अधिक दुःख देनेवाला। सनीचरी है मीन की=मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति की दशा। इसका फल है राजा प्रजा दोनों का नाश। यह योग संवत् १६६९ के आरभ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। सीद्यमान=कष्ट पाते हैं। जानि रीति पाप पीन की=इसे बड़े भारी दुष्ट पाप का फल ही जानो। दूबरे=(सं०) दुर्बल। द्वार=गति, शरण। बिभव=ऐश्वर्य। बिरुद=यश। जौ=अगर। दादि न देत=न्याय नहीं करते हो तो।

भावार्थ—एक तो स्वयं भयकर कलियुग ही दुःखदायी है, उस पर भी 'कोढ़ में खाज की तरह' महा उपद्रवकारी मीन की सनीचरी पड़ गई है, जिससे वेद और धर्म लुप्त हो गए हैं, राजा अपनी प्रजा की भूमि का हरण कर लेते हैं, और सज्जन लोग कष्ट पा रहे हैं। इसे भारी पाप का ही परिणाम समझो। हे दयालु रामचंद्रजी, दुर्बल के लिए आपके अतिरिक्त दूसरे का आश्रय नहीं है। बल और ऐश्वर्य से रहित मनुष्य के लिए आप ही शरण हैं। हे महाराज, अगर आज आप दोनो की फरियाद न सुनेंगे तो निश्चय ही आपके उस सुशोभित यश को लज्जा लगेगी (अर्थात् आप जो दीन-बंधु कहलाते हैं उस पर बट्टा लगेगा)।

मूल—रामनाम मातुपितु स्वामि, समरथ हितु,
आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।
प्रेम रामनाम ही सों, नेम रामनाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को।
स्वारथ सकल, परमारथ को रामनाम,
रामनाम-हीन 'तुलसी' न काहू काम को।
राम को सपथ, सरबस मेरे रामनाम,
कामधेनु कामतरु मो से छीन छाम को ॥१७८॥

शब्दार्थ—हितु = हितकारी, मित्र। नेम = (स०) नियम। मरम = भेद। अन्वय—न दाहिनी न बाम पद को मरम जानौं = सुमार्ग और कुमार्ग का भेद नहीं जानता हूँ। कामतरु = कल्पवृक्ष। छीन = (स० क्षीण) दुर्बल। छाम = (स० क्षाम) दुर्बल। छीन छाम = अत्यत दुर्बल।

भावार्थ—रामनाम ही मेरा माता, पिता, स्वामी और समर्थ मित्र है। मुझे रामनाम की ही आशा है, रामनाम का ही भरोसा है, रामनाम ही से प्रेम है, रामनाम रटने का ही मैं नियम करता हूँ। रामनाम के अतिरिक्त न तो मैं सुमार्ग जानता हूँ न कुमार्ग। संपूर्ण सासारिक सुख और पारलौकिक सुख प्राप्त करने के लिए मैं रामनाम ही रटता हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि रामनामहीन मनुष्य तो किसी काम का नहीं हैं, मैं राम की शपथ लेकर सत्य कहता हूँ कि रामनाम ही मेरा सर्वस्व है और मेरे समान अत्यत दुर्बल के लिए रामनाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष है।

मूल—

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सो पाप को दाम परीच्छितु जाहिगो जारि कै हीयो।
कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिगे चाटि दिवारी को दीयो ॥१७६॥

शब्दार्थ—मारग मारि=पथिकों को लूटकर। महीसुर=ब्राह्मण। कै=करके। दाम=धन। पाप की दाम=पाप से कमाया धन। परीच्छित=(सं० परीक्षित) निश्चय ही यह बात परीक्षा की हुई है। जाहिगो=नष्ट हो जायगा। जारि कै हीयो=हृदय जलाकर, मनमें दुःख पैदा करके। कटक=बाधक। जेते=जितने। तेगे=वे नष्ट हो गए। आपनी कीयो अघाई कै पाइ=अपने किये का भरपूर फल पाकर, तृप्त होकर। जड़=मूर्ख, कुमार्गी। जाहिंगे=नष्ट हो जाएँगे। चाटि दिवारी को दीयो=ऐसा कहते हैं कि कीट पतंगादि दिवाली का दीया चाटकर चले जाते हैं अर्थात् दीवाली के बाद नही रह जाते, समय पर स्वयं नष्ट हो जायँगे।

भावार्थ—कुमार्गी लोग राहगीरो को लूटकर, ब्राह्मणो को मारकर, करोड़ों कुरीतियों द्वारा धन एकत्र करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी के कोप से पाप की कमाई मन में दुःख बढ़ाकर अवश्यमेव नष्ट हो जाएगी। क्योंकि काशी में जितने भी बाधक हुए हैं, सब अपनी करनी का भरपूर फल पाकर नष्ट हो गए हैं। जैसे दीवाली के बाद कीट पतगादि नही रह जाते, उसी प्रकार से मूर्ख भी आज या कल या परसों या नरसों, कभी न कभी समय पर स्वतः नष्ट हो जाएँगे।

मूल—

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सो चंद सो होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है।
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद-भरी है।
पेखि सप्रेम पयान-समै सब सोच-बिमोचन छेमकरी है ॥१८०॥

शब्दार्थ—कुंकुम रग=केसरिया रंग। सुअग=चोंच। जितो=जीत लिया है। होड़ परी है=बाजी लगी है, शर्त लगी है। समृद्धि=धन, संपत्ति। विहगिनि=पक्षिणी। मजुल=सुन्दर। पेखि=(सं० प्रेक्ष्य) देखकर।

पयान=(स० प्रयाण) यात्रा को जाते समय । छेमकरी=(स० क्षेमकरी) (१) एक पक्षी का नाम, (२) कुशल करनेवाली ।

प्रकरण—किसी यात्रा के समय तुलसीदासजी ने क्षेमकरी पक्षी को देखा और उसकी प्रशसा मे यह छद कहा ।

भावार्थ—इस क्षेमकरी ने अपनी चोच के रग से कुकुम को भी जीत लिया है । इसका मुखचद्र इतना सुन्दर है कि आकाशीय चद्रमा से समता करता है । इसके वचन बोलते ही मानो धन-वैभव टपकता है, देखते ही यह पक्षी सोच और दु.ख को दूर कर देता है । क्या यह चिड़िया के वेष में पार्वती है अथवा गगा है ? अथवा आनद से परिपूर्ण किसी अन्य सुन्दर देवी की मूर्ति ? प्रस्थान करते समय प्रेम-सहित क्षेमकरी के दर्शन पाना सब चिंताओ को मिटाकर मगलकारी होता है ।

अलंकार—'मुखचद सो चद सो होड़ परी है' मे 'ललितोपमा' । तृतीयपाद मे 'संदेहालंकार' ।

मूल— (कवित्त)

मंगल की रासि, परमारथ की खानि, जानि,
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है ।
प्रलय हु काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचुबस नीच सोऊ चहत खसाई है ।
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है
पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि !
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है !!१८१!!

शब्दार्थ—रासि=(स० राशि) ढेर । खानि=उत्पत्ति भूमि । बिरचि बनाई=अच्छी तरह रचकर बनाई । केसव=विष्णु । बसाई है=पालन किया है । सूलपानि=त्रिशूल हाथ मे धारण करनेवाले, शिवजी । सूल=त्रिशूल । चहत खसाई=नाश करना चाहता है । छितिपाल=राजा । परीछित=अर्जुन का पौत्र परीक्षित । निकाई=भलाई । कुहत हैं=मारता है ।

भावार्थ—मंगल-पूर्ण और मोक्ष देनेवाली जानकर ब्रह्मा ने विशेष रीति

से काशी को बनाया, विष्णु ने इसका पालन किया, शिवजी ने प्रलय के समय भी इसको अपने त्रिशूल पर रखकर नाश होने से बचाया, उसी काशी को नीच कलियुग मृत्यु के वश मे होकर नाश करना चाहता है। राजा परीक्षित इसको छोड़कर इस पर कृपालु हुए और इस दुष्ट का भला किया, उस उपकार को इस दुष्ट ने भुला दिया है। अतः हे हनुमान ! रक्षा करो। हे करुणानिधान रामचद्रजी ! रक्षा करो, कलिरूपी कसाई काशीरूपी कामधेनु को मारे डालता है।

मूल—बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो,
प्रान हू तें प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित लिंगमई,
मोक्ष बितरनि बिदरनि जगजाल की।
देवी देव देवसरि, सिद्ध मुनिबर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हा हा करै 'तुलसी' दयानिधान राम ! ऐसी,
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥१८२॥

शब्दार्थ— बसति = बस्ती, पुरी। ज्योतिरूप लिंगमई = द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग (विश्वनाथजी का) काशी में भी है। मोक्ष-बितरनि = मोक्ष बाँटनेवाली। बिदरनि = काटनेवाली। जगजाल = सांसारिक प्रपंचों का जाल। लोपति = लुप्त हो जाती है। बिलोकत = दर्शन मात्र से। भोंड़े भाल की = अभागे के कपाल पर लिखी हुई। कुलिपि = दुर्भाग्य की रेखा। हा हा करै = विनती करता है। कदर्थना = दुर्दशा।

भावार्थ—जो काशी ब्रह्मा ने बनाई, जो शिवजी की पुरी है, जो दयालु भगवान् विष्णु की प्राणों से भी प्यारी नगरी है, जहाँ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग (विश्वनाथजी का) विराजमान है, जहाँ असंख्य शिवलिंग हैं, जो मोक्ष देनेवाली है, जो सांसारिक कष्टों का नाश करनेवाली है, और जहाँ देवी, देवता, गंगा, सिद्धजन, और श्रेष्ठ मुनियों का निवासस्थान है, जो अभागों के कपाल पर लिखे हुए दुर्भाग्य की रेखा को मिटा देती है, ऐसी काशी की कराल कलियुग ने दुर्दशा की है। अतएव हे दया के घर रामचंद्रजी ! मैं विनती करता हूँ कि आप काशी की रक्षा कीजिए।

मूल—आस्रम बरन कलि-बिबस बिकल भए,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
सकर सरोष महामारि ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी।
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
'तुलसी' सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥१८३॥

शब्दार्थ—आस्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। बरन = (वर्ण) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मोटरी = गठरी। डार दी = फेंक दी। मोटरी सी डार दी = गठरी सी फेंक दी है, भार समझकर छोड़ दिया है। दारदी = दारिद्रय। मोटी = अधिक। मूठि मार दी = (मुहावरा) जादू डाल दिया। समय = समय पर। सुकरुना सराहि = स्व (अपनी) करुणा की प्रशंसा कर। सनकार दी = इशारा कर दिया।

भावार्थ चारो आश्रमो और चारो वर्णों के लोगो ने कलियुग के कारण व्याकुल होकर अपनी अपनी लोकमर्यादा भार-स्वरूप जानकर छोड़ दी है। शिवजी तो क्रुद्ध हैं, यह महामारी के प्रकोप से ही जाना जाता है। स्वामी के क्रुद्ध होने से ससार में दिन दिन दारिद्रय बढ़ता जाता है पुरुष स्त्री सब आर्त होकर प्रार्थना करते हैं पर कोई सुनता नही। जान पड़ता है कि कुछ देवताओं ने मिलकर बड़ा भारी जादू कर दिया है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे समय भयभीतो के रक्षक कृपालु रामचंद्रजी को स्मरण करते हो, उन्होंने अपनी करुणा की प्रशसा करके ठीक अवसर पर लोगों की सहायता का सकेत कर दिया (राम की कृपा से काशी से महामारी चली गई)।

कथा-प्रसंग

१—नारद (छंद १६, बाल०)

नारदजी पूर्वजन्म में वेदवादी ऋषियो के दासी के पुत्र थे। माँ ने इन्हें ऋषियों की सेवा के लिए रख दिया था। ये मन लगाकर श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करते थे। उन मुनियों का जो जूठन बचता था उसी को खाकर अपना पेट भरते थे, इसके प्रभाव से उनका अंतःकरण शुद्ध हो गया। ऋषियों ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश दिया जिससे उनके मन में दृढ़ भक्ति पैदा हो गई। ऋषियो के चले जाने पर कुछ दिनों बाद उनकी माता सर्प काट लेने के कारण मर गई। तब वे उत्तर दिशा मे जाकर तपस्या करने लगे। लेकिन अनुपयुक्त शरीर होने के कारण ध्यान जमता नहीं था। एक दिन काल पाकर उन्होने अपना शरीर छोड़ दिया और जब ब्रह्माजी जगत् की रचना करने लगे तब मरीचि, अंगिरा आदि ऋषियों के साथ उत्पन्न हुए। तब से वे वीणा लिए सर्वत्र हरिगुण गाते विचरा करते हैं, उनकी गति कहीं भी नहीं रुकती।

२—अहल्या (छंद ३१, बाल०)

एक बार ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक परम मनोहर कन्या उत्पन्न की जिसकी सुन्दरता देखकर सभी मोहित होते थे। ब्रह्माजी उसे गौतमजी को धरोहर की भाँति सौंपकर चले गए। कुछ दिन बाद ब्रह्माजी ने उनसे वह कन्या माँगी तब उन्होंने ज्यों की त्यों उन्हें सौपदी। ब्रह्माजी ने गौतमजी की जितेन्द्रियता देखकर उस कन्या का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया। यह बात इन्द्र को बहुत बुरी लगी। एक दिन जब गौतमजी बाहर गए थे, इन्द्र गौतम का बनावटी रूप धारण करके आया और उसने धोखा देकर अहल्या के साथ संभोग किया। वह संभोग कर ही रहा था कि गौतम ऋषि आ पहुँचे। अहल्या ने घबड़ाकर इन्द्र से उसका नाम पूछा; उसने नाम बता दिया। अहल्या इसे छिपाकर देर से द्वार खोलने आई। ऋषि ने देर से आने का कारण पूछा, अहल्या ने उसे छिपाया। तब ऋषि ने अपने तपोबल से सारा हाल जानकर इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर में सहस्र भग हो जायँ

और अहल्या को शाप दिया कि तू शिला हो जा। जब रामजी दर्शन देंगे तब तेरा उद्धार होगा। वह शिलारूपिणी अहल्या रामजी के चरणस्पर्श से पवित्र होकर स्त्री-रूप होकर पुनः गौतम के पास चली गई।

३—सहस्रबाहु (छंद ५, लंका०)

एक दिन हैहय-वंशी राजा सहस्रबाहु शिकार खेलते-खेलते जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचा। कामधेनु के प्रभाव से मुनि ने सेना-सहित सहस्रबाहु का यथोचितसत्कार किया। मुनि में अपने से अधिक सामर्थ्य देखकर सहस्रबाहु उनसे कुढ़ा, उसकीआज्ञा से उसके नौकर बलपूर्वक बछड़े सहित उस धेनु को माहिष्मती नगरी में उठा ले गए। जब मुनिजी के पुत्र परशुरामजी को यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होने अपना फरसा लेकर सहस्रबाहु पर चढ़ाई की। सहस्रबाहु ने उनके मारने के लिए १७ अक्षौहिणी सेना भेजा, उसे परशुरामजी ने काट डाला। इस पर जब सहस्रबाहु लड़ने आया तब उसे भी मार डाला।

४—गणिका (छंद ७, उत्तर०)

सत्ययुग का परशुराम वैश्य श्वासरोग से मर गया, तब उसकी स्त्री अपना कुल-धर्म छोड़कर स्वजनों से दूर जाकर वेश्यावृत्ति करने लगी। एक दिन एक बहेलिया एक सुग्गे का बच्चा बेचने आया। उसने सुग्गा खरीदकर पुत्रभाव में उसे पुत्रवत् स्नेह से पाला और उसे रामनाम पढ़ाया। रामनाम पढ़ाते-पढाते दोनों एक ही समय में मर गए, रामनाम के उच्चारण के प्रभाव से दोनो की मुक्ति हो गई।

५—गज (छंद ७, उत्तर०)

किसी प्राचीन सत्ययुग में क्षीरसागर के त्रिकूट नामक पर्वत में वरुण देव का ऋतुमत् नामक बगीचा था; एक दिन उस बगीचे के सरोवर में एक मदमस्त गजयूथपति हथिनियों सहित नहा रहा था। उसी समय एक बलवान् मकर(ग्राह जो पूर्वजन्म में हूहू नाम का गंधर्व था) ने उसका पैर पकड़ लिया। गजराज तथा उसके साथियों ने भरसक उससे छुड़ाने के लिए चेष्टा की,परंतु कोई भी उसे जल से निकाल न सका। जब गजराज अपने जीवन से हताश हो गया तब वह भगवान् का ध्यान करके उनकी स्तुति करने लगा।

उसका आर्तनाद सुनकर भगवान् गरुड़ को छोड़कर गजेंद्र की सहायता के निमित्त आए। भगवान् ने गजेंद्र की सूँड़ पकड़कर ग्राह सहित जल से बाहर खींचकर चक्र से ग्राह का मुख फाड़कर उसे छुड़ाया और वे गजेंद्र को अपना पार्षद बनाकर अपने साथ ले गए।

६—अजामिल (छंद ७, उत्तर०)

कान्यकुब्ज देश मे अजामिल नाम का एक ब्राह्मण था। उसने अपनी विवाहिता पत्नी को त्याग कर दासी से प्रीति की थी। वह जुआ, चोरी, ठगी आदि अनेक प्रकार के निंदित कर्म करता था। एक दिन जब वह बाहर गया था उसके घर पर कुछ साधु आए। उसकी गर्भवती स्त्री ने साधुओं का बड़ा आदर-सत्कार किया। जाते समय साधुओ ने उसे आशीर्वाद दिया कि तेरे पुत्र होगा। तू उसका नाम 'नारायण' रखियो। अजामिल अपने दस पुत्रों में सबसे छोटे 'नारायण' को सबसे ज्यादा प्यार करता था। बिना छोटे पुत्र के उसे चैन नही पड़ता था। अत में मरते समय जब उसे यमराज के दूत भय दिखाने लगे, तब उसने अपने प्रिय पुत्र नारायण' को पुकारा नाम लेते ही भगवान् के दूतो ने आकर उसे यमदूतों के पजे से छुड़ाया। भगवान् ने उसे सुन्दर गति दी।

७—प्रह्लाद छंद (८, उत्तर०)

जब प्रह्लाद अपनी माता कयाधु के गर्भ मे थे, उस समय एक दिन नारदजी ने आकर उनकी माँ को ज्ञानोपदेश किया। माँ को तो ज्ञान नहीं हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया। प्रह्लाद रामजी के बड़े भारी भक्त हुए; इनके लिए भगवान् को नृसिंह अवतार धारण करना पड़ा जिसकी कथा लोक-प्रसिद्ध है

८—शबरी (छंद १०, उत्तर०)

यह जाति की भीलनी थी, मतग ऋषि की सेवा किया करती थी; जब ऋषि परमधाम को जाने लगे तो इसने भी ले जाने का हठ किया। परंतु ऋषि ने कहा कि तू अभी यहीं रह। तुझे त्रेता में भगवान् के दर्शन मिलेंगे। गृध्र को परमधाम देकर भगवान् शबरी के आश्रम मे गए, भगवान् ने उसके बेर खाए और उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। शबरी रामजी को सुग्रीव

की मित्रता का संकेत करके उनके चरण-कमलों का ध्यान धरकर योगाग्नि में देह जलाकर परधाम को गई।

९—यवन (छंद ७६, उत्तर०)

यवन एक पापी म्लेच्छ था। वह अपनी वृद्धावस्था में एक दिन शौच के उपरात आबदस्त ले रहा था कि उसे एक शूकर ने जोर से ढकेल दिया। इस पर वह चिल्ला उठा कि मुझे 'हराम ने मारा,' 'हराम ने मारा'। वृद्धावस्था की कमजोरी के कारण वह इस आघात से मर गया। मरते समय हराम, हराम उच्चारण करने से भगवान् ने उसे अपना भक्त समझ कर (क्योंकि उसने हराम के साथ राम राम उच्चारण किया था) मुक्ति दी।

१०—ध्रुव (छंद ८८, उत्तर०)

स्वायंभुव मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचि नाम की दो स्त्रियाँ थीं। ध्रुव बड़ी रानी सुनीति के और उत्तम छोटी रानी सुरुचि के पुत्र थे। राजा छोटी रानी से विशेष प्रेम रखते थे। एक समय राजा उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे। उस समय ध्रुव खेलते-खेलते आ पहुँचे और राजा की गोद में चढ़ने लगे। परतु राजा ने कुछ आदर या प्यार नहीं किया। गोद में चढ़ते देखकर विमाता ने डाहवश ध्रुव से कहा, "तुम राजा के पुत्र तो हो परतु मेरे गर्भ से न उत्पन्न होने के कारण राजा के आसन पर चढ़ने योग्य नहीं हो। अगर तुम राज्यासन पर चढ़ना चाहते हो तो मेरे गर्भ से उत्पन्न होने के लिए परमात्मा की आराधना करो।" यह सुनकर ध्रुव को बड़ी ग्लानि हुई। वे माता से तप करने की आज्ञा लेकर घर से निकले; और तप करके अचल लोक के स्वामी हुए।

११—व्याध (छंद ९२, उत्तरा०)

व्याध वाल्मीकि जी को ही समझना चाहिए।

(देखो वाल्मीकि)

१२—श्वान (छंद १००, उत्तर०)

श्रीरामजी ने अयोध्या के एक कुत्ते की नालिश पर एक संन्यासी को दंड